हे वत्स ! मैंने इस नवम अध्यायमें तुम्हारे लिये कासीस, अंजन और गैरिककी समस्त उत्तम क्रियाओंका वर्णन किया वह नीरोगताकी वाञ्छा करनेवाले तुझको ग्रहण करना चाहिये ॥ ४४ ॥

इति श्रीरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणेऽञ्जनकासीसगैरिकवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः ।

अथात उपरसवर्णनं नाम दशमाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम उपरसवर्णन नामक दशवें अध्यायका व्याख्यान करेंगे ॥

भक्तिभावयुतः शिष्यो मन्यमानः शिवं गुरुम् ।
. के वै ह्युपरसास्तेषां क्रियाः काश्चेति पृष्टवान् ॥ १ ॥

भक्तिभावसे युक्त शिष्य अपने गुरुको शिवकी समान देखता हुआ यह पूछने लगा कि हे गुरो ! उपरस कौनसे हैं ? और क्या क्रिया है ? यह कृपापूर्वक मुझसे आप कहें ॥ १ ॥

गुरुरुवाच ।

पारदाद्दरदो जातष्टंकणं गन्धकात्तथा ।
स्फटिकाभ्रकतो जाता हरितालान्मनःशिला ॥ २ ॥
अंजनाच्छुक्तिशंखाद्याः कासीसः शंखमर्दरः ।
गैरिकान्मृत्तिका जाता तस्मादुपरसा इमे ॥ ३ ॥

गुरुने उत्तर दिया कि, पारेसे हिंगुल, गंधकसे सुहागा, अभ्रकसे फटकरी, हरितालसे मनाशिल, सुरमासे सीप, शंख, कसीस, समुद्रफेन, उत्पन्न हुए और गेरूसे मृत्तिका उत्पन्न हुई इसी कारणसे इनका नाम उपरस है ॥ २ ॥ ३ ॥

अथोपरसशोधनम् ।

त्रिक्षारे लवणे देयमम्लवर्गे त्रिधा पचेत् ।
एवं ह्युपरसाः शुद्धा जायन्ते दोषवर्जिताः ॥ ४ ॥
रसाभावे प्रदातव्यास्तस्यैवोपरसा इमे ।
सेविता बहुकालं च सर्वे विदधते गुणान् ॥ ५ ॥

अब हम उपरसोंके शुद्ध करनेकी रीति लिखते हैं । हिंगुल, आदि सब उपरसोंको जवाखार, सज्जीखार, सुहागा और नमक तथा अम्लवर्ग इन प्रत्येकमें तीन २ बार पकानेसे दोषरहित शुद्ध होजाते हैं । यदि, पारद, गन्धक आदि रस न मिलसकें तो उन्हीं रसोंके उपरस हिंगुल, सुहागा आदि डालना चाहिये । बहुत समयतक सेवन करनेसे सब गुणोंके देनेवाले होते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

हिङ्गुलस्तेषु पूर्वोक्तं टंकणाद्यधुना शृणु ॥ ६ ॥

इन उपरसोंमें हिंगुल (सिंगरफ) का वर्णन तो पारद प्रकरणमें करचुके अब यहां सुहागा आदिका वर्णन तुम सुनो ॥ ६ ॥

तत्रादौ टंकणभेदाः ।

टंकणस्त्रिविधः प्रोक्तः स्फाटिकाभो गुडप्रभः ।
तृतीयः पांडुरः प्रोक्तः शृणु तस्य गुणागुणम् ॥ ७ ॥
पर्यायः पाण्डुरस्यापि नीलकण्ठ इति श्रुतः ।
उत्तमो नीलकण्ठश्च स्फाटिकाभश्च मध्यमः ॥
गुडाभश्चाधमः प्रोक्तो रसशास्त्रविशारदैः ॥ ८ ॥

अब सुहागेके भेद कहते हैं तथा इनके गुण अवगुणको कहते हैं । सुहागा तीन तरहका होता है । एक फिटकरीके तुल्य, दूसरा गुडके तुल्य है और तीसरा पीले रंगका होता है इनमेंसे जो पाण्डुर अर्थात् पीले रंगका होता है उसका दूसरा नाम नीलकण्ठ भी है । यह नीलकण्ठ सबोंमें श्रेष्ठ है और पहला स्फाटिकाभ मध्यम है और तथा दूसरा गुडप्रभ सबोंमें अधम होता है यह रसशास्त्रके जाननेवाले चतुर वैद्योंने कहा है ॥ ७ ॥ ८ ॥

टंकणशोधनम् ।

जंबीरजरसेनैव अहोरात्रं विभावयेत् ।
टंकणः शुद्धिमायाति नात्र कार्या विचारणा ॥ ९ ॥

अब सुहागेका शोधन कहते हैं सुहागेको जंभीरी नींबूके रसमें एक दिन रात भावना देनेसे शुद्ध होजाता है ॥ ९ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

टंकणः शुध्यति ह्याशु गोमयेनावृतोऽनघ ॥

हे अनघ ! गोबरम रखनेसे भी सुहागेकी शुद्धि होजाती है ॥

अथ शुद्धटंकणगुणाः ।

टंकणो द्रावणो भेदी विषहारी ज्वरापहः ।
गुल्मामशूलशमनो वातश्लेष्महरः परः ॥
तथैव वह्निकृत्स्वर्णरूप्ययोश्शोधनः परः ॥ १० ॥

अब सुहागेके गुण कहते हैं । यह सुहागा द्रावण अर्थात् पिघलानेवाला है, भेदी है, विषरोग, ज्वर, गुल्म, आमवात, शूल, तथा वात और कफका नाश करनेवाला है । जठराग्निको प्रदीप्त करता है तथा सुवर्ण और चाँदीको शुद्ध करता है ॥ १० ॥

अशुद्धटंकणसेवनोपद्रवाः ।

अशुद्धटंकणो वांतिभ्रांतिकारी प्रयोजितः ।
अतस्तं शोधयेद्वह्नौ भवेदुत्फुल्लितः शुचिः ॥ ११ ॥

विना शुद्ध किया सुहागा सेवन करनेसे वमन और भ्रांति होती है इस कारण इसको अग्निपर रखकर फुलावे तो शुद्ध होजाता है ॥ ११ ॥

टंकणानुपानानि ।

मधुना श्वासकासघ्नो घृतेन विषनाशनः ।
अतिविषेन संयुक्तः सर्वज्वरविनाशकः ॥ १२ ॥
जंबुनीरेण गुल्मघ्नः नागरेणामनाशकः ।
उष्णेन चाम्भसा शूलकफवातादिहारकः ॥ १३ ॥
भर्जितः शिशुभिर्भुक्तः कफकासादिनाशकः ।
पाचको रेचकश्चापि नानायोगैः फलप्रदः ॥ १४ ॥

अब सुहागेके सेवन करनेमें जिस रोगमें जो अनुपान कहा है सो लिखते हैं । यदि सुहागेको सहदके साथ सेवन करे तो श्वास और कास रोग नष्ट होते हैं । घृतके साथ विषविकारको, अतीसके साथ सब ज्वरोंको, जामुनके सिरकेके साथ गुल्मरोगको, सोंठके साथ आमवातको, गरम जलके साथ शूल, कफ, बायुके विकार आदिको नष्ट करता है। इसकी खील बालकोंके कफ, खाँसी आदि रोगोंको नष्ट करती है और पाचन तथा रेचन है । इसी प्रकार अनुपानभेदसे अनेक रोगोंको नाश करता है ॥ १२–१४ ॥

एवं ते टंकणं प्रोक्तं ह्यधुना तुवरीं शृणु ॥ १५ ॥

इस प्रकार सुहागेके विषयमें कहा अब तुवरी अर्थात् फिटकरीके विषयमें सुनो ॥ १५ ॥

अथ तुवरीभेदाः लक्षणानि च ।

सौराष्ट्रभूमिसंभूता मृत्स्ना सा तुवरी मता ।
वस्त्रेषु लिप्यते यासौ मंजिष्ठा रसबंधनी ॥ १६ ॥
स्फटिका छिल्लिका चेति द्विविधा परिकीर्तिता ।
ईषत्पीता गुरुस्निग्धा पैत्तिका विषनाशिनी ॥ १७ ॥
निर्भरा शुभ्रवर्णा च स्निग्धा साम्ला परा मता ।
सा फुल्लतुवरी प्रोक्ता लेपात्ताम्रे च रंगदा ॥ १८ ॥
सौराष्ट्री चामृताकांक्षी स्फटिका मृत्तिका मता ।
आढकी तुवरी धन्या मृत्स्ना मृत्सूरमृत्तिका ॥ १९ ॥
व्रणकुष्ठहरा सर्वा कुष्ठघ्नी च विशेषतः ।
दुकूलेषु च सर्वेषु लेपनाद्रंजनी भवेत् ॥
उत्तमा लिप्यते यासौ मंजिष्ठा रंगवर्धिनी ॥ २० ॥

अब तुवरीके भेद और लक्षण कहते हैं । सौराष्ट्र (सोरठ) देशकी पृथ्वीमें तुवरी नामवाली एक तरहकी मिट्टी होती है उसीको गोपीचंदन भी कहते हैं । यदि किसी वस्त्रपर इसका लेप किया जावे तो उस वस्त्रमें मंजीठके रंगके तुल्य दाग पडजाता है इससे पारा बँध जाता है, यह दो प्रकारकी होती है एक स्फटिका दूसरी छिल्लिका इनमें स्फटिका जिसको गोपीचंदनभी कहते हैं वह कुछ पीलापन लिये हुए चिकना और भारी होता है इसके सेवनसे पित्त और विषजनित विकार नष्ट होते हैं । दूसरी छिल्लिका सफेद, स्निग्ध, खट्टी और भारी होती है इसीका दूसरा नाम फुल्लतुवरी भी है । ताम्रमें लेप करनेसे रंग करनेवाली है । इसी सौराष्ट्रीके दूसरे नाम अमृता, कांक्षी, स्फटिका, आढकी, तुवरी, धन्या, मृत्स्ना और सूरमृत्तिका भी हैं । यह सब व्रणरोग और कुष्ठरोगको नाश करनेवाले हैं । और सब तरहके कपडोंपर लेप करनेसे अपने रंगको लानेवाले हैं । पर जिसका सफेद वस्त्रमें लेप करनेसे मंजठिके तुल्य रंग होजावे वह गोपीचन्दन श्रेष्ठ है ॥ १६–२० ॥

तुवरीशोधनम् ।

तुवरी कांजिके क्षिप्ता त्रिदिनाच्छुद्धिमृच्छति ॥ २१ ॥

तीन दिन कांजीमें भिगोनेसे फिटकरी शुद्ध होजाती है ॥ २१ ॥

तत्र विशेषः ।

स्फटिका निर्मला श्वेता श्रेष्ठा स्याच्छोधनं क्वचित् ।
न दृष्टं शास्त्रतो लोके वह्नावुत्फुल्लयन्ति हि ॥ २२ ॥

जो फिटकरी निर्मल तथा सफेद होती है वह अति उत्तम है वैद्यकशास्त्रमें उसकी शुद्धि नहीं लिखी पर लोकमें अग्निपर रख फुलाते हैं और यही इसकी शुद्धि मानते हैं ॥ २२ ॥

तुवरीसत्त्वपातनम् ।

क्षाराम्लमर्दिता ध्माता सत्त्वं मुंचति निश्चितम् ॥ २३ ॥

अब फिटकरीके सत्त्वपातनकी विधि कहते हैं । फिटकरीको क्षारवर्ग तथा अम्लवर्गकी औषधियोंमें घोटकर भिट्टीमें रख धोंकनेसे सत्त्व निकलता है किसीका यह पक्ष है कि, स्फटिका दो प्रकारकी है तुवरी और सौराष्ट्री इनमेंसे तुवरीके भेद तो पूर्व कहचुके अब सौराष्ट्रीके गुण कहते हैं ॥ २३ ॥

सौराष्ट्रीगुणाः ।

सुसैंधवसमाना च कषाया स्फटिका मता ।
व्रणोरःक्षतशूलघ्नी स्फटिका सूतघातिनी ॥
शोधनश्चापि सौराष्ट्र्याः कर्तव्यः पूर्ववत्तथा ॥ २४ ॥

जो सेंधानमकके तुल्य हो और स्वादमें कषैली हो वह फिटकरी कहाती है इसके सेवनसे व्रण, उरःक्षत तत्कालही नष्ट होते हैं तथा पारेको मारण करती है इसका शोधन पहले कही हुई रीतिसे करना ॥ २४ ॥

अन्यच्च ।

कांक्षी कषाया कटुकाम्लकंठ्या केश्या व्रणघ्नी विषनाशिनी च ।
चित्रापहा नेत्रहिता त्रिदोषशांतिप्रदा पारदरंजनी च ॥ २५ ॥

यह फिटकरी स्वादमें कषैली, तीखी, खट्टी तथा कंठ और बालोंके लिये लाभ देनेवाली है । और व्रण, विष, चित्रकुष्ठ इनको नाश करती है नेत्रोंके लिये हितकारिणी है तथा त्रिदोषको शांत करती और पारेको रंगती है ॥ २५ ॥

स्फटिकानुपानानि ।

गैरिकेण समायुक्ता गोदुग्धेन च भक्षिता ।
शुक्रकृच्छ्रं पित्तजं वा मेहं नाशयति ध्रुवम् ॥ २६ ॥
भर्जिता सितया युक्ता ह्यन्येद्युज्वरहा तथा ।
रसांजनेन संयुक्ता अक्षिरोगं निहंत्यसौ ॥ २७ ॥
बबूलत्वक्समायुक्ता पोटली ह्यक्षिशूलहा ।
नानारोगसमायुक्ता नानारोगविनाशिनी ॥ २८ ॥

अब फिटकरीके सेवनमें रोगभेदसे अनुपान कहते हैं । तीन मासे गेरूके साथ तीन मासे फिटकरीकी खीलोंको बारीक पीसे इसको फाँककर ऊपरसे कच्चा गोदुग्ध पीवे तो दर्दसहित वीर्यका बहना तथा पित्तदोषसे उत्पन्न हुए प्रमेह रोग निस्सन्देह दूर होते हैं । और एक मासा फिटकरीकी खील मिसरी या बतासेके साथ खावे ऊपरसे दूधका घूँट लेवे तो तिजारी ज्वर दूर होवे । अफीम और रसौतके साथ नेत्ररोगोंको नष्ट करती है । और कीकरके छिलकेको कूटकर उसमें फिटकरी मिलाकर पोटली बनावे उस पोटलीको जलमें भिगोकर नेत्रोंमें फिरानेसे नेत्रशूल दूर होताहै । इसी प्रकार अनेक योगोंसे अनेक प्रकारके रोगोंको दूर करती है ॥ २६-२८ ॥

ज्ञातव्या तुवरी ह्येवं शृण्वेतर्हि मनःशिलाम् ॥ २९ ॥

इस प्रकार उक्त रीतिसे फिटकरीके विषयमें जानलो अब तुम मनशिलके विषयमें सुनो ॥ २९ ॥

मनःशिलवर्णनम् ।

तालकस्यैव भेदोस्ति मनोह्वा प्रोच्यते जनैः ।
तालकस्त्वतिपीतः स्याद्भवेद्रक्ता मनःशिला ॥ ३० ॥
मदायतनसंभूता मनोह्वा तेन कीर्तिता ।
सा पीवरी हेमवर्णा मनोह्वा विविधा मता ॥ ३१ ॥

शिवजी पार्वतीजीसे कहते हैं यह मनशिल हमारे हिमालय स्थानमें उत्पन्न है इसी कारण इसको मनोह्वा कहते हैं और जो मनशिल सुवर्णके तुल्य हो उसको पीवरी कहते हैं यह अनेक प्रकारकी होती है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

मनःशिलाभेदाः ।

मनःशिला त्रिधा प्रोक्ता श्यामांगी करवीरिका ।
द्विखंडाख्या च तासां तु लक्षणानि निबोध मे ॥ ३२ ॥

श्यामा रक्ता च गौरा च भाराढ्या श्यामिका मता ।
तेजस्विनी च निर्गौरा ताम्राभा करवीरिका ॥ ३३ ॥
चूर्णभूता तु रक्तांगी सभारा खंडपूर्विका ।
त्रिविधासु च श्रेष्ठा स्यात्करवीरा मनःशिला ॥ ३४ ॥

अब मनशिलके भेद कहते हैं । मनशिल तीन तरहकी होती है । पहली श्यामांगी, दूसरी करवीरिका, तीसरी द्विखंडा इनमेंसे जो श्यामरंगवाली और भारी हो उसको श्यामिका कहते हैं और जो लाल रंग, तेजयुक्त गौर वर्णरहित ताम्रके तुल्य हो उसको करवीरिका कहते हैं । और जो गौरवर्ण हो तथा पीसने पर जिसका लाल रंग हो और भारी हो उसे द्विखंडा कहते हैं । इन पूर्वोक्त तीनोंमें करवीरासंज्ञक गुणोंमें श्रेष्ठ होती है ॥ ३२-३४ ॥

अशुद्धमनःशिलादोषाः ।

अश्मरीमूत्रकृच्छ्राणि अशुद्धा कुरुते शिला ।
मंदाग्निं मलबंधं च कुरुते तेन शोधयेत् ॥ ३५ ॥

यह मनशिला यदि विना शुद्ध किये हुए ही सेवन की जावे तो पथरी, मूत्रकृच्छ्र, मंदाग्नि और मलबंध रोगोंको पैदा करती है इस हेतु इसका शोधन अवश्य करे॥३५॥

मनःशिलाशुद्धिः ।

जयंतिकाद्रवे दोलायंत्रे शुद्धा मनःशिला ॥ ३६ ॥

भाँगरे, हल्दी, और अदरखके रसोंमें दोलायंत्रके द्वारा मनशिलको पकावे तो शुद्ध होजाताहै ॥ ३६ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

अगस्त्यपत्रतोयेन भाविता सप्तवारकम् ।
शृंगवेररसैर्वापि विशुध्यति मनःशिला ॥ ३७ ॥

अब मनशिलके शुद्ध करनेकी दूसरी रीति लिखते हैं । अगस्तियाके पत्तोंके रसमें वा अदरखके रसमें सात भावना देवे तो मनशिल शुद्ध होजाता है ॥ ३७ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

भृंगागस्त्यजयंतीनामार्द्रकस्य रसेषु च ।
दोलायन्त्रेण संस्विन्ना विशुध्यति मनःशिला ॥ ३८ ॥

अब मनाशिलके शुद्ध करनेकी तीसरी विधि कहते हैं । भांगरा, अगस्तिया, हल्दी और अदरखके रसमें मनशिलको दोलायंत्रद्वारा पकावे तो शुद्ध हो जाता है ॥ ३८ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

पचेत्र्यहमजामूत्रैर्दोलायंत्रे मनःशिलाम् ।
भावयेत्तत्तथा पित्तैरजायाः शुद्धिमृच्छति ॥ ३९ ॥

अब मनाशिलके शुद्ध करनेका चौथा प्रकार लिखते हैं । बकरीके मूत्रमें दोलायंत्रके द्वारा मनशिलको तीन दिन पकाके तदनन्तर खरलमें छोडकर बकरीके पित्तेकी भावना देनेसे मनाशिल शुद्ध होजाता है ॥ ३९ ॥

मनःशिलामारणविधिः ।

वक्ष्येऽधुना मनोह्वायाः मारणस्य विधिं शुभाम् ।
वटार्कवज्रदुग्धेषु हंसपद्या रसे तथा ॥ ४० ॥
वन्दारसे दिनैकैकं मर्दयेच्च पृथक् पृथक् ।
प्रत्येकमर्दनान्ते तु देयश्चाग्निर्विधानतः ॥ ४१ ॥
घनीभूते त्वतस्तस्याः टिक्किकाः कारयेद्भिषक् ।
डमरूयंत्रे च सम्यक् चतुर्यामात्मकैस्तथा ॥ ४२ ॥
पाचयेद्विधिवद्वैद्यः सप्तवह्निभिरेव च ।
एवं हि म्रियते वत्स मनोह्वा रोगहारिणी ॥ ४३ ॥

अब हम मनोह्वा (मनशिला) के मारणकी विधि कहते हैं । बड, आक, थूहर, हंसपदी, वन्दाल, इन सबके दूध और रसोंमें अलग २ एक २ दिन मनशिलको घोटे और प्रत्येक मर्दनके अन्तमें अग्नि देता जाय जब गाढा होजाय तब टिकिया बनाकर डमरूयंत्रमें चार २ प्रहरकी सात आँच देकर पकावे तो मनशिलका मारण होजाता है ॥ ४०-४३ ॥

मनःशिलासत्त्वपातनम् ।

तालवच्च शिलासत्त्वं ग्राह्यं तैरेव चौषधैः ॥ ४४ ॥

हरितालके सत्त्व निकालनेकी जो विधि और औषधें हैं उन्हीं औषधोंसे उसी प्रकार मनशिलकाभी सत्त्व निकालना चाहिये ॥ ४४ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

नागांशं गुग्गुलं ग्राह्यं लोहकिट्टं च सर्पिषा ।
मर्दयित्वा च मूषायां ध्मानात्सत्त्वं विमुंचति ॥ ४५ ॥

अब सत्त्वपातनका दूसरा प्रकार कहते हैं । जितना मनशिल हो उसका आठवाँ भाग गुगुल लेवे और उसमें लोहकिट्ट तथा घृत मिलाकर अच्छे प्रकार घोटे तदनन्तर अंधमूषामें रखकर बंकनाल धोंकनेसे धोंके तो सत्त्वपातन होगा ॥ ४५ ॥

मनःशिलागुणाः ।

मनःशिला गुरुर्वर्ण्या सरोष्णा लेखनी कटुः ।
तिक्ता स्निग्धा विषश्वासकासभूतविषास्रनुत् ॥ ४६ ॥

यह मनःशिला–गुरु, वर्ण करनेवाली, सर, उष्ण, लेखनी, तीखी, कटु और स्निग्ध है इसको विधिवत् सेवन करे तो विषके विकार, श्वास, खाँसी, भूतोंकी बाधा तथा रक्तके उपद्रव दूर होते हैं ॥ ४६ ॥

अन्यच्च ।

मनःशिला सर्वरसायनाख्या तिक्ता कटूष्णा कफवातहन्त्री ।
सत्त्वात्मिका भूतविषाग्निमान्द्यं कंडूं च कासक्षयहारिणी च ॥ ४७ ॥

यह मनःशिला सर्वरसायन है तथा कटु, तीखी और गरम है । कफ और वातको नाश करती है सत्त्वयुक्त है इसके सेवनसे भूतबाधा, विषदोष, मंदाग्नि, खुजली, खाँसी और क्षयीरोग नष्ट होते हैं ॥ ४७ ॥

अशुद्धशिलासेवनोपद्रवाः ।

मनःशिला मंदबलं करोति जंतून्ध्रुवं शोधनमन्तरेण ।
मलस्य बन्धं किल मूत्ररोगं सशर्करं कृच्छ्रगदं च कुर्यात् ॥ ४० ॥

अशुद्ध मनशिलके सेवनसे बलका नाश, मलबंध, शर्करा, कृच्छ्ररोग और कृमिरोग आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं ॥ ४८ ॥

तद्दोषशमनोपायः ।

गोक्षीरं माक्षिकयुतं पिबेद्यस्तु दिनत्रयम् ।
कुनटी तस्य देहे च विकारं न करोति हि ॥ ४९ ॥

शहद डालकर गौके दुग्धको तीन दिन पीवे तो मनशिल देहमें विकार नहीं करती ॥ ४९ ॥

शंखादीनामथो वत्स शोधनादिक्रियां शृणु ॥ ५० ॥

हे वत्स । अब तुम शंख आदिकी शोधनादि क्रियाको सुनो ॥ ५० ॥

अथ शंखभेदा गुणाश्च ।

द्विधा स दक्षिणावर्तो वामावर्तो शुभेतरः ।
दक्षिणावर्ति शंखस्तु पुण्ययोगादवाप्यते ॥ ५१ ॥
यद्गृहे तिष्ठति सदा स लक्ष्म्या भाजनं भवेत् ।
दक्षिणावर्तिशंखस्तु त्रिदोषघ्नः शुचिर्निधिः ॥
ग्रहालक्ष्मीक्षयक्ष्वेडक्षामताक्षिक्षयक्षयी ॥ ५२ ॥

अब शंखके भेद और गुण कहते हैं । शंख दो प्रकारके होते हैं एक दक्षिणावर्त दूसरा वामावर्त इन दोनोंमेंसे दक्षिणावर्त शंख पुण्ययोगसे प्राप्त होता है और जिसके गृहमें रहता है उसके यहाँ लक्ष्मी निवास करती है इसके विधिवत् सेवनसे त्रिदोष नष्ट होता है नव निधियोंमेंसे यह भी एक प्रकारकी पवित्र निधि है यह ग्रहरोग, अलक्ष्मी, क्षयी, विष, दुर्बलता और नेत्ररोगोंकों दूर करता है ॥ ५२ ॥

ग्राह्यशंखवर्णनम् ।

शंखश्च विमलः श्रेष्ठश्चंद्रकांतिसमप्रभः ।
अशुद्धो गुणदो नैव शुद्धश्च स गुणप्रदः ॥ ५३ ॥

चन्द्रमाकी कांतिके सदृश जिसकी कांति हो और निर्मल हो वह शंख श्रेष्ठ है । अशुद्ध शंख गुणदायक नहीं होताहै और शुद्ध किया हुआ शंख गुणदायक होताहै ॥ ५३ ॥

शंखशोधनम् ।

अम्लैः सकांजिकैश्चैव दोलास्विन्नः स शुद्ध्यति ॥ ५४ ॥

दोलायंत्रके द्वारा शंखको अम्लवर्ग और कांजीमें पकावे तो शुद्ध हो जाताहै ॥ ५४ ॥

शंखगुणाः ।

शंखः क्षारो हिमो ग्राही ग्रहणीरेचनाशनः ।
नेत्रपुष्पहरो वर्ण्यस्तारुण्यपिटिकाप्रणुत् ॥ ५५ ॥

यह शंख खारी, शीतल, ग्राहक, तथा वर्णको सुधारनेवाला है । संग्रहणी और दस्तोंको बंद करताहै आँखके फूले और युवावस्थाके मुहाँसोंको नाश करताहै५५॥

खटीभेदाः ।

खटी गौरखटी चेति द्विधाद्या मलिना स्मृता ।
मृदुपाषाणसदृशी खटी शुभ्रादिका गुरुः ॥ ५६ ॥

खटी जिसको भाषामें खडिया भी कहते हैं । वह दो प्रकारकी होती हैं एकका नाम केवल खटी है और दूसरीका नाम गौरखटी है इनमेंसे खटी कुछ काले रंगकी होती है और गौरखटी नरम पत्थरके तुल्य अत्यन्त श्वेत तथा भारी होती है यही श्रेष्ठ है ॥ ५६ ॥

खटीगुणाः ।

खटीदाहास्रनुच्छीता मधुरा विषशोषजित् ।
कफघ्नी नेत्रयोः पथ्या लेखनी बालकोचिता ॥ ५७ ॥
तद्वत्पाषाणखटिका व्रणपित्तास्रजिद्धिमा ।
लेपादेतद्गुणा प्रोक्ता भक्षिता मृत्तिकासमा ॥ ५८ ॥

इस खडियाके लेपसे जलन और रक्तके सब विकार नष्ट होते हैं । यह शीतल तथा मधुर गुणसे युक्त है विषविकार और शोषको नाश करती है कफनाशक है आँखोंके लिये हित करनेवाली, लेखनी और बालकोंके लिये लाभदायक है दूसरी पाषाणखटी भी उसीके तुल्य है व्रण, पित्त तथा रक्तविकारोंको हरती है शीतल है । यह पूर्वोक्त गुण इसके लेप करनेसे होते हैं और यदि इसका भक्षण करे तो मिट्टीके तुल्य हानि करती है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

वराटिकाभेदादिवर्णनम् ।

वराटिका त्रिधा प्रोक्ता श्वेता शोणा तथापरा ।
पीता च तीक्ष्णा चक्षुष्या श्वेता शोणा हिमा व्रणा ॥ ५९ ॥
अतिबिन्दुभिरश्वेतैर्लांछिता रेखयाथवा ।
बालग्रहहरा नानाकौतुकेषु च पूजिता ॥ ६० ॥
पीता गुल्मयुता पृष्ठे रसयोगेषु योजयेत् ।
सार्द्धनिष्कप्रमाणासौ श्रेष्ठा योगेषु योजयेत् ॥
निष्कप्रमाणा मध्या सा हीना पादोननिष्किका ॥ ६१ ॥

वराटिका जिसको भाषामें कौडी कहते हैं वह तीन प्रकारकी होती है सफेद, सुर्ख, और पीली इनमेंसे श्वेत रंगवाली तीक्ष्ण तथा नेत्रोंके लिये हितकारिणी है । लाल रंगकी शीत तथा व्रणके लिये लाभदायक है । जिसमें कालापन लिये हुए अनेक बिन्दु अथवा रेखा हों वह बालग्रहको दूर करती है और सब कुतूहलोंमें काम देती है । जिसका रंग पीला हो पीठपर गाँठ होवे उस कौडीको

रसयोगमें युक्त करे जिस कौडीका तोल छः मासे हो वह श्रेष्ठ होती है, जिसका वजन चार मासे हो वह मध्यम होती है और जो तीन ही मासेकी हो वह हीन अधम होती है ॥ ५९-६१ ॥

अन्यदपि ।

पीताभा ग्रंथिला पृष्ठे दीर्घवृत्ता वराटिका ।
रसवैद्यैर्विनिर्दिष्टा सा वरा वरसंज्ञिका ॥ ६२ ॥
सार्द्धनिष्कभरा श्रेष्ठा दंतैर्द्वादशभिर्युता ।
रसे रसायने योज्या निष्कभारा च मध्यमा ॥
पादोननिष्कभारा च कनिष्ठा परिकीर्तिता ॥ ६३ ॥

और भी कौडीके विषयमें कहते हैं। जो पश्चात्भागमें गाँठ युक्त लंबी और गोल हो, रंग पीला हो। रसायनशास्त्रके जाननेवाले वैद्योंने उसको उत्तम कहा है। यह वर और अवर भेदसे दो प्रकारकी होती है। जो बारह दांतोंसे युक्त हो और तोलमें बारह मासेकी हो वह प्रशस्त है, रस, तथा रसायनमें इसीका उपयोग करे। चार मासेकी मध्यम होती है, और तीन मासे वजनकी कनिष्ठ या अधम जानना चाहिये ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

वराटिकाशोधनम् ।

वराटा कांजिके स्विन्ना यामाच्छुद्धिमवाप्नुयात् ॥ ६४ ॥

यदि एक प्रहर पर्यन्त कांजीमें कौडियोंको औटावे तो शुद्ध होजाती हैं॥६४॥

वराटिकामारणम् ।

अंगाराग्नौ स्थिता ध्माता सम्यक्प्रोत्फुल्लिता यदा ।
स्वांगशीता मृता सातु पिष्टा सम्यक्प्रयोजयेत् ॥ ६५ ॥

अब कौडीका मारण कहते हैं। कौडियोंको प्रदीप्त अंगारों पर रक्खे और धोंकनीसे धोंके जब अच्छे प्रकार फूलजावे तब अग्निपरसे उठालेवे स्वांगशीतल होनेपर बारीक पीसकर काममें लावे ॥ ६५ ॥

वराटिकागुणाः ।

कपर्दिका हिमा नेत्रहिता स्फोटक्षयापहा ।
कर्णस्रावाग्निमांद्यघ्नी पित्तास्रकफनाशिनी ॥ ६६ ॥
परिणामादिशूलघ्नी वृष्यातीसारनाशिनी ।
नेत्र्या संग्रहणीं हंति कटूष्णा दीपनी मता ॥ ६७ ॥

पाचनी वातकफहा श्रेष्ठा सूतस्य जारणे ।
तदन्ये पुंवराटाः स्युर्गुरवः श्लेष्मपित्तदाः ॥ ६८ ॥

अब कौडीके गुणोंको कहते हैं। कौडी शीतल तथा नेत्रोंके लिये हित करती है, फोडा,क्षयी, कर्णस्राव, अग्निमांद्य, पित्त, रक्त, कफ और परिणामादि शूलोंको नाश करती है, वृष्य है, इसके सेवनसे अतिसार, संग्रहणी शान्त होते हैं। यह कडवी तथा गरम है दीपन है, पाचन है, वात और कफको हरती है पारेके जारणमें श्रेष्ठ है। पूर्वोक्त तीन प्रकारकी कौडियोंके अतिरिक्त अन्य पुंवराट कहाते हैं, वे कडे और गुरु होते हैं, तथा कफ और पित्तको पैदा करते हैं ॥ ६६-६८ ॥

मुक्ताशुक्तिगुणाः ।

मुक्ताशुक्तिः कटुस्निग्धा श्वासहृद्रोगहारिणी ।
शूलप्रमथनी रुच्या मधुरा दीपनी परा ॥ ६९ ॥

मोतीकी सीप स्वादमें कडवी तथा स्पर्शमें चिकनी है यह श्वास, हृदयके रोग, और शूलको नष्ट करती है और रुचि करनेवाली, मधुर तथा दीपनी है ॥ ६९ ॥

जलशुक्तिगुणाः ।

जलशुक्तिः कटुस्निग्धा दीपनी गुल्मशूलनुत् ।
विषदोषहरी रुच्या पाचनी बलदायिनी ॥ ७० ॥

जलकी शुक्ति कटु, चिकनी, दीपनी, गुल्म और शूलको नष्ट करनेवाली, विषके दोषोंको दूर करती है, रुचि उत्पन्न करनेवाली पाचक और बल देनेवाली है ॥ ७० ॥

शुक्तिशोधनम् ।

शोधनं शंखवत्तस्या मृतिः प्रोक्ता कपर्दिवत् ॥ ७१ ॥

पूर्वोक्त मोतीकी सीप और जलकी सीपका शोधन पहले कहे हुए शंखके तुल्य होता है और इसका मारण कौडीकी तरह करना चाहिये इसमें कुछ विशेषता नहीं है ॥ ७१ ॥

अथ सामान्यतया शुक्तिगुणवर्णनम् ।

शुक्तिश्च शिशिरा पित्तरक्तज्वरविनाशिनी ॥ ७२ ॥

अब सामान्यतासे शुक्तिके गुण कहते हैं। सीप शीतल है पित्त, रक्तविकार तथा ज्वरको नाश करती है ॥ ७२ ॥

शंबुकगुणाः ।

शंबुका शीतला नेत्ररुजास्फोटविनाशिनी ।
शीतज्वरहरी तीक्ष्णा ग्राही दीपनपाचनी ॥ ७३ ॥

शंबुक जिसको भाषामें घोंघा कहते हैं वह शीतल होता है, नेत्ररोग, स्फोट (फोडा), शीतज्वर इनको दूर करता है। यह तीक्ष्ण, ग्राही, दीपन और पाचन होता है ॥ ७३ ॥

शंबुकशोधनम् ।

शंखवच्छोधनं कुर्याद्यामं शुद्ध्यति शंबुका ।
शुक्तिवद्भस्मकं कुर्यात्सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ ७४ ॥

बडे शंखोंके शुद्ध करनेका प्रकार जो पहले लिख चुके हैं उसीके तुल्य इन शंबुक या छोटे शंखोंका शोधन भी करना चाहिये और यदि भस्म करना होवे तो पूर्वोक्त सीपकी भस्मके समान क्रिया करे । इस शुद्ध शंखको सब रोगोंमें उपयोग करे ॥ ७४ ॥

सिकतागुणाः ।

बालुका सिकता प्रोक्ता शर्करा रेतजापि च ।
बालुका मधुरा शाता संतापश्रमनाशिनी ॥ ७५ ॥
सेकप्रयोगतश्चैव शाखाशैत्यानिलापहा ।
तद्वच्च लेखनी प्रोक्ता व्रणोरःक्षतनाशिनी ॥ ७६ ॥

अब सिकताके गुण कहते हैं । इसीको बालुका, रेतजा और शर्करा भी कहते हैं । यह मधुर तथा शीतल होती है, इसका सेंक करनेसे संताप और श्रम दूर होता है तथा हाथ पाँव आदि अङ्गोंकी शीतलता और वादीको नाश करती है, लेखनी है, व्रण और उरःक्षतको हरती है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

सिकतामिश्रितलोहरजग्रहणोपायः ।

शर्कराभ्यश्चुम्बकेन केचिद्गृह्णंत्ययोरजः ॥
सुकरं त्विदमाख्यातं तत्तु संशोध्य मारयेत् ॥ ७७ ॥

अब कोई २ चतुर वैद्य बालूमें मिले हुए लोहकणोंको यह चुंबक पत्थरके द्वारा निकालते हैं यह प्रकार सुगम है अतः इस विषयमें अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं किन्तु निकाले हुए लोहेको शुद्ध करके मारण करे ॥ ७७ ॥

एवं चोपरसानां ते गुणादि परिकीर्तितम् ।
विस्तरेण मया वत्स लोकानां हितकाम्यया ॥ ७८ ॥

हे वत्स ! इस प्रकार विस्तारपूर्वक उपरसोंके गुण तथा शोधन, मारणादि क्रियाको लोकोंकी हितकामनासे तुम्हारे लिये कहा ॥ ७८ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे उपरसवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ॥

अथातः स्वर्णशोधनादिक्रियावर्णनं नामैकादशाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम सुवर्णके शोधन क्रियाके वर्णनवाले ग्यारहवें अध्यायका कथन करते हैं ॥

अथ ते संप्रवक्ष्यामि धातूनां शोधनादिकम् ।
स्वर्णं रूप्यं च ताम्रं च रंगं यशदमेव च ॥ १ ॥
सीसं लोहं च सप्तैते धातवो गिरिसंभवाः ।
केषाञ्चित्तु मते तात धातवोऽष्ट प्रकीर्तिताः ॥ २ ॥

अब हम तुम्हारे बोधके अर्थ धातुओंकी शोधनादि क्रियाको कहते हैं। सोना, चाँदी, ताँबा, रांगा, जसद, सीसा, लोहा यह सात धातुएं होती हैं । हे पुत्र ! कोई २ आठ धातु कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अष्टलोहनामानि ।

सुवर्णं रजतं ताम्रं त्रपुशीशकमायसम् ।
षडेतानि च लोहानि कृत्रिमौ कांस्यपित्तलौ ॥ ३ ॥

सोना, चाँदी, ताँबा, राँगा, सीसा, लोहा यह छः लोह अकृत्रिम अर्थात् किसीके मेलसे बने हुए नहीं हैं किन्तु स्वयं उत्पन्न हैं । काँसा और पीतल यह दोनों कृत्रिम अर्थात् अन्यधातुओंके मेलसे बने हुए हैं ॥ ३ ॥

सुवर्णस्त्वादिमः श्रेष्ठो लोहेषु परिकीर्तितः ।
अतस्तस्योद्भवादिर्हि प्रथमं श्रूयतां त्वया ॥ ४ ॥

हे वत्स ! पूर्वोक्त लोहोंमें श्रेष्ठ होनेसे सुवर्ण प्रथम कहा है इस कारण सबसे पहले इसीकी उत्पत्ति आदिको सुनो ॥ ४ ॥

स्वर्णोत्पत्तिः ।

पुरा निजाश्रमस्थानां सप्तर्षीणां जितात्मनाम् ।
पत्नीर्विलोक्य लावण्यलक्ष्मीः संपन्नयौवनाः ॥ ५ ॥
कंदर्पदर्पविध्वस्तचेतसो जातवेदसः ।
पतितं यद्धरापृष्ठे रेतस्तद्धेमतामगात् ॥ ६ ॥

किसी समय निज आश्रममें स्थित जितात्मा सप्तर्षियोंकी सौंदर्यमें लक्ष्मीरूप तथा युवावस्थासे सम्पन्न स्त्रियोंको देखकर कामपीडित हो अग्निदेवका जो पृथिवीमें वीर्य पतन हुआ वही सुवर्ण होगया ॥ ५ ॥ ६ ॥

स्वर्णं सुवर्णं कनकं हिरण्यं हेमहाटकम् ।
तपनीयं शातकुम्भं गांगेयं भर्म कर्बुरम् ॥ ७ ॥
चामीकरं जातरूपं महारजतकाञ्चने ।
रुक्मं कार्तस्वरं जाम्बूनदमष्टापदोऽस्त्रियाम् ॥ ८ ॥

स्वर्ण, सुवर्ण, कनक, हिरण्य, हेम, हाटक, तपनीय, शातकुम्भ, गांगेय, भर्म, कर्बुर, चामीकर, जातरूप, महारजत, काञ्चन, रुक्म, कार्तस्वर, जाम्बूनद, अष्टापद यह १९ नाम सुवर्णके हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

स्वर्णभेदाः ।

प्राकृतं सहजं वह्निसम्भूतं खनिसम्भवम् ।
रसेन्द्रवेधसंजातं स्वर्णं पञ्चविधं स्मृतम् ॥ ९ ॥
आच्छादितब्रह्मांडं च रजोगुणसमुद्भवम् ।
प्राकृतं चेति विख्यातं देवैरपि सुदुर्लभम् ॥ १० ॥
ब्रह्मणा सह यज्जातं सहजं तन्निगद्यते ।
शिवस्य दुःसहं तेजः पीत्वा त्यक्तं च वह्निना ॥ ११ ॥
तद्वह्निसंभवं ख्यातं दिव्यान्येतानि त्रीण्यपि ।
धारणादेव मनुजान्कुर्वंति ह्यजरामरान् ॥
खनिजं खनिसंभूतं वेधजं पारदादिभिः ॥ १२ ॥

अब सुवर्णके भेद कहते हैं । १ प्राकृत, २ सहज, ३ वह्निसंभूत, ४ खनिसंभूत, ५ पारेके बेधसे उत्पन्न इन भेदोंसे सुवर्ण पाँच प्रकारका होता है । जो सोना

रजोगुणसे प्रकट हुआ तथा सम्पूर्ण ब्रह्मांडको जिसने आच्छादन करलिया और देवताओंको भी दुर्लभ है उसका नाम प्राकृत है । जो ब्रह्माके जन्मके साथ उत्पन्न हुआ वह सहज कहाता है और अग्निने जिस शिवके दुःसह तेजको प्राप्त करके फिर त्याग करदिया वही तेज सुवर्ण होगया जिसका नाम वह्निसंभव रक्खा गया है । यह पूर्वोक्त प्राकृत, सहज और वह्निसंभूत तीनोंही दिव्य हैं, धारणमात्रसेही मनुष्योंको अजर अमर करते हैं । जो सोना खानसे पैदा होता है वह खनिज और जो पारेके वेध अर्थात् रसायनक्रियासे तैयार होता है वह वेधज कहाता है ॥ ९--१२ ॥

तत्र यद्भक्षणार्हं स्यात्स्वर्णं तल्लक्षणं शृणु ।
दाहे रक्तं सितं छेदे निकषे कुंकुमप्रभम् ॥ १३ ॥
तारशुल्बोज्झितं स्निग्धं कोमलं गुरु हेम सत् ।
तच्छ्वेतं कठिनं रूक्षं विवर्णं समलं दलम् ॥ १४ ॥
दाहे छेदे सितं श्वेतं कषे त्याज्यं लघु स्फुटम् ।
कृत्रिमं चापि भवति सिद्धसूतस्य योगतः ॥ १५ ॥
मेरुसानूपतज्जम्बूफलाम्भोयोगतः परम् ।
दिव्यौषधिमणिस्पर्शादन्यद्भवति कांचनम् ॥
एवं नानाविधान्यत्र जायंते कांचनानि वै ॥ १६ ॥

अब जो सोना भक्षण करनेके योग्य है उसके लक्षण सुनो । जो सुवर्ण तपानेमें लाल, काटनेमें सफेद, कसौटीके द्वारा कसनेमें केसरके तुल्य, चांदी और तांबारहित चिकना, कोमल और भारी हो वह उत्तम है । जो सोना सफेद कठोर, रूखा, खराब वर्णवाला, मलसहित, गांठके सदृश, तपानेमें तथा काटनेमें सफेद, कसनेमेंभी सफेद, हलका और चोट मारनेमें फूटजावे वह सुवर्ण त्यागने योग्य है । जो मेरुपर्वतके शिखरसे नदीके जलमें गिरेहुए जम्बूफलके योगसे उत्पन्न होताहै वह जाम्बूनद नामसे प्रसिद्ध है । दिव्य औषधि और मणियोंके स्पर्शसे जो सुवर्ण सिद्ध होता है वह और है इस प्रकार अनेक तरहके सुवर्ण होते हैं ॥ १३-१६ ॥

अशुद्धसुवर्णदोषाः ।

सौख्यं वीर्यं बलं हन्ति रोगवर्गं करोति च ।
अशुद्धं नामृतं स्वर्णं तस्माच्छुद्धं च मारयेत् ॥ १७ ॥

अब अशुद्ध सुवर्णके दोष कहते हैं । विना शोधा सोना सुख, बल और वीर्यको नाश करता है । इसके सेवनसे शरीरमें अनेक रोग पैदा होते हैं । यह अमृत रूप नहीं है इस हेतु अशुद्ध सुवर्णका जारण वर्जित है ॥ १७ ॥

सुवर्णशोधनम् ।

हेम्नः श्रेष्ठस्य यत्नेन सूक्ष्मपत्राणि कारयेत् ।
शोधयेत् कांजिकेनैव पश्चाद्वा निम्बुकद्रवैः ॥ १८ ॥
तक्रेण शोधयेद्धेम दुग्धे चैव पुनः पुनः ।
शोधयेदौषधैः सर्वैः क्षालयेदुदकैः पृथक् ॥ १९ ॥

उत्तम सोना लेकर उसके कंटकवेधी पत्र बनवावे और उन पत्रोंको अग्निमें तपा २ कर कांजी, नींबूका रस, मठा और दूध इन प्रत्येकमें तीन २ बार बुझावे और पीछे अथवा सब औषधियोंके क्काथमें तपा २ कर बुझावे और पीछे शुद्ध जलसे धोडाले तो सोना शुद्ध होजाता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

मृत्तिकामातुलुंगाद्यैः पंच वासरभाविता ।
सभस्मलवणं हेम शोधयेत्पुटपाकतः ॥ २० ॥

सुवर्णको गेरू और बिजौरा नींबू आदि अम्लवर्गमें पांच दिन भिगोकर रक्खे तदनन्तर गेरू, भस्म और लवणको सुवर्णपत्रोंपर लेप करके अग्निमें पुटपाककी रीतिसे पकावे तो वह सुवर्ण शुद्ध होजाता है ॥ २० ॥

तृतीयः प्रकारः ।

सुवर्णमुत्तमं वह्नौ विद्रुतं निक्षिपेद्विशः ।
कांचनारद्रवे शुद्धं कांचनं जायते भृशम् ॥ २१ ॥

सुवर्ण शुद्ध करनेका एक प्रकार यहभी है कि, श्रेष्ठ सोनेको अग्निमें गला २ कर कई बार कांचनारके काढेमें बुझावे तो शुद्ध होजाता है ॥ २१ ॥

सामान्येन सर्वधातुशोधनम् ।

तैले तक्रे गवां मूत्रे कांजिके च कुलत्थके ।
त्रिधा त्रिधा विशुद्धिः स्यात्स्वर्णादीनां समासतः ॥ २२ ॥

अब हम संक्षेपसे स्वर्णादि धातुओंका शोधन कहते हैं । सोना, चांदी, तांबा इनमेंसे जिसको शुद्ध करना हो उसको एक तोला भर लेकर आठ कंटकवेधी पत्र बनावे और इन पत्रोंको अग्निमें तपा २ कर मीठे तेल, मट्ठा, गोमूत्र, कांजी, कुल-

थीके काढा इन प्रत्येकमें तीन २ बार बुझावे तो शुद्ध होजाते हैं। राँगा, जस्ता और सीसेको अलग २ गलाकर पूर्व कहे हुए तैल, मठा आदिमें बुझावे तो ये भी शुद्ध होजाते हैं। और लोहेके पत्रोंकोभी तपा २ कर तीन २ बार बुझावे तो लोहा शुद्ध होता है ॥ २२ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

सामान्येनाथ धातूनां शोधनं वच्मि साम्प्रतम् ।
आदौ तेषां तु पत्राणि सूक्ष्माणि कारयेद्भिषक् ॥ २३ ॥
गृहकन्यारसे ह्यर्कदुग्धे गुंजारसे ततः ।
विडं च सर्जिकाक्षारं गैरिकं नवसादरम् ॥ २४ ॥
खल्वे विमर्द्य पत्रेषु लेपं कुर्याच्चिकित्सकः ।
वह्नौ संतापयेत्सम्यक्छुद्ध्यन्ति सकलानि वै ॥ २५ ॥

अब सामान्यरीतिसे सब धातुओंका शोधन कहते हैं । सोना चाँदी आदि धातुओंमेंसे जिसको शुद्ध करना हो उसके कंटकवेधी पत्र बनवाकर ग्वारपाठेके रस, आकके दूध, घूँघचीके रसमें, विड नमक, सज्जीखार, गेरू और नौसादरको खरलमें घोटकर पत्रोंके ऊपर लेप करे और फिर उन पत्रोंको अग्निमें तपावे तो शुद्ध हो जाते हैं ॥ २३-२५ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

अथ वक्ष्ये पुनर्वत्स शोधनस्य क्रियां खलु ।
उत्तमानां तु धातूनां सूक्ष्मपत्राणि कारयेत् ॥ २६ ॥
वह्नौ ततस्तु संताप्य वर्गे क्षारे च दुग्धके ।
तैले तक्रे तथा मूत्रे कांजिके ह्यथ चाम्लके ॥ २७ ॥
रंगे पुष्पे फले तद्वद्रक्ते चापि तथा भिषक् ।
निर्वापयेच्च प्रत्येकं दिग्दिग्वारान्पृथक्पृथक् ॥
ततस्तु जायते शुद्धिर्धातूनां वत्स शोभना ॥ २८ ॥

हे वत्स ! अब फिर भी सुवर्णादि धातुओंके शोधनका दूसरा प्रकार कहते हैं। पहले सुवर्णादि श्रेष्ठ धातुके बारीक पत्र बनवावे और उन प्रत्येक धातु पत्रोंको अग्निमें तपा २ कर दश दश बार क्षारवर्ग, दुग्धवर्ग, तैलवर्ग, तक्रवर्ग, मूत्रवर्ग, कांजी, अम्लवर्ग, रंगवर्ग, पुष्पवर्ग, फलवर्ग और रक्तवर्गकी औषधियोंके क्वाथमें अलग दश दश बार बुझावे तो उनकी उत्तम शुद्धि होजाती है ॥ २६-२८ ॥

मारणस्योत्तममध्यादिवर्णनम् ।

लोहानां मारणं श्रेष्ठं सर्वत्र रसभस्मना ।
मध्यमं मूलिकाभिश्च अधमं गन्धकादिभिः ॥
अरिलोहेन लोहस्य मारणं दुर्गुणप्रदम् ॥ २९ ॥

यहाँ लोहशब्दसे केवल लोह धातुका ही ग्रहण नहीं है । किन्तु सोना, चाँदी, ताँबा, सीसा, काँसा, राँगा, लोहा और पीतल इन आठ धातुओंका ग्रहण है । यदि इनका मारण पारेकी भस्मके द्वारा किया जावे तो श्रेष्ठ है, जडी बूटीके द्वारा मध्यम और गंधक आदिके द्वारा अधम है । सुवर्णादि धातुओंमें जो धातु जिस धातुका गुणोंमें शत्रुरूप है उससे उसका मारण दुष्ट गुण पैदा करनेवाला है जैसे ताँबेका शत्रु जस्त है इस कारण इससे मारण करना दुर्गुण करनेवाला है ॥ २९ ॥

स्वर्णमारणस्य प्रथमः प्रकारः ।

पारावतमलैर्लिंपेदथवा कुक्कुटोद्भवैः ।
हेमपत्राणि तेषां च प्रदद्यादधरोत्तरम् ॥ ३० ॥
गन्धचूर्णं समं दत्त्वा शरावयुगसंपुटे ।
प्रदद्यात्कुक्कुटपुटं पञ्चभिर्गोमयोत्पलैः ॥ ३१ ॥
एवं नवपुटं दद्याद्दशमं च महापुटम् ।
त्रिंशद्वनोत्पलैर्देयं जायते हेमभस्मकम् ॥ ३२ ॥

अब सुवर्णके मारणका पहला प्रकार कहते हैं । सोनेके सूक्ष्म पत्रोंपर कबूतर अथवा मुर्गेकी विष्ठाका लेप करे और लेपके ऊपर समान गंधकके चूर्णको बुरकता जाय और एक पत्रके ऊपर दूसरा पत्र रखता जाय तथा प्रत्येक पत्रमें लेपके अनन्तर गंधकचूर्ण बुरकता जाय इस प्रकार सम्पूर्ण पत्रोंको नीचे ऊपर रखके एक शरावसंपुटमें गंधक बिछा ऊपरसे, पत्रोंको रखदेवे और शेष गंधकचूर्ण भी उन पत्रोंपर बिछाय देवे तत्पश्चात् दूसरा शराव उसके ऊपर ढाँककर कपरमिट्टी करदेवे और पाँच गोबरके कंडोंसे नौ कुक्कुटपुट देकर पकावे । नव कुक्कुटपुट देनेके अनन्तर ३० तीस जङ्गली उपलोंसे दशवाँ महापुट देनेसे सुवर्णकी भस्म सिद्ध होजाती है । कुक्कुटपुटका लक्षण शास्त्रकारोंने इस प्रकार किया है कि, " वितस्तिमात्रगर्ते यत्पुटच्यते, तत्तु कौक्कुटम् " अर्थात् एक बालिश्तभर गहरे और एक ही बालिश्त चौडे गढेमें कंडोंकी आँचसे जो औषध पुटित की जाती है वह कौक्कुटपुट कहाती है ॥ ३०-३२ ॥

पूर्वोक्तमृतस्वर्णगुणाः ।

सुवर्णं च भवेत्स्वादु तिक्तं स्निग्धं हिमं गुरु ।
बुद्धिविद्यास्मृतिकरं विषहारि रसायनम् ॥ ३३ ॥

सुवर्ण स्वादमें मधुर, तीखा, स्निग्ध, शीतल और गुरु है, यह बुद्धि, विद्या और स्मरणशक्तिको बढानेवाला तथा विषसे उत्पन्न बाधाओंका नाशकारक श्रेष्ठ रसायन है ॥ ३३ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

सौवीरमंजनं पिष्ट्वा मार्कवस्वरसैर्देहेत् ॥ ३४ ॥
जातरूपस्य पत्राणि शरावे संपुटे पुटेत् ।
गजाख्येन पुटेनैव सुवर्णं याति भस्मताम् ॥ ३५ ॥

अब मारणका दूसरा प्रकार कहते हैं । जलभाँगरेके रसमें सुरमेकी डलीको अच्छे प्रकार घोटकर सुवर्णके कंटकवेधी पत्रोंपर लेप करे और उन लेप किये हुए पत्रोंको शरावसंपुटमें रख कपरमिट्टी करके गजपुटके द्वारा आँच देवे तो एक आँचसे ही शुद्ध भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

सूतस्य द्विगुणं गन्धमम्लेन कृतकज्जलिम् ।
द्वयोः समीकृतं स्वर्णं सम्यगम्लेन मर्दयेत् ॥ ३६ ॥
शरावसंपुटांतःस्थमध ऊर्ध्वं च सैन्धवम् ।
अष्टयामाद्भवेद्भस्म सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ ३७ ॥

अब मारणका तीसरा प्रकार कहते हैं । शुद्ध किया हुआ पारा १ टंक और उसका दुगुना अर्थात् २ टंक गंधक लेकर नींबूके रसके साथ कज्जली करे तदनन्तर इसमें पारा और गंधककी बराबर अर्थात् तीन टंक शुद्ध सोनेके वर्क मिलाकर नींबूके रसके साथ अच्छे प्रकार घोटे जब गाढा होजावे तो उसकी टिकिया बनाकर धूपमें सुखालेवे तत्पश्चात् एक शरावमें नमक बिछाकर उसके ऊपर टिकियोंको रखदेवे और टिकियोंके ऊपर भी अच्छे प्रकार नमक बिछाकर ढँकदेवे अर्थात् टिकिया खुली न रहे और फिर दूसरे शरावसे ढँक कपरमिट्टी करके धूपमें सुखा-लेवे फिर आठ प्रहरकी गजपुट आँच देवे तो सुवर्णकी उत्तम भस्म सिद्ध हो जाती है । यही रीति चाँदी और ताँबेके भस्म बनानेकी भी है, परन्तु विशेषता यह है कि, ताँबेकी कज्जलीमें पारा'गंधककी कज्जली मिलाकर एक प्रहर पर्यन्त कागजी नींबूके रसमें अच्छे प्रकार खरल करे तत्पश्चात् उसकी टिकिया बनाकर पूर्ववत्

क्रिया करे । ताँबेको नींबूके रसके साथ अधिक समय तक घोटनेसे जी नहीं मचलाता ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

शुद्धं हेम श्लक्ष्णपत्रीकृतं तद्वारंवारं सूतगन्धानुलिप्तम् ।
तीव्रे वह्नौ कांचनारे हलिन्या ज्वालामुख्याः सम्पुटे भस्म कुर्यात् ॥ ३८ ॥

पारा और गंधककी कज्जली करके शुद्ध किये हुए सोनेके पत्रोंपर लेप करे तदनन्तर कचनार करियारी और ज्वालामुखी इन तीन औषधोंकी लुगदीमें उन पत्रोंको रख शरावसंपुटमें रक्खे और सात कपरमिट्टी करके अच्छे प्रकार बन्द करदेवे तत्पश्चात् वारंवार गजपुटकी आँचमें पकावे तो सुवर्णकी उत्तम भस्म सिद्ध हो जाती है॥३८॥

पञ्चमः प्रकारः ।

माक्षिकं नागचूर्णं च पिष्टमर्करसेन च ।
हेमपत्रं पुटेनैव म्रियते क्षणमात्रतः ॥ ३९ ॥

आकके दूधमें शुद्ध किये हुए सोनामक्खी और सीसेको घोटकर सोनेके कंटकवेधी पत्रोंपर लेप करके गजपुटमें फूँक देवे तो बहुत शीघ्र सोनेकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ३९ ॥

षष्ठः प्रकारः ।

सुशुद्धं पारदं दत्त्वा कुर्याद्यत्नेन पिष्टिकाम् ।
दत्त्वोर्द्ध्वाधो नागचूर्णं पुटेन म्रियते ध्रुवम् ॥ ४० ॥

दो भाग शुद्ध पारा और एक भाग सोनेके पत्रोंको खरल करके यत्नसे पिट्ठी बनालेवे और पिट्ठीके ऊपर तथा नीचे सीसेका चूर्ण बिछायकर गजपुटमें फूँकदेवे तो सोनेकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ४० ॥

सप्तमः प्रकारः ।

रसस्य भस्मना वाथ रसेनालिप्य वद्दलम् ।
हिंगुहिंगुलसिंदूरशिलासाम्येन मेलयेत् ॥ ४१ ॥
संमर्द्य कांचनद्रावैर्दिनं कृत्वाथ गोलकम् ।
तद्भाण्डस्य तले दत्त्वा भस्मना पूरयेद्दृढम् ॥ ४२ ॥
अग्निं प्रज्ज्वालयेद्गाढं द्विनिशं स्वांगशीतलम् ।
उद्धृत्य सावशेषं चेत्पुनर्देयं पुटद्वयम् ॥
अनेन विधिना स्वर्णं निरुत्थं जायते मृतम् ॥ ४३ ॥

पारेसे अथवा पारेके भस्मसे सोनेके कंटकवेधी पत्रोंको लपेटकर हींग, हिंगुल, सिन्दूर और मनशिल इन सबको समान भाग लेकर एक दिवस कचनारके रसमें घोटकर गोला बनालेवे और उस गोलेको पात्रके भीतर पेंदीमें रख ऊपरसे दाब २ कर राख भरदेवे और फिर चूल्हेमें अग्नि जलाकर चढाय देवे तत्पश्चात् दो रात्रि पर्यन्त समान आँचसे पकाकर उतारलेवे जब स्वयंशीतल होजावे तो पात्रसे अलग उसको निकाल लेवे यदि पकनेमें कसर रहजावे तो फिर पुट देकर अग्नि दे तो सोनेकी निरुत्थ भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ४१--४३ ॥

अष्टमः प्रकारः।

कांचनारप्रकारेण लांगली हन्ति कांचनम्।
ज्वालामुखी तथा हन्यात्तथा हंति मनःशिला ॥ ४४ ॥

जिस तरह कचनारके रसकी पुट देनेसे सोनेकी भस्म सिद्ध होती है उसी प्रकार कलियारीके रसकी पुट देनेसे तथा ज्वालामुखी या मनशिलके पुटसे भी सुवर्णकी भस्म सिद्ध होती है ॥ ४४ ॥

नवमः प्रकारः।

शिलासिंदूरयोश्चूर्णं समयोरर्कदुग्धतः।
सप्तधा भावयित्वा तु शोषयेच्च पुनःपुनः ॥ ४५ ॥
ततस्तु गलिते हेम्नि कल्कोयं दीयते समः।
पुनर्धमेदतितरां यथा कल्को विलीयते ॥
एवं वारत्रयं दद्यात्कल्कं हेममृतिर्भवेत् ॥ ४६ ॥

मनशिल और सिंदूर दोनोंका बराबर चूर्ण लेकर आकके दूधमें सात भावना देवे और प्रत्येक भावनामें सुखाताजाय तत्पश्चात् सोनेको गलाकर उसमें पूर्वोक्त भावना दिया हुआ चूर्ण छोडताजाय और धोंकनीसे खूब धमे कि, जिससे सोनेका जलांश सूख जावे, इसी प्रकार तीन बार कल्क देनेसे सुवर्णकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

मृतसुवर्णगुणाः।

वर्णं विधत्ते हरते च रोगान्करोति सौख्यं प्रबलेन्द्रियत्वम्।
शुक्रस्य वृद्धिं बलतेजऋद्धिं क्रियासु शक्तिं च करोति हेम ॥ ४७ ॥

अब मृत सुवर्णके गुण कहते हैं। यह सुवर्णभस्म देहमें कान्ति पैदा करती है, रोगोंका नाश करती है, सुख देती है इन्द्रियोंको बलयुक्त करती है, शुक्र, बल और तेजको बढानेवाली तथा काम करनेकी शक्तिको पैदा करनेवाली है ॥ ४७ ॥

स्वर्णभस्मगुणाः ।

स्वर्णं स्वर्णसमानरूपजनकं सर्वक्षयोन्मूलकृत्
बल्यं वृष्यमनुष्णवीर्यमसकृत्क्षुद्वर्द्धनं बृंहणम् ।
निःशेषामयसंघसंहतिकरं तेजस्करं शुक्रकृ-
च्चक्षूरोगजराहरं नवसुधापानोपमं प्राणिनाम् ॥ ४८ ॥

सुवर्णकी भस्म सेवन करनेसे शरीरमें सुवर्णके तुल्य कान्ति होती है और यह सब प्रकारके क्षयीरोगोंको जडसे नाश करती है, बलको लानेवाली है, वृष्य है, अनुष्णवीर्य है, क्षुधाको बढाती है, संपूर्ण रोगोंके समूहको संहार करनेवाली है, तेज तथा वीर्यको बढाती है, नेत्रोंमें उत्पन्न हुए रोग और वृद्धावस्थाको दूर करती है। तथा मनुष्योंको अमृतके तुल्य गुण देनेवाली है ॥ ४८ ॥

अन्यगुणाश्चापि ।

स्वर्णं शीतं पवित्रं क्षयवमिकसनश्वासमेहास्रपित्त-
क्षैण्यक्ष्वेडक्षतास्रप्रदरगदहरं स्वादुतिक्तं कषायम् ।
वृष्यं मेधाग्निकान्तिप्रदमधुरसकं कार्श्यहानित्रिदोषो-
न्मादापस्मारशूलज्वरजयिवपुषो बृंहणं नेत्रपथ्यम् ॥ ४९ ॥

सुवर्णकी भस्म शीतलतासे युक्त तथा पवित्र है, इसके विधिपूर्वक सेवन करनेसे क्षयी, वमन, खाँसी, श्वास, प्रमेह, रक्तपित्त, क्षीणता, विषविकार, घाव, रुधिरविकार और रक्तप्रदर रोग नष्ट होते हैं, यह स्वादिष्ठ तथा कडवा और कसैला है, वृष्य है, बुद्धिको बढानेवाली, जठराग्निको प्रदीप्त करनेवाली तथा शरीरमें कान्तिको पैदा करनेवाली है खाँडके समान मीठा, देहकी दुर्बलता, त्रिदोष, उन्माद, मृगी और शूलको नाश करती है, शरीरको पुष्ट करती तथा नेत्रोंके लिये हितकारी है ॥ ४९ ॥

सुवर्णप्रशंसा ।

सर्वौषधिप्रयोगेण व्याधयो न गता यदि ।
कर्मभिः पंचभिश्चापि सुवर्णं तेषु योजयेत् ॥ ५० ॥

शिलाजतुप्रयोगात्तु ताप्यसूतकयोस्तथा ।
रसायनानामन्येषां प्रयोगाद्धेम चोत्तमम् ॥ ५१ ॥

यदि रोगीके रोग अनेक प्रकारकी औषधियोंके सेवन तथा वमन विरेचन आदि पाँच प्रकारके कर्मोंसे भी न नष्ट हुए हों तो उनकी निवृत्तिके लिये सुवर्णका सेवन करावे क्योंकि यह सुवर्णका प्रयोग शिलाजतु, चाँदी, पारा तथा अन्य सब रसायनके प्रयोगोंमें अतिश्रेष्ठ है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

सुवर्णप्रयोगौ ।

अपक्कं हेमसंघृष्टं शिलायां जलयोगतः ।
द्रवरूपं तु तत्पेयं मधुना गुणदायकम् ॥ ५२ ॥
अथवा वरकाख्यं तु स्वर्णपत्रं विचूर्णितम् ।
मधुना संगृहीतं च सद्यो हंति विषादिकम् ॥ ५३ ॥

किसी स्वच्छ पत्थरके खरलमें शुद्ध किये हुए सुवर्णको जलके साथ अच्छे प्रकार घिसे तत्पश्चात् उसमें थोडासा सहत मिलाकर पीनेसे उत्तम गुणोंका करनेवाला होताहै । अथवा सोनेके वर्कोंको बारीक चूर्ण करके सहतके साथ सेवन करे तो विष आदिके विकार नष्ट होवें ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

स्वर्णदलगुणाः ।

सिद्धं स्वर्णदलं समस्तविषहृच्छूलाम्लपित्तापहं
हृद्यं पुष्टिकरं क्षयव्रणहरं कायाग्निमांद्यं जयेत् ।
हिक्कानाहविनाशनं कफहरं भ्रूणां हितं सर्वदा
तत्तद्रोगहरानुपानसहितं सर्वामयध्वंसनम् ॥ ५४ ॥

सुवर्णके वर्क समस्त विषविकार, शूल और अम्लपित्तको नाश करते हैं, हृदयके लिये हितकारी तथा शरीरमें पुष्टि करनेवाले हैं इसके सेवनसे क्षयीरोग, घाव, अग्निमांद्य हिचकी, आनाहवात और कफविकार, नष्ट होते हैं । गर्भस्थ बालकोंके लिये सर्वदा हितकारी हैं और उन २ रोगोंके नाश करनेवाले अनुपानोंके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारके रोगोंको हरते हैं ॥ ५४ ॥

सुवर्णभस्मानुपानानि ।

मत्स्यपित्तस्य योगेन स्वर्णं तत्कालदाहजित् ।
भृंगयोगाच्च तद्वृष्यं दुग्धयोगाद्बलप्रदम् ॥ ५५ ॥

पुनर्नवायुतं नेत्र्यं घृतयोगाद्रसायनम् ।
स्मृत्यादिकृद्वचायोगात्कान्तिकृत्कुंकुमेन च ॥ ५६ ॥
राजयक्ष्माणि पयसा निर्विष्या च विषं हरेत् ।
शुंठीलवंगमरिचैस्त्रिदोषोन्मादहारकम् ॥ ५७ ॥

सुवर्णभस्मको मछलीके पित्तके साथ खावे तो तत्काल दाह दूर करती है स्त्रीप्रसंगमें भाँगरेके रसके साथ खानेसे हित करती है, दूधके साथ सेवन करनेसे बलकी वृद्धि होती है, पुनर्नवाके साथ नेत्रविकारोंको नाश करती है, घृतके साथ वृद्धावस्था तथा समस्त व्याधियोंको दूर करती है, वचके साथ स्मृति आदिको उत्पन्न करती है, केशरके साथ शरीरमें कान्ति पैदा करती है, दूधके साथ राजयक्ष्मा और निर्विषीके साथ विषरोगोंको दूर करती है, सोंठ, लौंग और काली मिर्चके साथ त्रिदोष तथा उन्मादको हरती है ॥ ५५-५७ ॥

मध्वामलकचूर्णं[१] तु सुवर्णं चेति तत्रयम् ।
प्राश्यारिष्टगृहीतोऽपि मुच्यते प्राणसंकटात् ॥
शंखपुष्प्या वयोर्थं च विदार्या च प्रजार्थकः ॥ ५८ ॥

आमलोंका चूर्ण, सोनेकी भस्म और सहत इन तीनोंको एकमें अच्छे प्रकार मिलाकर खावे तो अरिष्टयुक्त भी मनुष्य प्राणसंकटसे छूटजाता है, शंखपुष्पीके साथ सेवन करनेसे आयुकी वृद्धि और विदारीकन्दके साथ पुत्रको उत्पन्न करनेवाली है ॥ ५८ ॥

रोगविशेषे स्वर्णभक्षणपथ्यम् ।

दुग्धं वै शर्करोपेतं स्निग्धमन्नं च पेशलम् ।
वलीपलितनाशाय स्वर्णपथ्यानि दापयेत् ॥ ५९ ॥

यदि वलीपलित रोगके नाश करनेके लिये सुवर्णभस्मका सेवन करे तो खाँडसंयुक्त दूध और चिकना तथा उत्तम अन्न हितकारी है ॥ ५९ ॥

स्वर्णभक्षणेऽपथ्यानि ।

ककारसहितं चान्नं व्यंजनं तु कपूर्वकम् ।
ककारपूर्वमांसानि स्वर्णभुग्दूरतस्त्यजेत् ॥ ६० ॥

---

१ किसीका मत है कि, " मध्वामलकवर्णं तु प्रबलां ग्रहणीं हरेत् " अर्थात् सुवर्णभस्म, आमलोंका चूर्ण, सहद यह तीनों प्रबल ग्रहणी रोगोंको नाश करते हैं ॥

सोनेकी भस्म तथा वर्कोंको सेवन करनेवाला मनुष्य जिन अन्न व्यंजन और मांसके नामोंकी आदिमें ककार हो उनका त्याग करे क्योंकि वह अपथ्य हैं॥६०॥

स्वर्णद्रुतिप्रकारः।

चूर्णं सुरेन्द्रगोपानां देवदालीफलद्रवैः।
भावितं सद्दशं हेम करोति जलवद्द्रुतिम् ॥ ६१ ॥

विदारीफलके रसमें पारा और बीरबहूटीके चूर्णको घोटकर सुवर्णके चूर्णमें भावना देवे तो सोना पानीके तुल्य पतला हो जाता है ॥ ६१ ॥

मण्डूकास्थिवसाटंकहयलालेन्द्रगोपकैः।
प्रतिवापेन कनकं सुचिरं तिष्ठति द्रवम् ॥ ६२ ॥

मेंढककी हड्डी, और वसा (चर्बी), सुहागा, घोडेकी मुखकी लार, बीरबहूटी इन सबोंको बराबर लेकर इनमें सोनेको गलाकर छोडनेसे बहुत काल तक सोना जलके तुल्य पतला बना रहता है ॥ ६२ ॥

अशुद्धसुवर्णदोषाः।

बलं च वीर्यं हरते नराणां रोगव्रजान्पोषयतीह कामे।
असौख्यकार्यं च सदैव हेमाऽपक्कं सदोषं मरणं करोति ॥ ६३ ॥

विना शुद्ध किया हुए सुवर्ण सेवन करनेसे मनुष्योंके बल और वीर्यको नाश करता है, देहमें अनेक प्रकारके रोगोंको पैदा करता है और क्लेश तथा मृत्युको करता है ॥ ६३ ॥

अपक्कहेमदोषहरोपायः।

अभया सितया युक्ता भक्षणीया दिनत्रयम्।
हेमदोषहरी ख्याता सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ६४ ॥

अशुद्ध सोनेके सेवनसे जो दोष उत्पन्न हुए हों उनकी शान्तिके लिये खाँडके साथ हरडका तीन दिन पर्यन्त भक्षण करे क्योंकि खाँड सहित हरीतकीको शास्त्रकारोंने हेमदोषहरी कथन किया है इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ६४ ॥

एवमेकादशे प्रोक्तो सुवर्णस्य विधिः शुभः।
धनिकैश्चाधिराजैश्च सेवनीयो प्रयत्नतः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार इस ग्यारहवें अध्यायमें सुवर्णके शोधन, मारणादि विधि कही गई । यह विधान धनी और महाराजाओंको प्रयत्नसे करना चाहिये ॥ ६९ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे सुवर्णवर्णनो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः ।

अथातो रौप्यशोधनमारणादिवर्णनं नाम द्वादशाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब चांदीके शोधन मारणवाले बारहवें अध्यायका व्याख्यान करेंगे ॥

शिष्य उवाच ।

श्रुतो स्वर्णविधिर्नाथ तथा शोधनमारणौ ।
अधुना रौप्यविषये कृपया कथय प्रभो ॥ १ ॥

शिष्य बोला कि, हे नाथ ! सुवर्णकी विधि तथा शोधन मारणादिक सब सुना अब कृपा करके चांदीके विषयमेंभी कथन कीजिये ॥ १ ॥

गुरुरुवाच ।

अथ रौप्यविधानं ते प्रवक्ष्यामि विशेषतः ।
यस्य प्रयोगमात्रेण नरश्चारोग्यतां व्रजेत् ॥ २ ॥

गुरुने कहा कि, हे पुत्र ! अब मैं तुझको चाँदीके शोधन तथा मारणादि विधानको सुनाताहूँ । जिसके प्रयोगमात्रसे मनुष्य आरोग्यताको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

रौप्योत्पत्तिः ।

त्रिपुरस्य वधार्थं वै ह्येकदा कुपितो हरः ।
उल्कैकनेत्रतो जाता वीरभद्रो द्वितीयतः ॥ ३ ॥
तृतीयनेत्रतो ह्यश्रु पतितं रौप्यतां गतम् ।
प्रकारैर्बहुभिःसोऽद्य पृथिव्यां परिदृश्यते ॥ ४ ॥

किसी समय त्रिपुरके संहार करनेके लिये महादेवजीने अत्यन्त क्रोध किया उसी कालमें उनके एक नेत्रसे उल्का पैदा हुई, दूसरे नेत्रसे वीरभद्रगण पैदा हुआ और तीसरे नेत्रसे जो आँसूकी बूँद गिरी वही चांदी होगया और वह चांदी पृथिवीमें अनेक तरहकी देख पडती है ॥ ३ ॥ ४ ॥

रौप्यभेदाः ।

सहजं खनिसंजातं कृत्रिमं च त्रिधा मतम् ।
रजतं पूर्वपूर्वं हि स्वगुणैरुत्तरोत्तरम् ॥ ५ ॥
कैलासाद्यादिसंभूतं सहजं रजतं भवेत् ।
तत्पृष्टं हि सकृद्व्याधिनाशनं देहिनां भवेत् ॥ ६ ॥
हिमाचलादिकूटेषु यद्रूप्यं जायते हि तत् ।
खनिजं कथ्यते तज्ज्ञैः परमं हि रसायनम् ॥ ७ ॥
श्रीरामपादुकान्यस्तं वंगं यद्रूप्यतां गतम् ।
तत्पादरूप्यमित्युक्तं कृत्रिमं सर्वरोगनुत् ॥
कृत्रिमं चापि भवति वंगादेः सूतयोगतः ॥ ८ ॥

अब चांदीके भेद कहते हैं । चांदी तीन तरहकी होती है पहली सहज, दूसरी खनिज, और तीसरी कृत्रिम, इनमेंसे उत्तरोत्तर एकसे दूसरीमें और दूसरीसे तीसरीमें अधिक गुण होते हैं । जिस चांदीकी उत्पत्ति कैलासपर्वतसे है वह सहज कहाती है, इसके स्पर्शमात्रसेही मनुष्योंकी समस्त व्याधियोंका नाश होता है । जो चांदी हिमालय आदि पर्वतोंमें पैदा होती है वह खनिज कहाती है यह श्रेष्ठ रसायन है । जो राँगा रामकी पादुका अर्थात् खडाओंके नीचे पडनेसे रौप्यभावको प्राप्त हुआ उसको कृत्रिम तथा पादरूप्यभी कहते हैं । इसके सेवनसे सब रोगोंका नाश होता है किसीका यहमत है कि, जो चांदी पारा और राँगेके मेलसे बनी हो उसे कृत्रिम कहते हैं ॥ ५–८ ॥

त्रिविधं परिकीर्तितं च रूप्यं खनिजं वंगवेधजं तथैव ।
अवलोक्य रसोदधींश्च ग्रंथोन्सकलैर्वैद्यवरैर्विशारदैश्च ॥ ९ ॥

अनेक रसग्रन्थोंको अवलोकन करके श्रेष्ठ वैद्योंने चांदीके तीन भेद बतलाये हैं उनमेंसे पहला खनिज, दूसरा वंगज और तीसरा वेधज है ॥ ९ ॥

ग्राह्यरौप्यम् ।

उभे वंगजेनैव ग्राह्य च रूप्ये यतो नैव शुभ्रत्वमेवं मृदुत्वम् ।
अतोग्राह्यमेकं खनीजं च रूप्यं यतः श्वेतवर्णं च कौमल्ययुक्तम् ॥ १० ॥

पहले जो तीन प्रकारकी चांदी कही गई है उनमेंसे वंगज और वेधज तो ग्रहण करने योग्य नहीं है क्योंकि इनमें सफेदी और कोमलता नहीं है और तीसरी

जो खानिज है वह ग्रहण करनेके योग्य है क्योंकि यह सफेदी और कोमलतासे युक्त है ॥ १० ॥

घनं स्वच्छं मृदु स्निग्धं दाहे छेदे सितं गुरु ।
शंखाभमसृणस्फोटरहितं रजतं शुभम् ॥ ११ ॥

जो चाँदी घन, स्वच्छ, नरम और स्निग्ध हो, अग्निमें तपाने और तोडनेसे जिसका रंग श्वेत हो, भारी हो, शंखके तुल्य जिसकी कान्ति हो और घनकी चोटसे जो फूटती न हो वह उत्तम होती है ॥ ११ ॥

त्याज्यरौप्यम् ।

दाहे रक्तं च पीतं च कृष्णं रूक्षं स्फुटं लघु ।
स्थलाङ्गं कर्कशाङ्गं च रजतं त्याज्यमष्टधा ॥ १२ ॥

जो चाँदी अग्निमें तपानेसे लाल, पीले या काले रंगवाली हो, रूक्ष हो, घनकी चोटोंसे फूटती हो, वजनमें हलकी हो पर देखनेमें स्थूल हो अर्थात् दृढ न हो, तथा कठिन हो यह पूर्वोक्त आठ प्रकारकी चाँदी त्याग करने योग्य है ॥ १२ ॥

अशुद्धरौप्यमारणे दोषः ।

आयुः शुक्रं बलं हन्ति तापविड्बंधरोगकृत् ।
अशुद्धं न मृतं तारं शुद्धं मार्यमतो बुधैः ॥ १३ ॥

बिना शुद्ध कीहुई चाँदीका मारण करना चतुर वैद्योंने निषेध किया है क्योंकि उसके सेवनसे आयु, वीर्य और बल नष्ट होजाता है, ज्वर तथा मलबंध आदि रोग पैदा होते हैं इसी कारण शुद्ध की हुई चाँदीका मारण करना श्रेष्ठ वैद्योंने कहा है ॥ १३ ॥

रौप्यशुद्धिः ।

पत्रीकृतं तु रजतं सन्तप्तं जातवेदसि ।
निर्वापितमगस्त्यस्य रसे वारत्रयं शुचि ॥ १४ ॥

उत्तम चाँदीके कंटकवेधी पत्र बनवाकर अग्निमें तपावे और उन तपाये हुए पत्रोंको अगस्तवृक्षके पत्तोंके रसमें तीन बार बुझावे तो शुद्ध होजाते हैं ॥ १४ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

रौप्य शुद्धं समादाय नागमुख्यं तु शोधयेत् ।
शुद्धे तारे पुनस्तस्य सूक्ष्मपत्राणि कारयेत् ॥
तानि चिंचाणिद्राक्षाभिः शोधयेच्च पृथक्पृथक् ॥ १५ ॥

श्रेष्ठ चाँदीमें नाग अर्थात् सीसा देकर शुद्ध करे और उनके कंटकवेधी पत्र बनवाकर इमली और दाखके रसमें पृथक् २ शोधन करे तो चाँदीकी उत्तम शुद्धि होजाती है ॥ १५ ॥

रौप्यमारणविधिः।

भागैकं तालकं मर्द्यं याममम्लेन केनचित्।
तेन भागत्रयं तारं पत्राणि परिलेपयेत् ॥ १६ ॥
धृत्वा मूषापुटे रुद्ध्वा पुटेत्त्रिंशद्वनोत्पलैः।
समुद्धृत्य पुनस्तालं दत्त्वा रुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥
एवं चतुर्दशपुटैस्तारभस्म प्रजायते ॥ १७ ॥

अब चाँदीके मारणकी विधि कहते हैं । एक भाग हरिताल लेकर उसको कागजी नीबू या किसी अन्य अम्लद्रव्यके रसमें एक प्रहर पर्यन्त खरलमें घोटे जब गाढा होजाय तो तीन भाग चाँदीके पत्रोंपर उसका लेप करके तीस जङ्गली उपलोंकी आँचसे शरावसंपुटमें रखकर पकावे, और फिर उन पत्रोंको निकाल पहलेकी समान अम्लरसके साथ मर्दन किये हुए हरितालका लेप करके पकावे इसी प्रकार सब मिलकर चौदह आँचें देवे तो चाँदीकी उत्तम भस्म सिद्ध हो जाती हैं ॥ १६॥ १७ ॥

द्वितीयः प्रकारः।

कनकमाक्षिकसूक्ष्मविचर्णकं स्थविरस्नुक्पयसा सह मर्दितम्।
रजतपत्रवराणि विलेपयेत्कथिततालकवत्परिपाचयेत् ॥ १८ ॥

अब चाँदीके मारणका दूसरा प्रकार कहते हैं । पुराने थूहरके दूधके साथ सोनामक्खीके बारीक चूर्णको अच्छे प्रकार घोटे और जब वह गाढा होजाय तो चाँदीके पत्रोंपर उसका लेप करके शरावसंपुटमें पकावे इसी प्रकार सब मिलकर सोलह पुट देवे तो चाँदीकी उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है ॥ १८ ॥

तृतीयः प्रकारः।

सिद्धवंगबलिना च तालकं तारपत्रसुविशेषलेपितम्।
इन्द्रदण्डपुटपिण्डपाचितं तारयोगपुटयोगसिद्धदम् ॥ १९ ॥

अब चांदीके मारणका तीसरा प्रकार कहते हैं—बंगकी भस्म, हरिताल गंधक और इन तीनोंको खरलमें डालकर अच्छे प्रकार घोटे जब बारीक होजावे तो इस कजलीका चांदीके पत्रोंपर लेप करे और ऊपरसे कलियारीके फलोंकी लुगदी

लगाकर शरावसंपुटमें कपरमिट्टी करके गजपुटकी आंचसे पकावे तो चांदीकी उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है ॥ १९ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

गंधपारदयोरैक्यं किंचिद्वंगं च वर्षयेत् ।
द्राक्षायां चैव संयुक्तं तारपत्राणि लेपयेत् ॥ २० ॥
संपुटे तद्विनिःक्षिप्य लेपयेद्वस्त्रमृत्तिकाम् ।
प्रक्षिप्य पुटगर्ते च ज्वालयेद्गृहछाणकैः ॥ २१ ॥
स्वांगशीतलमुद्धृत्य खल्वे तन्मर्दयेद्दृढ़ ।
पंचामृतपुटं देयं वस्त्रपूतं च कारयेत् ॥ २२ ॥
वल्लार्द्धं भक्षयेत्प्रातः पूजयेत्सर्वदेवताः ।
पूजयेद्भिषजो देवान् काचभाण्डे निधापयेत् ॥ २३ ॥

अब मारणका चौथा प्रकार कहते हैं । गंधक, पारा, और कुछ राँगा मिलाकर तीनोंकी कजली करे तत्पश्चात् इस कजलीको दाखके रसमें घोटकर चांदीके कंटकवेधी पत्रोंपर अच्छे प्रकार लेपकरके शरावसंपुटमें रखके कपरमिट्टीसे बन्द करदेवे और गजपुटमें फूंकदेवे जब स्वांगशीतल होजावे तब शरावसंपुटसे उन पत्रोंको अलग निकालकर खरलमें बारीक चूर्ण करे तदनन्तर पंचामृत[2] अर्थात्

---

१ गजपुटलक्षणम् ।

१ दैर्घ्यविस्तृतिपिण्डेषु सार्द्धहस्ते तु गर्तके ।
पूर्ववद्दीयते चाग्निस्तत्पुटं गजसंज्ञकम् ॥
माहिषं चेति संज्ञेयं सूरिभिः समुदाहृतम् ॥ १ ॥

जिस गर्तकी लम्बाई, चौडाई और गहिराई डेढ २ हाथ हो उसका आधा भाग उपलोंसे भरकर औषधको संपुट रख शेष आधे भागमें फिर उपलोंको भरकर अग्नि देवे इसका नाम गजपुट या माहिषपुट है ॥ १ ॥

२ गुडूची गोक्षुरं चैव मुशली मुण्डिका तथा ।
शतावरीति पञ्चानां योगः पञ्चामृताभिधः ॥ १ ॥

गिलोय, गोखुरू, मुसली, गोरखमुण्डी, शतावरी इन सबको एकमें मिलाकर पञ्चामृत योग कहाता है ॥ १ ॥

गिलोय, गोखरू, मुसली, गोरखमुण्डी, शतावरी इनका पुट देकर किसी बारीक वस्त्रमें छानकर उत्तम शीशीमें भरकर रखलेवे, प्रतिदिन प्रातःकाल एक रत्ती सेवन करे। और सर्व देवताओंकी यथायोग्य पूजा तथा वैद्योंका सत्कार करे तो बहुत शीघ्र नीरोग होवे ॥ २०-२३ ॥

पञ्चमः प्रकारः ।

शुकप्रिये पीतकपत्रकल्के चतुर्गुणे तारकमेव रुद्धा ।
शरावके संपुटके पुटेच्च त्रिभिः पुटैरेव वराहसंज्ञैः ॥ २४ ॥

अब मारणका पांचवाँ प्रकार कहते हैं। चार भाग अनार तथा हरितालके पत्रोंकी पिसी हुई लुगदीको लेकर एक भाग चांदीके कंटकबेधी पत्रोंपर लगाकर शराव-संपुटमें रख कपरमिट्टीसे बंद करदेवे और वाराहपुटमें फूंकदेवे जब स्वांगशीतल होजावे तब संपुटसे पत्रोंको निकालकर लुगदी लगा फिर वाराहपुटमें फूंकदेवे इसी प्रकार सब मिलाकर तीन बार फूंकनेसे चांदीकी उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है ॥ २४ ॥

रौप्यभस्मगुणाः ।

तारं च तारयति रोगसमुद्रपारं देहस्य सौख्यदमिदं पलितं निहन्ति ।
हन्तीह रोगविषदोषमलं प्रसह्य वृष्यं पुनर्नवकरं कुरुते चिरायुः ॥ २५ ॥

चांदीकी भस्म रोगसमुद्रसे पार लगानेवाली है, शरीरको सुख देनेवाली तथा वलीपालितरोग और विषके विकारोंको बलपूर्वक दूर करती है, वृष्य है, युवावस्थाको प्राप्त करती है, दीर्घायुको देनेवाली है ॥ २५ ॥

अनुपानभेदेन रौप्यभस्मगुणाः ।

भस्मीभूतं रजतममलं तत्समं व्योमधातुः
सर्वैस्तुल्यं त्रिकटुरसवरं सारमाज्येन युक्तम् ।

---

१ अरत्निमात्रगर्ते यद्दीयते पूर्ववत्पुटम् ।
करीषाग्नौ तु तत्प्रोक्तं पुटं वाराहसंज्ञकम् ॥ १ ॥

जिस गर्तकी लम्बाई, चौडाई, गहराई, अरत्निमात्र अर्थात् मूठी बंधे हुए हाथके प्रमाण हो उसका आधा भाग उपलोंसे भर औषधका संपुट रख शेष आधे भागको फिर उपलोंसे भरकर अग्नि देना इसको वाराहपुट कहते हैं ॥ १ ॥
विशेष--चांदीकी भस्म बनाना हो तो हाथभर गर्त बनाना ॥

लीढं प्रातः क्षपयति नृणां यक्ष्मपाण्डूदरार्शः-
श्वासान्कासान्नयनतिमिरं पित्तरोगानशेषान् ॥ २६ ॥

उत्तम चांदीकी भस्म बराबर अभ्रक, तांबा और इन सबके बराबर त्रिकटु अर्थात् सोंठ, मिर्च, पिप्पली इनका चूर्ण और घृत मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करे तो क्षयी, पाण्डु, उदररोग, बवासीर, श्वास, खांसी, तिमिर तथा सम्पूर्ण पित्तरोग नष्ट होते हैं ॥ २६ ॥

सितया हन्ति दाहाद्यं वातपित्तं फलत्रिकात् ।
त्रिसुगन्ध्या प्रमेहादि गुल्मे क्षारसमन्वितम् ॥ २७ ॥
कासे कफेऽटरूषस्य रसे त्रिकटुकान्विते ।
भार्ङ्गीविश्वयुतं श्वासे क्षयजित्साशिलाजतु ॥ २८ ॥
क्षीणे मांसरसे देयं दुग्धे वा ललनोत्तमे ।
यकृत्प्लीहहरं प्रोक्तं वरा पिप्पलिसंयुतम् ॥ २९ ॥
पुनर्नवायुतं शोफे पाण्डौ मण्डूरसंयुतम् ।
वलीपलितहं कान्तिक्षुत्करं घृतसंयुतम् ॥ ३० ॥

उत्तम चाँदीकी भस्मको मिश्रीके साथ सेवन करे तो दाह अर्थात् जलन आदि नष्ट होते हैं । वातपित्तसे उत्पन्न हुए रोगोंमें त्रिफलाके साथ और प्रमेहमें त्रिसुगंधि अर्थात् इलायची, दालचीनी और तेजपातके साथ, गुल्मरोगमें क्षारके साथ, खाँसी और कफरोगमें त्रिकटु अर्थात् सोंठ, मिर्च, पीपलके चूर्णसे युक्त अडूसेके रसके साथ, श्वासरोगमें भारंगी और सोंठके साथ क्षयी रोगमें शिलाजीतके साथ, क्षीणतामें मांसरस वा स्त्रीके उत्तम दूधके साथ, यकृत् प्लीहामें आमला, हरड, बहेडा और पीपलके साथ, शोफमें पुनर्नवा (साँठ) के साथ, पाण्डुरोगमें मंडूरके साथ, वलीपलितरोगमें घृतके साथ देवे । इत्यादि अनुपानोंके साथ भस्मका सेवन करनेसे समस्त रोग नष्ट होकर क्षुधा तथा शरीरमें उत्तम कान्ति उत्पन्न होती है ॥ २७--३० ॥

रौप्यदलगुणाः ।

सिद्धं रौप्यदलं काये करोति विविधान्गुणान् ।
मेहघ्नं शीतलं वृष्यं बलं वीर्यं विवर्द्धयेत् ॥ ३१ ॥

सिद्ध रूपेके वर्क शरीरमें अनेक प्रकारके उत्तम गुण उत्पन्न करते हैं, प्रमेह रोगको नाश करते हैं, शीतल हैं, वृष्य हैं, बल और वीर्यको बढाते हैं ॥ ३१ ॥

रौप्यद्रुतिविधिः ।

शतधा नरमूत्रेण भावयेद्देवदालिकाम् ।
तच्चूर्णं वापमात्रेण द्रुतिःस्यात्स्वर्णतारयोः ॥ ३२ ॥

मनुष्यके मूत्रकी १०० सौ भावना देवदालीके चूर्णमें देवे और उस चूर्णको चाँदी या सोनेमें डाले तो वह पानीके समान पतले होजावे ॥ ३२ ॥

अशुद्धरौप्यभस्मसेवनोपद्रवाः ।

अशुद्धं रजतं कुर्यात्पाण्डुकण्डुगलग्रहान् ।
विबंधं वीर्यनाशं च बलहानिं शिरोरुजम् ॥ ३३ ॥

विना शुद्ध कीहुई चाँदीकी भस्म सेवन करनेसे पाण्डुरोग, खुजली, गलग्रह, मलबंध, वीर्यका नाश, बलकी हानि और शिरमें शूल उत्पन्न करती है ॥ ३३ ॥

अशुद्धभस्मजदोषशान्त्युपायः ।

शर्करामधुसंयुक्तं सेवते यो दिनत्रयम् ।
अपक्वरौप्यदोषेण विमुक्तः सुखमश्नुते ॥ ३४ ॥

जिसने अशुद्ध रौप्यभस्म सेवन किया हो वह मनुष्य यदि तीन दिन पर्यन्त मिश्री और सहत मिलाकर सेवन करे तो अपक्व रौप्यदोषसे मुक्त होकर सुखको प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

एवं वै रौप्यविषये चोत्पत्त्यादि यथाक्रमात् ।
द्वादशेऽस्मिन्नथाध्याये शिष्य तेऽद्य प्रकीर्तितम् ॥ ३५ ॥

हे शिष्य ! इस प्रकार आज चाँदीके विषयमें उसकी उत्पत्ति, शोधन, मारण आदि यथाक्रमसे तुम्हारे लिये इस बारहवें अध्यायमें मैंने वर्णन किया ॥ ३५॥

इति श्रीटकसालनिवासिपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते
रसेन्द्रपुराणे रौप्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथातस्ताम्रवर्णनं नाम त्रयोदशाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम ताम्रवर्णन नामक तेरहवें अध्यायका वर्णन करेंगे ॥

गुरुरुवाच ।

ताम्रस्य शोधनं वत्स मारणं चापि श्रूयताम् ।
यस्य प्रयोगमात्रेण मुच्यते रोगपाशतः ॥ १ ॥

हे वत्स ! अब इस बारहवें अध्यायमें ताँबाकी शोधन तथा मारणादि क्रियाको कहताहूँ सो तुम सुनो, जिसके प्रयोगमात्रसे मनुष्य रोगोंकी फांसीसे छूट जाता है ॥ १ ॥

ताम्रोत्पत्तिः ।

शुक्रं यत्कार्तिकेयस्य पतितं धरणीतले ।
तस्मात्ताम्रं समुत्पन्नमिदमाहुः पुराविदः ॥ २ ॥

पृथिवीमें जो कार्तिकेयका वीर्य गिरा उससे ताम्रकी उत्पत्ति हुई यह बुद्धिमान् मनुष्य कहते हैं ॥ २ ॥

ताम्रभेदाः ।

म्लेच्छं नैपालकं चेति द्विविधं ताम्रमीरितम् ।
नेपालादन्यखन्युत्थं म्लेच्छमित्याभिधीयते ॥ ३ ॥

बुद्धिमान् वैद्योंने ताँबाके दो भेद बतलाये हैं,उनमेंसे पहला म्लेच्छ और दूसरा नैपालक है, नेपालकी खानमें जो पैदा होता है वह नैपालक कहाताहै और इसके अतिरिक्त जो अन्य खानोंसे निकलता हैं वह सब म्लेच्छ नामसे कहा जाताहै॥३॥

तत्रादौ म्लेच्छताम्रलक्षणम् ।

कृष्णं रूक्षमतिस्तब्धं श्वेतं चापि घनासहम् ।
क्षालितं च पुनः कृष्णमेतन्म्लेच्छस्य लक्षणम् ॥
लोहनागयुतं शुल्वं दुष्टं मृत्यौ त्यजेद्बुधः ॥ ४ ॥

अब म्लेच्छ ताम्रके लक्षण कहते हैं । जो ताँबा काला, रूखा, कडा, सफेद और घनकी चोटको न सहसकता हो तथा धोनेपर जिसका रंग फिर कालापन ले आवे उसको म्लेच्छ कहते हैं, और जो ताम्र, लोहा तथा सीसेसे युक्त हो वह श्रेष्ठ नहीं है इसी कारण वैद्यको उचित है कि, मारण कर्ममें इसका त्याग करे ॥ ४ ॥

नेपालताम्रलक्षणम्।

जपाकुसुमसंकाशं स्निग्धं मृदु घनक्षमम्।
लोहनागोज्झितं ताम्रं नैपालं मृत्यवे शुभम्॥ ५॥

अब नेपाल ताम्रके लक्षण कहते हैं। जा ताम्र दुपहरियाके पुष्पके तुल्य हो, स्निग्ध और नरम हो, घनकी चोटके योग्य हो, लोह और सीसेका जिसमें मेल न हो उसको नैपाल कहते हैं। वह मारण कर्ममें श्रेष्ठ है॥ ५॥

ताम्रस्य सदोषत्ववर्णनम्।

न विषं विषमित्याहुस्ताम्रं तु विषमुच्यते।
एको दोषो विषे सम्यक्ताम्रे त्वष्टौ प्रकीर्तिताः॥ ६॥

वैद्यक शास्त्रक जाननेवाले श्रेष्ठ वैद्य विषको विष नहीं कहते किन्तु ताँबाको विष कहते हैं, क्योंकि विषमें तो एक ही दोष है और ताँबेमें आठ दोष हैं॥ ६॥

ताम्रस्थाष्टविधदोषाः।

अतःपरं ताम्रसमाश्रितांश्च दोषांश्च वक्ष्ये बहुधा विलोक्य।
वान्तिर्भ्रान्तिः संक्लमस्तापशूले कण्डुत्वं वै रेचता वीर्यहन्त्री॥
अष्टौ दोषाः कीर्तितास्ताम्रमध्ये तेषां सर्वं शोधनं कीर्तयिष्ये॥ ७॥

हे वत्स! अब मैं ताम्रस्थित अनेक दोषोंको देख तुमसे कहताहूँ ताँबेमें वान्ति, भ्रान्ति, ग्लानि, दाह, शूल, खुजली, दस्त और शुक्रकी हानि यह आठ दोष होते हैं इस कारण इन दोषोंके दूर करनेके लिये ताँबेका शोधन कहते हैं॥ ७॥

ताम्रशोधनम्।

तक्रं तैलं धेनुमूत्रं च वान्तिं भ्रान्तं हन्यात्कांजिकं कौलथाम्भः।
वज्रीदुग्धं धेनुदुग्धं क्लमं च तापं हन्यात्तिन्तिणी निम्बुतोयम्॥ ८॥
शूलं हन्यात्कन्यकाशीर्षिकोयं हन्याद्दुग्धं गोघृतं कण्डुतां च।
रेचं हन्यात्सौरणं मस्तुतोयं क्षौद्रं द्राक्षावीर्यहन्तृत्वमाशु॥ ९॥
तप्तानि तप्तानि च पत्रकाणि ताम्रस्य सूक्ष्माणि विशोधयेद्वा।
सप्तैव वारांश्च पृथक्पृथग्वै ततः परं शुद्धतराणि नूनम्॥ १०॥

यदि ताँबेको मठा, तेल वा गायके मूत्रमें शुद्ध करे तो वान्ति अर्थात् वमन दूर होताहै, कांजी और कुलथीके क्वाथमें शोधनेसे भ्रान्तिदोषको हरता है, थूह-

रके दूध और गौके दूधमें क्लम (ग्लानि) को नाश करता है, इमली वा निंबूके रसमें ज्वरको दूर करता है, घीकुवार और नारियलके रसमें शूलको मारता है, दूध और घृतमें खुजलीको नष्ट करता है, सूरण (जमीकन्द) तथा दहीके पानीमें बहुत दस्तोंको रोकताहै, सहत और दाखमें वीर्यके सब दोषोंको नाश करता है। इसके शोधनेकी यह रीति है कि, ताँबेके कंटकवेधी पत्र बनवाकर अग्निमें तपा २ कर पूर्वोक्त औषधियोंके काढा और दुग्ध आदिमें सात २ बार अलग २ बुझावे तो इसकी उत्तम शुद्धि होजाती है ॥ ८-१० ॥

ताम्रशोधनस्यानेकप्रकाराः।

अथवा ताम्रपत्राणां तैले तक्रे च शोधनम् ।
कारयेत् पूर्ववद्वैद्यो शुद्धिश्चैषापि संस्मृता ॥ ११ ॥
वज्र्यर्कवृक्षदुग्धस्य लवणस्य तथा शुभम् ।
कल्कन्तु सूक्ष्मपत्रेषु लेपयेच्च भिषग्वरः ॥ १२ ॥
ततस्तु तानि पत्राणि वह्नौ संतापयेन्मुहुः ।
अनन्तरन्तु निर्गुण्ड्या रसे सिञ्चेत्रिवारकम् ॥
एवं वै ताम्रपत्राणां शुद्धिश्च भवति ध्रुवम् ॥ १३ ॥
अथवा चाग्नितप्तानि पत्राणि च मुहुर्मुहः ।
वह्नौ संताप्य वज्र्यर्कदुग्धे सिञ्चेत्पुनःपुनः ॥
एवं चापि रक्तधातोः शुद्धिः प्रोक्ता चिकित्सकैः ॥ १४ ॥
अथवैतानि पत्राणि चिञ्चापटुसमन्विते ।
गवां मूत्रे च तीव्राग्नौ पाचयेद्यामसात्रतः ॥ १५ ॥

अथवा ताँबेके कंटकवेधी पत्रोंको तेल, मठामें, शुद्ध करावे क्योंकि यह भी शोधनेका प्रकार है । अथवा थूहर और आकवृक्षके दूधमें नमक मिलाकर कल्क बनावे और उस कल्कको पत्रोंपर लेप करके अग्निमें तपा २ कर निर्गुण्डी (सम्हालू) के स्वरसमें तीन बार बुझावे तो ताम्रपत्रोंकी शुद्धि होजाती है इसमें सन्देह नहीं है अथवा ताँबेके कंटकवेधी पत्रोंको अग्निमें तपा २ कर थूहर और आकके दूधमें बुझानेसे भी वैद्योंने शुद्धि कही है अथवा गायके मूत्रमें इमली और नमक मिलाकर और उसीमें ताँबेके पत्रोंको एक प्रहरमात्र पकावे तो उत्तम शुद्धि होजाती है ॥ ११-१५ ॥

ताम्रमारणविधिः ।

पलानि पञ्च शुद्धानि ताम्रपत्राणि बुद्धिमान् ।
गृहीत्वा योजयेत्तत्र तदूर्द्धं शुद्धपारदम् ॥ १६ ॥
मर्दयेन्निम्बुकद्रावैस्त्रिदिनान्युभयं भिषक् ।
ताम्रपत्रैः समं शुद्धं गन्धकं तत्र निःक्षिपेत् ॥ १७ ॥
मर्दयित्वा घटीयुग्मं काचकुप्यां निधापयेत् ।
यामानष्टौ पचेदग्नौ स्वाङ्गशीतलमुद्धरेत् ॥ १८ ॥
एष ताम्रेश्वरो हन्यात्कुष्ठादीनखिलान्गदान् ।
धातुपुष्टिकरश्चैव सूतिकारोगनाशनः ॥ १९ ॥

अब ताँबेके मारणकी विधि कहते हैं । पाँच पल अर्थात् बीश तोले शुद्ध कियाहुआ ताँबा और पाँच तोले शुद्ध कियाहुआ पारा इन दोनोंको खरलमें डालकर कागजी निंबूके रसमें एक प्रहर पर्यन्त मर्दन करे और दूसरे दिवस निंबूका रस निकालडाले तत्पश्चात् नवीन रस छोडकर फिर घोटे इस प्रकार तीन दिन पर्यन्त घोटे और प्रतिदिन रस निकाल डाले, चौथे दिवस पारा युक्त उन ताम्रपत्रोंको स्वच्छ जलसे धोडाले, पाराके संयोगसे जो ताँबेके पत्र श्वेत रंगके होगये हैं उनको खरलमें छोडे और जितना ताँबा हो उसका आधा शुद्ध गंधक डालकर दो घडी पर्यन्त रसके विना खरलकरे जब बारीक होजावे तब काचकी शीशीमें भरकर शीशीका मुख बंद करदेवे (कोई वैद्य शीशीका मुख बंद नहीं करते) और आठ प्रहरकी आँच देकर वालुकायंत्रमें पकावे जब स्वांगशीतल होजावे तब सावधानीके साथ शीशीको फोडडाले उसमें नीचेके भागमें जो ताँबा हो उसको अलग निकाल लेवे और ऊपर जो सिंदूर हो उसे पृथक् निकाले अर्थात् एकमें न मिलनेपावें । इस रसका नाम ताम्रेश्वर है यदि प्रतिदिन प्रातःकाल लौंगके साथ इसकी एक रत्ती सेवन करे तो कुष्ठ तथा श्वास आदि रोगोंको दूर करताहै, धातुको पुष्ट करताहै, सूतिकाके रोगोंको हरताहै ॥ १६-१९ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

तिलपर्णिरसैस्ताम्रपत्राणि परिलेपयेत् ।
शुभ्रवर्णं भवेद्भस्म नात्र कार्या विचारणा ॥ २० ॥

ताँबेके कंटकबेधी पत्रोंपर तिलपर्णीके रसका लेप करे और उनको गजपुटमें फूँक देवे तो सफेद रंगवाली उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है ॥ २० ॥

तृतीयः प्रकारः ।

शुद्धार्कपत्रं च रसार्द्धलिप्तं द्विभागगन्धान्वितदुग्धिकाम्बु ।
स्मृतं ततो भस्मपुटैर्दिनैकं तदाशु मृत्युं समुपैति ताम्रम् ॥ २१ ॥

शुद्ध किये हुए ताँबेके एक भाग कंटकबेधी पत्रोंपर आधा भाग पारा और दो भाग गंधकको दुद्धीके रसमें अच्छे प्रकार बारीक घोटकर लेप करे और गजपुटकी आँचमें फूँक देवे तो शीघ्र ही वे ताँबेके पत्र मृत होवें ॥ २१ ॥

सोमनाथताम्रविधिः ।

सूताद्विगुणितं ताम्रपत्रं कन्यारसैः प्लुतम् ।
पिष्ट्वा तुल्येन बलिना भाण्डमध्ये विनिःक्षिपेत् ॥ २२ ॥
धृत्वा शरावके चैतत्तदूर्ध्वं लवणं क्षिपेत् ।
मुखे शरावकं दत्त्वा वह्निं यामचतुष्टयम् ॥ २३ ॥
ज्वालयेदवचूर्ण्यैतद्वल्लमात्रं प्रयोजयेत् ।
पिप्पलीमधुना साकं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ २४ ॥
श्वासं कासं क्षयं पाण्डुमग्निमान्द्यमरोचकम् ।
गुल्मप्लीहयकृन्मूर्च्छाशूलं पक्त्यर्ध्वमुद्धन्ति ॥ २५ ॥
दोषत्रयसमुद्भूतानामयाञ्जयति ध्रुवम् ।
रोगानुपानसहितं जयेद्धातुगतं ज्वरम् ॥ २६ ॥
रसे रसायने चैव योजयेद्युक्तमात्रया ।
सोमनाथाभिधं ताम्रं पुरा प्रोक्तं चिकित्सकैः ॥ २७ ॥

अब सोमनाथ नामके ताम्रके बनानेकी विधि कहते हैं । शुद्ध किये हुए ताँबेके पत्र एक भाग और शुद्ध पारा दो भाग खरलमें डालकर घीकुवारके रसमें घोटे तत्पश्चात् ताँबेके बराबर गंधक मिलाकर जब तक अच्छे प्रकार बारीक न होजावें तब तक फिर घोटे और एक नवीन शरवेमें नमक बिछाय उसमें इस घोटी हुई औधषको रखकर ऊपर भी नमक बिछाय देवे और दूसरे शरवेसे ढाँप सन्धियोंको भी बंद करदेवे तत्पश्चात् गजपुटमें रख चार प्रहरकी आँचसे पकावे, जब स्वांगशीतल होजावे तब शरावसंपुटसे अलग निकाल खरलमें बारीक पीसकर किसी उत्तम शीशीमें भरकर रखदेवे और पीपल तथा सहतके साथ सब रोगोंमें देवे तो मनुष्य रोगरहित होवे रोगानुसार अनुपानके साथ सेवन करनेसे श्वास, कास, क्षयी, पाण्डु, मन्दाग्नि, अरुचि, गुल्म, तापतिल्ली, मूर्च्छा, परिणाम

शूल तथा त्रिदोषसे उत्पन्न रोग और धातुगत रोगोंको नाश करताहै । वैद्यको उचित है कि, वह रस और रसायनमें इसकी योग्यमात्राकी कल्पना अपनी बुद्धिसे करे । यह योगनाथ नामक रस पुराने वैद्योंने कहा है ॥ २२-२७ ॥

सोमनाथोक्तताम्रयोगः ।

रसेन्द्रस्य च भागैकं भागैकं गन्धकस्य च ।
चतुर्थांशं च वै तालमष्टभागां शिलां तथा ॥ २८ ॥
सञ्चित्य मर्दयेत्खल्वे कज्जलीं कारयेत्ततः ।
निम्बुतोयस्य योगेन ताम्रपत्रेषु लेपयेत् ॥ २९ ॥
ततस्तु वालुकायन्त्रे पचेद्यामचतुष्टयम् ॥
स्वांगशीतं समुद्धृत्य तथैव कारयेत्पुनः ॥ ३० ॥
एवं वारत्रयं कृत्वा गृह्णीयाद्भस्म चोत्तमम् ।
गुञ्जाद्वयप्रयोगेण क्षीयते रोगसञ्चयः ॥ ३१ ॥
शूलं पाडुण्ज्वरं गुल्मं प्लीहरोगं क्षयं तथा ।
अग्निमान्द्यं च कासं च ग्रहणीं नाशयेत्परम् ।
एष योगो मयाख्यातः सोमनाथेन कीर्तितः ॥ ३२ ॥

एक भाग पारा, एक भाग गंधक, चार भाग हरिताल और ८ भाग मनाशिल इन सबको एकत्र करके खरलमें घोटकर बारीक कज्जली करे और नींबूके रसके साथ ताँबेके कंटकबेधी पत्रोंपर लेपकरे तत्पश्चात् वालुकायन्त्रमें चार प्रहर पर्यन्त पकावे और जब स्वांगशीतल हो तब पत्रोंको बाहर निकाल फिर भी पूर्ववत् लेप करके बालुकायन्त्रमें पकावे इसी प्रकार सब मिलाकर तीन बार पकावे और फिर उस सिद्ध भस्मको काचकी शीशीमें रखछोडे इस भस्मको प्रतिदिन दो रत्ती प्रमाण विधिपूर्वक सेवन करनेसे रोगोंका समूह नष्ट होताहै तथा परिणाम शूल, उदर-शूल, पाण्डुज्वर, गोला, तापतिल्ली, क्षयी मंदाग्नि, श्वास कास और ग्रहणी आदि रोग तो बहुत ही शीघ्र दूर होते हैं । यह सोमनाथका कहाहुआ योग मैंने तुमसे कहा ॥ २८-३२ ॥

ताम्रपरीक्षा ।

बर्हिकण्ठच्छविनिभं ताम्रं भवति केवलम् ।
पिष्टं चूर्णत्वमायाति रसश्चेत्तुसचन्द्रिकम् ॥ ३३ ॥

ताँबेकी यह पहचान है कि, जिस ताँबेका रंग मोरके कंठके समान हो और पीसने पर बारीक चूर्ण होजावे तथा पारेके संबधसे जिसमें झलक पैदा हो वह श्रेष्ठ जानना ॥ ३३ ॥

रसेन्द्रेण विना ताम्रं यः करोति पुमानिह ।
उदरे तस्य कीटानि जायन्ते नात्र संशयः ॥ ३४ ॥

जो मनुष्य पारेके संबन्ध विना ताँबेकी भस्म बनाताहै और उसका सेवन करताहै उसके उदरमें कृमिरोग पैदा होताहै इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३४ ॥

ताम्रमारणविधिः ।

रसगन्धकयोः कृत्वा कज्जलीमर्धजां तथा ।
पत्रं लिम्पेत्कण्टवेध्यं म्रियते ताम्रमातपे ॥ ३५ ॥

जितना ताँबा हो उसका आधा पारा और गंधकको कजली बनाकर ताँबेके कंटकवेधी पत्रोंपर लेप करके धूपमें सुखावे तो ताँबा भस्म होजाय ॥ ३५ ॥

अम्लपिष्टं मृतं ताम्रं सूरणस्थं बहिर्मृदा ।
पुटेत्पञ्चामृतैर्वापि त्रिधा वान्त्यादिनाशनम् ॥ ३६ ॥

उत्तम ताँबेको लेकर अम्लवर्गमें कहे हुए अनार अम्लवेत तथा बिजोरा नींबू आदिके रसमें घोटे और उस घोटी हुई औषधको जिमीकन्दमें गढा करके रखदेवे तत्पश्चात् जिमीकन्दके टुकडेसे उसका मुख बन्द करके कपरौंटी करे और गज-पुटकी आँचमें फूँकदेवे । इसी रीतिसे पञ्चामृत अर्थात् गिलोय, गोखुरू, मुसली, गोरखमुंडी, शतावर इनकी तीन पुट देनेसे ताँबेके वान्ति, भ्रान्ति, ग्लानि, दाह, खुजली, दस्त, वीर्यनाश और ज्वर यह आठ प्रकारके दोष नष्ट होते हैं ॥ ३६ ॥

ताम्रगुणाः ।

कुष्ठप्लीहज्वरकफमरुच्छ्वासकासार्तिशोफाँ-
स्तंद्राशूलोदरकृमिवमीपाण्डुमोहातिसारान् ।
अर्शोगुल्मक्षयभ्रमशिरोव्याधिमेहादिहिक्काः
शुद्धं शुल्वं हरति सततं वह्निवृद्धिं करोति ॥ ३७ ॥

अब ताम्रके गुण कहते हैं । अच्छे प्रकार शुद्ध किये हुए ताँबेकी बनाई हुई भस्मके सेवनसे अठारह प्रकारके कुष्ठ, पिलही, ज्वर, कफज रोग, वायुसे उत्पन्न रोग, श्वास, खाँसी, पीडा, शोथ, तंद्रा, शूल, उदरव्याधि, कृमिरोग, वमन, पाण्डु-मोह, अतिसार, बवासीर, गुल्म, क्षयी, भ्रम, शिरके रोग, बीस प्रकारके प्रमेह, और हिक्कारोगको नाश करता है तथा जठराग्निको निरन्तर प्रदीप्त करताहै ॥३७॥

तास्रभस्मसेवनानुपानानि ।

शाल्मलीरससंयुक्तं घृतमाक्षिकसंयुतम् ।
रक्तिकं ताम्रजं भस्म षण्मासं नित्यमभ्यसेत् ॥ ३८ ॥
दुग्धं खण्डं चानुपानं प्रदद्यात्साज्यं भोज्यं त्याज्यमम्लेन युक्तम् ।
वीर्यं पुष्टिर्दीपनं देहदार्ढ्यं दिव्या दृष्टिर्जायते कामरूपम् ॥ ३९ ॥

अब ताम्रभस्मके सेवनका अनुपान कहते हैं । एक रत्ती ताम्रकी भस्ममें सेमरका रस, घी, और शहत मिलाकर छः मास पर्यन्त प्रतिदिन सेवन करे और ऊपरसे मिश्रीयुक्त दुग्धका पान करे नित्य घृतयुक्त भोजन करे तथा अम्लयुक्त भोजनका त्याग रक्खे इसके सेवनसे वीर्यकी दृढता, जठराग्निकी दीप्ति, शरीरकी पुष्टता, दिव्यदृष्टि और कामके तुल्य मनोहर रूप होता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अनुपानकल्पना ।

पूर्वेषां मतमालोक्य वैद्यैराधुनिकैर्बुधैः ।
स्वबुद्ध्या दीयते ताम्रं रोगनाशनवस्तुभिः ॥ ४० ॥

वैद्यको चाहिये कि, वह पूर्व वैद्योंकी सम्मतिको अच्छे प्रकार देख तथा आधुनिक कार्यकुशल वैद्योंकी भी सम्मति लेकर और निज बुद्धिसे दोनोंमें पूर्वापर हानि लाभ विचारकर रोगनाश करनेवाली औषधोंके साथ इस ताम्रभस्मको रोगीके लिये देवे ॥ ४० ॥

भूनागोत्पत्तिस्तद्भेदाश्च ।

वर्षासु वृष्टिसंक्लिन्ने भूगर्भे सम्भवन्ति हि ।
जन्तवः कृमिरूपा ये ते भूनागा इति स्मृताः ॥ ४१ ॥
चतुर्विधास्तु भूनागाः स्वर्णादिखनिसम्भवाः ।
स्वर्णादिभूमिसंभूता दुर्लभास्ते प्रकीर्तिताः ॥ ४२ ॥
ताम्रभूमिभवाः प्रायः सुलभा गुणवत्तराः ॥ ४३ ॥

वर्षामें जब पृथिवी वृष्टिजलसे आर्द्र होती है, तब भूगर्भमें जो कृमिरूप जन्तु पैदा होते हैं संस्कृतमें उन्हें भूनाग और हिन्दी भाषामें केंचुआ कहते हैं वह सुवर्ण आदिकी खानियोंसे उत्पन्न चार प्रकारके होते हैं, उनमेंसे सुवर्ण आदिकी खानसे उत्पन्न केंचुआ मिलना कठिन है पर ताम्रभूमिसे उत्पन्न तो सहजमेंही मिलसकते हैं और यह अत्यन्त गुणकारी हैं ॥ ४१-४३ ॥

भूनागादिताम्रसत्त्वग्रहणविधिः ।

ताम्रभूभवभूनागान्गृहीत्वा यत्नतः पुमान् ।
गुडगुग्गुललाक्षोर्णामत्स्यपिण्याकटंकणैः ॥ ४४ ॥
दृढमेतांश्च संयोज्य मर्दयित्वा धमेत्सुखम् ।
मुञ्चति ताम्रवत्सत्त्वं तद्वत्पक्षोऽपि बर्हिणाम् ॥ ४५ ॥

अब केंचुआ और मोरपंखोंसे ताँबा निकालनेकी विधि कहते हैं । ताम्रभूमिमें पैदा हुए केंचुओंको खरलमें डाले और उसीमें गुड, गूगल, लाख, ऊन, छोटी मछली, तिलकी खल और सुहागेको मिलाकर घोटे जब अच्छे प्रकार घुट जावे तब मूषामें रख बंकनालसे धोंके तो ताम्रके सदृश यह भी सत्त्वको छोडता है। जो विधि केंचुओंसे ताम्र निकालनेकी कही है उसी विधिसे मोरपंखोंसे भी ताम्र निकालना चाहिये ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

भूनागताम्रसत्त्वग्रहणस्य प्रकारः ।

भूभुजंगं समादाय चतुष्प्रस्थसमन्वितम् ।
प्रक्षाल्य रजनीतोयैः शीतलैश्च जलैरपि ॥ ४६ ॥
उपोषितमयूरं च शूरं वा चरणायुधम् ।
क्रमेण चारयित्वाथ तद्विष्ठां समुपाहरेत् ॥ ४७ ॥
क्षाराम्लैः सह संपेष्या विशोष्य च खरातपे ।
ततः खर्परके क्षिप्त्वा भर्जयित्वा मषिं चरेत् ॥ ४८ ॥
मषिं द्रावणवर्गेण संयुक्तं सुप्रमर्दितम् ।
निरुध्य कोष्ठिकामध्ये प्रधमेद्घटिकाद्वयम् ॥ ४९ ॥
शीतलीभूतमूषायां खोटमाहृत्य पेषयेत् ।
प्रक्षाल्य स्वकाञ्शुद्धान्समादाय प्रयत्नतः ॥ ५० ॥

चार सेर केंचुओंको लाकर हल्दीके पानीसे धोडाले तत्पश्चात् ठण्डे पानीसे धोकर किसी भूँखे मोर वा मुर्गेको खिलावे जब वह विष्ठा करे तब उस विष्ठाको एकत्र कर उसमें खार और खटाई मिलाकर पीसडाले और तेज धूपमें सुखाकर खपरेमें भूँने, जब कोयलाके समान काला होजावे तब उसे उतारकर द्रावणवर्गके साथ घोटे और मूषामें रख दो घडीतक अग्निपर रखकर बंकनालसे धोंके जब दो

घडी व्यतीत होजावें तो उतारलेवे और स्वांगशीतल होनेपर मूषासे अलग निकालकर पीस लेवे पश्चात् पानीसे धाकर उसमेंसे तांबेके खाओंको प्रयत्नसे बीनलेवे ॥ ४६-५० ॥

नागताम्रविधिः ।

मयरपक्षमादाय ज्वालयेदाज्यसर्पिषा ।
खलगुग्गुलमीनोर्णाटंकणं सर्जिकामधु ॥ ५१ ॥
गुञ्जां पिप्पललाक्षां च घृतं चैकत्र कारयेत् ।
धमेत्तदंधमूषायां नागताम्रं प्रजायते ॥ ५२ ॥

मोरपक्षीके पंखोंको लाकर बकरीके घीमें अच्छे प्रकार डुबाकर जलावे, जब जलकर राख होजावे तब उसमें तिलोंकी खल, गूगल, छोटी मछली, ऊन, सुहागा, सज्जीखार, शहद, घूंघची, पीपलकी लाख और घृत इन सबको एकमें मिलाकर अंधमूषामें रख अग्निपर रक्खे और बंकनालसे धोंके तो मोरपखोंसे तांबा निकले इसका नाम नागताम्र है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

भूनागमयूरपिच्छोत्थसत्त्वगुणाः ।

भूनागसत्त्वं शिशिरं सर्वकुष्ठव्रणप्रणुत् ।
तद्युक्तं जलपानेन स्थावरं जङ्गमं विषम् ॥ ५३ ॥
विषं नश्यति सूतोत्र गतः सूतेऽग्निधीरताम् ।
एवं मयूरपिच्छोत्थसत्त्वस्यापिगुणामताः ॥ ५४ ॥

अब भूनाग और मोरपंखसे निकाले हुए ताम्रसत्त्वके गुण कहते हैं । भूनाग अर्थात् केंचुओंसे निकाला हुआ सत्त्व शीतल है, और अठारह प्रकारके कुष्ठ और व्रणको दूर करता है और यदि इस सत्त्वसे युक्त जलका पान करे तो स्थावर तथा जंगम दोनों प्रकारके विषोंको नष्ट करता है, तथा इस सत्त्वसे युक्त शुद्ध पारा भी विषको हरता है और पारा इसके संबंधसे अग्निस्थाई होता है । यही सब गुण मयूरपिच्छसे निकाले हुए सत्त्वमेंभी हैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

तुत्थस्थितताम्रसत्त्वग्रहणविधिः ।

तुत्थस्य टंकणं पादं चूर्णयन्मधुसर्पिषा ।
तुत्थेन मिश्रितं ध्मातं कोष्ठीयन्त्रे दृढाग्निना ॥ ५५ ॥
धामितं द्रवते सत्त्वं कीरतुण्डसमप्रभम् ॥
तुत्थस्य टंकणं पादं तैले चाथ करञ्जके ॥ ५६ ॥

दिनैकं मर्दयेत्खल्वे तुलायन्त्रे दृढाग्निना ।
ध्मापितं मुञ्चते सत्त्वं शुकतुण्डसमप्रभम् ॥ ५७ ॥
मनुजस्याथवा कृष्णकेशैर्युक्तं च तुत्थकम् ।
पूर्ववत्प्रधमेत्सम्यक्सत्त्वं चाशु विमुञ्चति ॥ ५८ ॥
एवं मयूरपिच्छास्तु भूमिनागास्तथैव च ।
मुञ्चन्ति ताम्रवत्सत्त्वं सन्देहो नास्ति कश्चन ॥ ५९ ॥

अब तुत्थ अर्थात् नीलेथोथेसे ताम्रसत्त्व निकालनेकी विधि कहते हैं । जितना नीलाथोथा हो उसका चौथाई भाग सुहागा मिलाकर घी और शहदके साथ खरलमें अच्छे प्रकार घोटे तत्पश्चात् कोष्ठीयन्त्रमें रख तीव्र आँच देवे तो शुक-पक्षीके मुखके समान लाल रंगका ताम्र सत्त्व निकलता है । अथवा तीन भाग नीलाथोथामें एक भाग सुहागा मिलाकर एक दिन कंजके तैलमें घोटके तुला-यन्त्रमें रख तीव्र आँचसे पकावे तो शुकतुण्डके तुल्य,लालरंगका सत्त्व निकलता है । अथवा मनुष्यके काले रंगके बालोंके साथ नीलाथोथेको पहलेकी तरह कोष्ठीयन्त्रमें रखकर फूँकदेवे तो शीघ्र ही ताम्रसत्त्व निकलता है । इसी विधिसे मोरपंख और भूनाग भी ताम्रके समान सत्त्वको छोडते हैं इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ ५५-५९ ॥

आखिलताम्रसत्त्वोपयोगः ।

पूर्वोक्तैस्तु त्रिभिः सत्त्वै रवौ निर्माय मुद्रिकाम् ।
जले प्रक्षालयेत्सम्यक्तज्जलं च पिबेन्नरः ॥ ६० ॥
विषं च नश्यति ह्याशु स्थावरं जङ्गमं तथा ।
प्रसूतिस्तु भवेत्सद्यो योगेनानेन निश्चितम् ॥ ६१ ॥
नेत्रामयांस्त्रिदोषांश्च व्रणदोषांस्तथैव च ।
भूतबाधां ग्रहव्याधिं शूलं हन्याच्च सत्वरम् ॥ ६२ ॥
एष प्रशस्तयोगस्तु भाल्लुक्याख्येन कीर्तितः ।
कथितस्तु मया वत्स तुभ्यं लोकहितैषिणा ॥ ६३ ॥

पहले कहेहुए भूनाग मोरपंख और नीलाथोथा इन तीनोंसे निकालेहुए ताम्र सत्त्वोंसे रविवारके दिन एक अँगूठी बनाकर पानीमें धोवे और उस जलका पान करे तो स्थावर जङ्गम दोनों प्रकारके विष नष्ट होते हैं, इस योगके सेवनसे

निस्सन्देह स्त्रियोंको प्रसूति शीघ्र सुखसे होती है, यह सत्त्वयुक्त जल समस्त नेत्ररोग, त्रिदोष, व्रणदोष, भूतोंकी बाधा, ग्रहव्याधिऔर शूलरोगको नाश करता है हे वत्स ! भालुकिसे कहा हुआ उत्तम योग यह, लोकके हित चाहनेवाले मैंने तुमसे कहा ॥ ६०–६३ ॥

पूर्वोक्तसत्त्वयुक्तजलाभिमन्त्रणमन्त्र ।

रामवत्सोमसेनानीर्मुद्रितेति तथाक्षरम् ।
हिमालयोत्तरे पार्श्व स्वकर्णश्च मरुद्रुमः ॥ ६४ ॥

तीनों सत्त्वोंसे बनाई हुई अँगूठीको पानीमें धोवे और उस पानीको ऊपर कहे हुए मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके पीवे ॥ ६४ ॥

ताम्रद्रुतिः ।

लवणक्षारमत्राणि क्षाराश्चौषधसम्भवाः ।
एषां क्षारसमास्तेषां औषधीः कन्दसम्भवाः ॥ ६५ ॥
यच्चस्याद्द्रावकं कल्कफलत्रयक_त्रयम् ।
कुलत्थक्वाथतोयं च सर्वं मृद्वग्निना पचत् ॥ ६६ ॥
गालयद्वस्त्रयागन पुनः पाकं च कारयेत् ।
तेनैव भावयेच्चैव शुद्धं शुल्बस्य चूर्णकम् ॥ ६७ ॥
एकविंशतिवारांश्च भावयित्वा विशोषयेत् ।
लीदमध्ये तु भूगर्भ धान्यराशौ च भास्करे ॥ ६८ ॥
सप्ताहं धारयेत्तं तु दोलायां चैव स्वेदयेत् ।
एकविंशद्दिने जाते शुल्बस्यैव द्रुतिर्भवेत् ॥
सा द्रुतिः सर्वथोत्कृष्टा रसरूपा च निर्मला ॥ ६९ ॥

अब ताम्रकी द्रुति करनेका विधान कहते हैं। सामुद्र, सैंधव, रौमक जिसको साँभरिभी कहते हैं विड (क्षार मृत्तिकासे निकाला हुआ), सौवर्चल जिसको संचर या काला नमकभी कहते हैं यह पांच प्रकारके नमक सब मूत्रोंके क्षार, सब औषधियोंके क्षार, कंदोंके क्षार तथा पूर्वोक्त द्रव्योंसे अन्यभी जो द्रुति करनेवाली औषधें हों वह सब और त्रिफला, त्रिकटु आदिको एकत्र करके कुलथीके क्वाथमें मंद आंचसे पकावे जब ठीक २ पकजावे तो उतारकर कपडेसे छान लेवे और फिर पकावे, पकते २ जब गाढा होजाय तब उतारकर शुद्ध तांबेके

चूर्णमें भावना देवे इसी प्रकार इक्कीस पुट देवे और प्रत्येक पुटमें धूपमें सुखा-लियाकरे तत्पश्चात् जमीनके भीतर लीदमें तथा अन्नकी राशि और धूपमें सात २ दिन रखकर दोलायन्त्रमें विधिपूर्वक स्वेदन करे । इस प्रकार इक्कीस दिन व्यतीत होनेपर ताम्रकी रसरूप स्वच्छ द्रुति सिद्ध होती है ॥ ६५–६९ ॥

ताम्रजदोषशान्त्युपायः ।

मुनिव्रीहिसितापानं धान्याकं वा सितायुतम् ।
ताम्रदोषमशेषं वै पिबन्हन्याद्दिनत्रयम् ॥ ७० ॥

अब ताम्रदोषोंकी शान्तिका उपाय कहते हैं । मुनिव्रीही अर्थात् नीवार (तृणधान्यविशेष) को शक्करके साथ बारीक पीस जल मिलाकर पीवे तो तीन दिनमें ताम्रजनित दोष शान्त होवे ॥ ७० ॥

एवं त्रयोदशाध्याये ताम्रस्य हि शुभाः क्रियाः ।
वर्णिता विधिवद्वत्स मया लोकहितैषिणा ॥ ७१ ॥

हे वत्स ! लोकके हित चाहनेवाले मैंने इस तेरहवें अध्यायमें विधिपूर्वक ताम्रकी उत्तम क्रियाओंका तुमसे वर्णन किया ॥ ७१ ॥

इति श्रीटकसालनिवासीपाण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे ताम्रवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथातो वंगवर्णनं नाम चतुर्दशाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब हम वंगवर्णन नामक चौदहवें अध्यायका वर्णन करते हैं ॥

शिष्य उवाच ।

वंगभस्म शोधनादीनि प्रकाराण्यपि वर्णय ।
तत्सेवनविधिं चापि शरणागतवत्सल ॥ १ ॥

शिष्यने कहा कि हे शरणागतवत्सल गुरो अब वंगकी शोधन तथा मारण आदि श्रेष्ठ क्रियाओं और उसके सेवन करनेकी विधिको मुझसे कहो ॥ १ ॥

एवं शिष्यमुखाच्छ्रुत्वा प्रहृष्टो गुरुरब्रवीत् ॥ २ ॥

इस प्रकार शिष्यके पूछने पर प्रसन्न हुए गुरु कहने लगे ॥ २ ॥

गुरुरुवाच ।

वंगस्य शोधनादीनि प्रकाराण्यपि श्रूयताम् ।
यस्य भस्मप्रयोगेण शुक्रदोषात्प्रमुच्यते ॥
मेहादीनपि संजित्य हृष्टपुष्टो भवेन्नरः ॥ ३ ॥

हे शिष्य ! अब तुम वंगके शोधन तथा मारण आदिके विधानको भी सुनो, जिस भस्मके प्रयोगमात्रसे मनुष्य वीर्यके समस्त रोगोंसे छूटजाता है और प्रमेहादि रोगोंको जीतकर हृष्ट पुष्ट होजाता है ॥ ३ ॥

वङ्गभेदौ ।

खुरक मिश्रकश्चेति द्विविधं वङ्गमुच्यते ।
खुरकश्च गुणैः श्रेष्ठं मिश्रकं न रसे हितम् ॥ ४ ॥

वंग दो प्रकारका होता है पहला खुरक और दूसरा मिश्रक इन दोनोंमेंसे गुणोंमें खुरक श्रेष्ठ होता है और मिश्रक रसमें हितकारी नहीं है ॥ ४ ॥

द्विविधवंगलक्षणम् ।

धवलं मृदुलं स्निग्धं द्रुतद्रावि च गौरवम् ।
निःशब्दं खुरवङ्गं स्यान्मिश्रकं श्यामशुभ्रकम् ॥ ५ ॥

अब पूर्वोक्त दोनों वंगोंका लक्षण कहते हैं जो वंग सफेद रंग हो, और नरम, चिकना, शीघ्र पिघलनेवाला, गुरु तथा शब्दरहित हो उसका नाम खुरक वंग है और जो श्याम अर्थात् सफेदी लिये कृष्ण रंगका हो वह मिश्रक कहाता है ॥ ५ ॥

वंगशोधनम् ।

त्रपूं मूत्रवर्गेऽम्लवर्गे बहूनां जले क्षारतोये च वज्रार्कवर्गे ।
ततः क्षालयित्वा कदम्बस्य नीरे शुभं क्षालयेत्तनकं सप्तवारान् ॥ ६ ॥

अब वंगके शोधनकी विधि कहते हैं। वंग अर्थात् रांगेको आँचमें वार २ तपाकर मूत्रवर्गमें सात वार बुझावे इसी प्रकार अम्लवर्ग, सब क्षारोंके पानी, थूहरके दूध और आकके दूधमें भी सात २ वार बुझावे तत्पश्चात् फिर अग्निमें तपाकर कदम्बके पानीसे धोवे तो वंगकी उत्तम शुद्धि होजाती है ॥ ६ ॥

खुरकवंगशोधनविधिः ।

द्रावयित्वा निशायुक्तं क्षिप्तं निर्गुण्डिकारसे ।
विशुद्ध्यति त्रिवारेण खुरवङ्गं न संशयः ॥ ७ ॥

खुरक संज्ञक राँगेको आँचमें पिघलावे और सम्हालूके रसमें हलदीका चूर्ण मिलाकर उसमें तीन बार बुझावे तो शुद्ध हो जाता है ॥ ७ ॥

वङ्गमारणविधिः ।

मृत्पात्रे द्राविते वङ्गे क्षिपेत्तत्र सुवर्चिकाम् ।
घर्षयेल्लोहदर्व्या तु यावत्तस्मात्तनूनपात् ॥ ८ ॥
निस्सृत्य प्रदहेत्सर्वं स्वांगशीतलमुद्धरेत् ।
सुवर्चिकापनोदार्थं सलिलैः क्षालयेन्मुहुः ॥ ९ ॥
ततोतिनिर्मलं ग्राह्यं वङ्गभस्म भिषग्वरैः ॥ १० ॥

एक पाव शुद्ध राँगेको ठिकडेमें पिघलावे और उसमें चार पैसे भर कच्चा सोरा डालकर लोहेकी कलछीसे चलाता जाय, जब गाढा होजाय तब फिर भी चार पैसे भर सोरा डालकर कलछीसे चलावे इसी प्रकार सब मिलाकर छः बार सोरा डाले और कलछीसे रगडता जावे यदि छहों बार गाढा होजावे तो फिर सातवें बार सोरा न डाले । पकाते २ इसमेंसे जब अग्निकी ज्वाला निकलकर शान्त होजाय तब अग्निसे उतारकर राँगेको करछी आदिसे खुरचलेवे तत्पश्चात् इस सोरा युक्त पक्व राँगेको किसी स्वच्छ प्यालेमें डालकर ऊपरसे पानी छोडे और भस्मको हाथसे पानीमें अच्छे प्रकार मसलकर कुछ समय तक कहीं रख दे, जब राँगा नीचे बैठ जाय तब तिरे हुए पानीको अलग निकाल दे और दूसरा जल छोडकर पूर्ववत् क्रिया करे इसी रीतिसे सब मिलाकर तीन बार उसको धोवे यदि तीन बारमें सोरेकी राख निकलजावे तो फिर न धोवे और शेष रही अति निर्मल वंगकी भस्मको धूपमें सुखाकर शीशीमें भरकर रख छोडे ॥ ८-१० ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

मृत्पात्रं द्राविते वङ्गे चिञ्चाश्वत्थत्वचोरजः ।
क्षिप्त्वा वङ्गचतुर्थांशमयो दर्व्या प्रचालयेत् ॥ ११ ॥
ततो द्वियाममात्रेण वङ्गभस्म प्रजायते ।
अथ भस्मसमं तालं क्षिप्त्वाम्लेन विमर्दयेत् ॥ १२ ॥
ततो गजपुटे पक्त्वा पुनरम्लेन मर्दयेत् ।
तालेन दशमांशेन याममेकं ततः पुटेत् ॥
एवं दशपुटैः पक्कं वङ्गं भवति मारितम् ॥ १३ ॥

अब रांगेके मारणका दूसरा प्रकार कहते हैं । मिट्टीके पात्रमें रांगेको पिघलाकर रांगेका चौथा हिस्सा पीपल और इमलीकी छालका चूर्ण बुरकता जाय और लोहेकी करछीसे चलाता जाय इसी प्रकार दो पहर अग्नि देनेसे रांगेकी उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है तत्पश्चात् भस्म और उसीकी बराबर हरिताल मिलाकर नींबूके रसमें अच्छे प्रकार खरल करके शरावसंपुटमें रख गजपुटमें फूँक देवे, स्वांगशीतल होनेपर भस्मको अलग निकाल उसका दशवाँ भाग हरिताल मिलाकर नींबूके रसमें पूर्ववत् खरल करके फिर गजपुटमें एक पहरकी अग्नि देकर फूँक देवे इसी प्रकार सब मिलाकर दश पुट देनेसे वंग मृत होजाताहै॥११-१३॥

तृतीयः प्रकारः ।

आभीरं शोधयेदादौ मुद्रावद्धाण्डिकान्तरे ।
अपामार्गचतुर्थांशं चूर्णितं मेलयेत्ततः ॥ १४ ॥
स्थूलाग्रया लोहदर्व्या शनैस्तमवचालयेत् ।
यावद्भस्मत्वमायाति तावन्मर्द्यं च पूर्ववत् ॥ १५ ॥
तत एकीकृतं सर्वं भवेदङ्गारवर्णकम् ।
नूतनेन शरावेण रोधयेदन्तरे भिषक् ॥
पश्चात्तीव्राग्निना पक्वं वङ्गभस्म भवेद्ध्रुवम् ॥ १६ ॥

अब वंगभस्म बनानेकी तीसरी विधि कहते हैं । पूर्वोक्त शोधनविधिसे रांगेको शुद्ध करे और फिर मिट्टीके पात्रमें रखकर पिघलावे तत्पश्चात् रांगेकी चौथाई भाग लटजीराकी भस्म लेकर बुरकता जाय और और लोहेकी करछीसे धीरे २ चलाता रहे जब तक भस्म न हो तब तक पूर्वकी भांति करछीसे चलाता रहे और लटजीराकी भस्म छोडता जाय, जब रंग लाल होजाय तब सब एकत्र कर नवीन शरावसंपुटम रख तेज आंचसे पकावे तो वंगकी उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है ॥ १४-१६ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

वङ्गं सतालमर्कस्य पिष्ट्वा दुग्धेन संपुटेत् ।
शुष्काश्वत्थभवैर्वल्कैः सप्तधा भस्मतां व्रजेत् ॥ १७ ॥
वङ्गं तिक्तोष्णकं रूक्षमीषद्वातप्रकोपनम् ।
मेहश्लेष्मामयघ्नं च कृमिघ्नं मोहनाशनम् ॥ १८ ॥

अब वंगभस्म बनानेका चौथा प्रकार कहते हैं । रांगेमें शुद्ध किया हुआ हरिताल छोडकर आकके दूधमें खरल करे और सूखे पीपलकी छालका चूरा मिलाकर शरावसंपुटमें रख गजपुटमें फूंक देवे इसी प्रकार सब मिलाकर सात बार करनेसे उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है ॥ १७ ॥ १८ ॥

पञ्चमः प्रकारः ।

अथ भस्मसमं तालं क्षिप्त्वाम्लेन विमर्दयेत् ।
ततो गजपुटे पक्त्वा पुनरम्लेन मर्दयेत् ॥ १९ ॥
तालेन दशमांशेन याममेकं ततः पुटेत् ।
एवं दशपुटैः पक्वं वङ्गं भवति मारितम् ॥ २० ॥

राँगाके मारणकी जो पहिले विधि लिखचुके हैं उसमें शोराके सम्बन्धसे उसकी जो भस्म बनाई गई है उसी रीतिसे भस्म बनावे और उसीकी बराबर शुद्ध किया हरिताल मिलाकर एक प्रहर कागजी नींबूके रसमें खरल करे तत्पश्चात् शराव-संपुटमें रखकर गजपुटमें फूँक दे । जब स्वांगशीतल हो तब शरावसंपुटमें अलग निकाल वंगका दशवाँ भाग हरिताल मिलाकर फिर भी नींबूके रसमें एक प्रहर घोटकर पूर्ववत् गजपुटमें फूँक दे, इसी रीतिसे गजपुटकी दश आँचें देनेसे वंगकी निरुत्थ अर्थात् किसी मित्रपंचकादि औषधोंके योगसे फिर न जीनेवाली भस्म सिद्ध होजाती है ॥ १९ ॥ २० ॥

षष्ठप्रकारे धातुविद्धवङ्गभस्मविधिः ।

श्वेताभ्रं श्वेतकाचं च विषसैन्धवटंकणम् ।
स्नुहिक्षीरे दिनं मर्द्यं तेन वंगस्य पत्रकम् ॥ २१ ॥
लेप्यं पादांशकैः कल्कैश्चांधमूषागतं धमेत् ।
द्रावे जाते ततो वङ्गं पूर्वतैलं च ढालयेत् ॥ २२ ॥
वार्यादिलेपमेकत्र सप्तवाराणि कारयेत् ।
पुत्रजीवोत्थतैले च ढालयेत्सप्तवारकम् ॥
तद्वङ्गं जायते तारं शंखकुन्देन्दुसन्निभम् ॥ २३ ॥

अब धातुविद्ध वंगके भस्म बनानेका विधान कहते हैं। सफेद अभ्रक, सफेद काच, विष, सेंधानमक और सुहागा इन सबको एकत्र करके थोहरके दूधमें एक दिन खरल करे और जितना वंग हो उसका चौथाई भाग खरल किया हुआ कल्क लेकर

वंगके कंटकवेधी पत्रोंपर लेप करे तत्पश्चात् उन पत्रोंको अंधमूषामें रखकर फूँक देवे, जब राँगा जलके समान पतला होजाय तब पहले कही हुई औषधियोंके निकाले हुए तेलमें बुझावे पीछे नेत्रवाला आदि रूखडियोंका लेप करके सात बार फूँके और पुत्रजीवा जिसको भाषामें हिन्दी जियापोता कहते हैं उसके तेलमें सात बार बुझावे। इस प्रकार सब क्रिया करनेसे वह राँगा शंख कुन्दपुष्प व चन्द्रमाके सदृश श्वेतरंगसे युक्त चाँदी होजाताहै ॥ २१--२३ ॥

सप्तमः प्रकारः।

वङ्गे घर्षणकाल एव भिषजः क्षिप्त्वा यवानीरजः
प्रक्षेप्यं क्रमशः शिलाजतु तथा भस्माप्यपामार्गजम्।
क्षिप्त्वा निंबदलान्यरुष्कापिशितैर्भाण्डे तु चिंचात्वचो
भूयात्संस्तरसंस्थितानि पुरतः कुर्वन्ति भस्मान्यपि ॥ २४ ॥

वंगकी भस्म बनानेका सातवाँ प्रकार कहते हैं। वैद्यको चाहिये कि, राँगेको कढाईमें जब पिघलावे उसी समय अजवायनका चूर्ण थोडा २ डाले और फिर क्रमसे शिलाजतु, लटजीराकी भस्म, नीमके पत्ते, भिलावेका चूर्ण छोडे, इन पूर्वोक्त औषधोंमेंसे एक एकसे भी वंगकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ २४ ॥

अष्टमः प्रकारः।

वङ्गं भस्मसमं कान्तं व्योमभस्म च तत्समम्।
मर्दयेत्कनकांभोभिर्निम्बपत्ररसैरपि ॥ २५ ॥
दाडिमस्य मयूरस्य रसेन च पृथक्पृथक्।
भूपालावर्तभस्माथ विनिःक्षिप्य समांशकम् ॥ २६ ॥
गोमूत्रकशिलाधातुजलैः सम्यग्विमर्दयेत्।
ततो गुग्गुलतोयेन मर्दयित्वा दिनाष्टकम् ॥ २७ ॥
विशोष्य परिचूर्ण्याथ समभागेन योजयेत्।
भृष्टबब्बरनिर्यासैराकुलीबीजचूर्णकैः ॥ २८ ॥
ततः क्षिपेत्करंडान्तर्विधाय पटगालितम्।
गोतक्रे पिष्टरजनीसारेण सह पाययेत् ॥ २९ ॥
चतुर्भिर्वल्लकैस्तुल्यं रम्यं वंगं रसायनम्।
निश्चितं तेन नश्यन्ति मेहा विंशतिभेदकाः ॥ ३० ॥

शाल्यो मुद्गसूप च नवनीतं तिलोद्भवम् ।
पटोलं तिक्ततुण्डीरं तक्रं पथ्याय शस्यते ॥ ३१ ॥

अब वंगभस्म बनानेका आठवाँ प्रकार कहते हैं । जितनी वंगभस्म हो उतनी ही कान्तलोहकी भस्म लेवे और उतनीही अभ्रककी भस्म मिलाकर धतूरके पत्तोंके रसके साथ खरल करे । इसी प्रकार नीमक पत्त, अनारके पत्ते और लट-जीरा इन प्रत्येकके स्वरसमें पृथक्‌ २ खरल करे तत्पश्चात् उसमें राजावर्तमणिकी भस्म समान भाग मिलाकर गोमूत्र और शिलाजीतके पानीके साथ घोटे एवं आठ दिन गूगलके पानीमें मर्दन करके धूपमें सुखाकर बारीक पीसलेवे और उसमें समांश भुना हुआ बब्बूलका गोंद तथा निर्मलीके बीजोंका बारीक चूर्ण मिला वस्त्रमें छान शीशीमें भरकर रखदेवे और प्रतिदिन हरिद्रायुक्त गौकी छांछके साथ इस वंगको पिलावे । यह वंगभस्म परम रसायन है मात्रा इसकी डेढ मासे अथवा एक मासेकी है इसको विधिपूर्वक सेवन करनेसे निस्सन्देह बीस प्रकारके प्रमेह रोग नष्ट होते हैं । चावल, मूंगकी दाल, मक्खन, तिलतेलके पदार्थ, परवल, कंदूरी और छाँछ इत्यादि इसके सेवनमें पथ्य हैं ॥ २९–३१ ॥

मतान्तरेण वङ्गभस्मविधिः ।

पलाशपुष्पचूर्णे वा ह्यश्वत्थस्या वल्कल ।
बब्बूलस्य त्वचायां वा वङ्गभस्म प्रजायते ॥ ३२ ॥

अब अन्यमतसे वंगभस्मकी विधि कहते हैं । ढाकके फूलोंके चूर्णको बडे २ जंगली उपलोंके ऊपर बिछायकर शुद्ध राँगेके चावल सदृश छोटे २ टुकडोंको रक्खे और उन टुकडोंके ऊपर फिर पलाशपुष्पोंके चूर्णको बिछाकर उपलोंसे अच्छे प्रकार ढांक फूंक देवे जब स्वांगशीतल होजावे तब वंगके छोटे २ टुकडोंको युक्तिसे एकत्र करलेवे । इसी प्रकार पीपलवृक्षके छिलके तथा बबूल वृक्षके छिलकेमेंभी वंगभस्म सिद्ध होजाता है । ऐसेही भाँग तथा इमलीके छिलकेमेंभी वंगभस्म बनाते हैं । परन्तु यह सब अन्यमतोक्त प्रकार साधारण हैं, श्रेष्ठ प्रकार वंगभस्मके वही है जो कि पहले कहचुके हैं ॥ (यूनानी हकीमभी प्रायः इसी विधिसे वंगभस्म बनाते हैं) ॥ ३२ ॥

वंगहन्तृतालादिवर्णनम् ।

तालकं कर्कटास्थीनि शङ्खशुक्ती वराटिका ।
सिन्धुकर्पूरसंयुक्तं मारयेद्वङ्गपर्वतम् ॥ ३३ ॥

हरताल, केंकडेकी हड्डी, शंख, सीप, कौडी, सेंधा नमक और कपूर यह सब औषधें पर्वत समानकोभी भस्म करती हैं ॥ ३३ ॥

वङ्गभस्मगुणाः ।

बल्यं दीपनपाचनं रुचिकरं प्रज्ञाकरं शीतलम्
सौन्दर्यैकविवर्द्धनं हृतजरं नीरोगताकारकम् ।
धातुस्थैर्यकरं क्षयक्षयकरं सर्वप्रमेहापहम्
वङ्गं भक्षयतो नरस्य न भवेत्स्वप्नेऽपि शुक्रक्षयः ॥ ३४ ॥

अच्छे प्रकारसे बनाई हुई वंगकी भस्म शरीरमें बलको लानेवाली, अग्निको प्रदीप्त करनेवाली, पाचन, रुचिकर, बुद्धिवर्द्धक, शीतल, सुन्दरताको बढानेवाली, वृद्धावस्थाको हरनेवाली, नीरोगता रखनेवाली, धातुस्थैर्यकारक तथा क्षयीको नाश करनेवाली और बीस प्रकारके प्रमेह रोगोंको दूर करनेवाली है। जो मनुष्य इस वंगका विधिवत् सेवन करताहै उसका वीर्य स्वप्नमें भी स्खलित नहीं होता ॥ ३४ ॥

वङ्गभस्मसेवनानुपानानि ।

कर्पूरयुक्तं मुखगन्धनाशं जातीफलः पुष्टिकरं नराणाम् ॥ ३५ ॥
तुलसीपत्रसंयुक्तं प्रमेहं नाशयेद्ध्रुवम् ।
घृतेन पाण्डुरोगं च टंकणैर्गुल्मनाशनम् ॥ ३६ ॥
हरिद्रयाम्लपित्तघ्नं मधुना बलवृद्धिकृत् ।
खण्डया सह पित्तघ्नं नागवल्ल्या च बंधनम् ॥ ३७ ॥
पिप्पल्या चाग्निमान्द्यघ्नं निशया चोर्ध्वश्वासहृत् ।
चम्पकस्वरसेनैव दुर्गन्धं नाशयेद्ध्रुवम् ॥ ३८ ॥
निम्बुकस्वरसेनाढ्यं देहे दहनशान्तये ।
कस्तूरीवङ्गसंयुक्तं भक्षणाद्वीर्यरोधकृत् ॥ ३९ ॥
खदिरक्वाथयोगेन चर्मरोगाञ्जयेदिदम् ।
पूगीफलेन सार्द्धं हि जीर्णं नाशयते क्षणात् ॥ ४० ॥
नवनीतसमायुक्तमस्थिजीर्णं नवं भवेत् ।
दुग्धैः सह भवेत्तुष्टिर्भंगया स्तम्भनं भवेत् ॥ ४१ ॥

लशुनैर्वातजां पीडां नाशयेन्नात्र संशयः ।
समुद्रफलसंयोगान्निर्गुंड्या सह भक्षणात् ॥ ४२ ॥
कुष्ठं नाशयते क्षिप्रं सिंहनादो मृगानिव ।
आधारजटिकायोगात्षण्ढत्वं नाशयेद्ध्रुवम् ॥ ४३ ॥
देवपुष्पस्य संयोगे समुद्रफलयोगतः ।
नागपत्ररसैर्लेपाल्लिंगवृद्धिः प्रजायते ॥ ४४ ॥
गोरोचनलवङ्गेन तिलको मोहनं भवेत् ।
एरण्डजटिकायोगे घर्षयित्वा च वंगकम् ॥ ४५ ॥
लेपयेच्च ललाटे च तेन शीर्षगदं जयेत् ।
कौञ्जेऽपामार्गमूलेन प्लीहे टंकणसंयुतम् ॥ ४६ ॥
रसोनतैलयुङ्नस्यमपस्मारनिषूदनम् ॥ ४७ ॥
पुत्राप्त्यै रासभीक्षीरैस्तक्राढ्यं वातगुल्मनुत् ।
यवानिकायुतं वाते वाजिगन्धायुत तु वा ॥ ४८ ॥
जलोदरे त्वजाक्षीरसंयुतं गुणकृद्भवेत् ।
जातीफलाश्वगन्धाभ्यां करिपीडानिवारणम् ॥ ४९ ॥

अब वंगभस्म सेवनके अनुपान कहते हैं । यह भस्म कपूरके साथ मुखकी दुष्ट गंधको हरती है, जायफलके साथ सेवन करनेसे शरीरमें पुष्टता करती है, तुलसी-दलके साथ बीस प्रकारके प्रमेहोंको, घृतके संग पाण्डुरोगको, सुहागके संग गुल्मरोगको और हलदीके साथ अम्लपित्तको, दूर करती है, शहदके साथ बलवर्द्धक, मिश्रीके साथ पित्तनाशक है, पानके साथ वीर्यको बाँधनेवाली है, पिप्पलीके साथ मन्दाग्नि, हलदीके साथ ऊर्ध्वश्वास और चंपाके स्वरससे युक्त निस्सन्देह दुर्गंधको नाश करती है, नींबूके साथ दाहको शान्त करती है, कस्तूरीके साथ सेवन करनसे वीर्यका स्तम्भन करती है, खैरके काढेके साथ समस्त चर्मरोग, तथा सुपारीके संग अजीर्णको शीघ्र नाश करती है आर मक्खनके साथ सेवन करनेसे आस्थि जीर्ण नवीन होती हैं । दुग्धके संग सेवन करनेसे प्रसन्नता होती है, भाँगके साथ वीर्यका स्तम्भन होता है, लहसनके साथ वातसे उत्पन्न पीडाको हरती है, समुद्रफल और सम्हालूके साथ कुष्ठरोगको

इस प्रकार भगाती है कि, जैसे सिंहकी गर्जनाको सुनकर मृग इधर उधर भाग-जाते हैं, चिरचिटाके मूलके संग देनेसे नपुंसकताको, लौंग और समुद्रफल युक्त पानके रसके संग लिङ्गपर लेप करनेसे लिङ्गकी वृद्धि होती है, गोरोचन तथा लौंगके साथ तिलक करनेसे मोहन होता है, और अरंडकी जडके साथ इस वङ्गको घिसकर मस्तकमें लेप करे तो शिरके रोगोंको दूर करती है, चिरचिटाकी जडके साथ कुबडेपनको दूर करती है, लहसनके रसके तेलके साथ मृगीरोगको, और सुहागेके साथ तापतिल्लीको नाश करती है, गधीके दूधके साथ देनेसे पुत्रकी उत्पत्ति होती है, मठाके साथ देनेसे वायुगोलेको दूर करती है, वात रोगमें अजवायन वा असगंधके साथ देना चाहिये, जलोदर रोगमें बकरीके दूधके साथ गुणकारी है, जायफल और असगंधके साथ देनेसे कमरकी पीडाको दूर करती है ॥ ३६–४९ ॥

अशुद्धवङ्गदोषाः ।

पाकेन हीनः खलु वङ्गकोऽसौ कुष्ठानि गुल्मानि बहूंश्च रोगान् ।
पाण्डुप्रमेहापचिवातशोणितं बलापहारं कुरुते नराणाम् ॥५०॥

विना शुद्ध किये वंगका सेवन करनेसे कुष्ठरोग, गुल्मरोग तथा और भी अनेक प्रकारकी घोर व्याधियाँ, पाण्डुरोग, प्रमेह, अपची और वातरक्त आदि उत्पन्न होते हैं तथा बलकी हानि होती है ॥ ५० ॥

वङ्गसेवनोपद्रवशान्त्युपायः ।

मेषशृङ्गीं सितायुक्तां सेवते यो दिनत्रयम् ।
वङ्गदोषविमुक्तोऽसौ सुखं जीवति मानवः ॥ ५१ ॥

जो मनुष्य मिश्री मिलाकर मेंढाशिंगीको तीन दिन पर्यन्त सेवन करता है वह अशुद्ध या हीनशुद्ध वंगके सब दोषोंसे मुक्त होकर सुखपूर्वक जीवित रहताहै॥५१॥

इति वङ्गविधानं ते कथितं शिष्यसत्तम ॥ ५२ ॥

हे शिष्यसत्तम ! इस प्रकार वंगके शोधन तथा मारण आदिका विधान तुमसे कहा ॥ ५२ ॥

इति श्रीटकसालनिवासिपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते
रसेन्द्रपुराणे वङ्गवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पंचदशोऽध्यायः ।

अथातो जसदवर्णनं नाम पञ्चदशाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम जसदवर्णनं नामक पन्द्रहवें अध्यायका वर्णन करते हैं ॥

गुरुरुवाच ।

अथाधुना विधिस्तात जसदस्यापि श्रूयताम् ॥ १ ॥

गुरुने कहा कि, हे पुत्र ! अब जसदको शोधन तथा मारण आदिका विधान भी सुनो ॥ १ ॥

यशदभेदौ ।

खर्परं द्विविधं प्रोक्तं यशदं शवकं तथा ।
रसोऽपि यशदं प्रोक्तं खर्परं च गुणात्मकम् ॥ २ ॥

खपरिया दो तरहकी होती है पहली यशद और दूसरी शवक, यशद अर्थात् जस्ता भी खपरियाका ही एक भेद है । रसभी यशद कहा गया है, यह खपरि विशेष गुणवाली है ॥ २ ॥

यशदशुद्धिः ।

यशदं गालयेत्पूर्वं दुग्धमध्ये विनिक्षिपेत् ।
एकविंशतिवारांश्च खर्परं शुद्धिमाप्नुयात् ॥ ३ ॥

(जस्तका शोधन और मारण राँगाके सदृश ही होता है अतः इस विषयमें कहनेकी अधिक आवश्यकता नहीं है तो भी इसके मारणमें विशेष कहताहूं) जस्तको इकीसवार गला २ कर दूधमें बुझावे तो उसकी उत्तम शुद्धि होजाती है ॥ ३ ॥

यशदमारणविधिः ।

यशद लोहजे पात्रे द्रावयित्वा पुनर्धमेत् ।
अत्यन्ततप्ते निम्बस्य दलानि त्रीणि निक्षिपेत् ॥ ४ ॥
घर्षणाल्लोहदण्डेन वह्निरुत्तिष्ठति ध्रुवम् ।
यथा यथा भवेद्वृष्टिर्भस्मीभावस्तथा तथा ॥ ५ ॥
भस्मीभूतं पृथक्कृत्य घर्षयेत्तत्पुनः पुनः ।
नेत्रयोगेषु सर्वेषु भस्मीभूतमिदं शुभम् ॥ ६ ॥
अशनं नैव कर्तव्यमन्यथा हानिकृद्भवेत् ।
गुञ्जामात्रप्रयोगेण नेत्ररोगात्प्रमुच्यते ॥ ७ ॥

दशपलं भस्म चानीय मारीचं चूर्णकर्षकम् ।
नवनीतं द्विकर्षं तु चैकीकृत्याखिलं खलु ॥ ८ ॥
निम्बुनीरेण मासैकं मर्दयेच्च विचक्षणः ।
गुञ्जार्द्धस्य तु मानेन गुटिकाः कारयेत्ततः ॥ ९ ॥
पर्य्युषितोदके चैकां घर्षयित्वा च नेत्रयोः ।
प्रभाते चाञ्जयेन्नित्यं नेत्रधूमादिकं हरेत् ॥ १० ॥

भट्टीमें लोहेके पात्रको चढाकर उसमें जस्ता डालकर खूब धोंके, जब जस्ता गलकर खूब तप्त होवे तब उसमें नीमवृक्षके तीन पत्ते डाले और लोहेकी मूसलीसे उनको मर्दन करे मर्दन करनेसे निश्चय उसमेंसे अग्निज्वाला निकलती हैं, जैसे जैसे जस्तका घर्षण किया जाताहै वैसे वैसे वह भस्मरूपताको प्राप्त होता जाता है। घोटते २ जितना २ भस्मरूपताको प्राप्त होता जावे उतना २ अलग करता जावे और शेषको तबतक फिर २ घोटता रहे जबतक कि, सब जस्ता भस्मरूप न होजावे। इस रीतिसे जस्ताकी उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है, नेत्रके सम्पूर्ण योगोंमें यह भस्मीभूत जस्ता श्रेष्ठ है। यह भस्म केवल आंखके रोगोंके लिये हितकारी है, खानेके कामकी नहीं, यदि इसको खावे तो लाभ नहीं प्रत्युत हानि करती है। नेत्ररोगी मनुष्य एक रत्ती खूब बारीक पीसकर नेत्रोंमें आँजे तो नेत्ररोगसे मुक्त होजाता है। अथवा जस्तकी भस्म दश पल, काली मिर्चका चूर्ण एक तोला, मक्खन दो तोले इन सबको एकत्र करके एक मास पर्यन्त कागजी नींबूके रसके साथ खरल करके आध २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे और उनमेंसे एक गोली बासी जलमें घिसकर नित्य प्रातःकाल नेत्रोंमें अंजन करे तो नेत्रोंके धुँधलेपन आदिको नाश करता है ॥ ४--१० ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

यशदस्य चतुर्थांशं पारदं गन्धकं रजः ।
मर्दयेत्खल्वके सम्यक्कन्यानिम्बुरसैः पृथक् ॥ ११ ॥
लेपयेत्तानि पत्राणि गजाह्वे पाचयेत्पुटे ।
एकेन तु पुटेनैव भस्मसाद्यशदं भवेत् ॥ १२ ॥

अब जस्ताके मारणका दूसरा प्रकार कहते हैं जितना जस्ता हो उसका चौथाई भाग पारा और गंधकका चूर्ण लेकर घीकुवारके रसमें घोटकर नींबूके रसमें घोटे, पश्चात् जस्तके कंटकवेधी पत्रोंपर लेप करे और उन पत्रोंको शराव-

संपुटमें रख गजपुटकी आँचमें पकावे तो एकही पुटमें सब जस्ता भस्म हो जाता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

यशदभस्मसेवनप्रमाणम् ।

गुंजाद्वयं तु यशदं सर्वरोगान् व्यपोहति ।
अधिकग्रहणं पुंसां रोगानन्यांश्च कारयेत् ॥ १३ ॥

इस पूर्वोक्त यशदभस्मके सेवन करनेकी मात्रा दो रत्ती है जो मनुष्य इसको मात्रासे सेवन करते हैं उनके सम्पूर्ण रोगोंको यह भस्म दूर करती है और यदि मात्रासे अधिक सेवन करे तो उनके शरीरमें अन्य रोगोंको उत्पन्न करती है॥१३॥

यशदभस्मसामान्यगुणाः ।

यशदं तुवरं प्रोक्तं शीतलं कफपित्तहृत् ।
चक्षुष्यं परमं मेहं पाण्डुं श्वासं च नाशयेत् ॥ १४ ॥

यशदकी भस्म स्वादमें कसैली और कडवी है, कफरोग, पित्तरोग, प्रमेह, पाण्डु श्वास और खाँसीको दूर करती है आँखोंके लिये अति हितकारी है यह इसके सामान्य गुण हैं ॥ १४ ॥

यशदभस्मसेवनानुपानानि ।

पुराणे गोघृते नेत्र्यं ताम्बूलेन प्रमेहजित् ।
अग्निमन्थेनाग्निकरं त्रिसुगन्धैस्त्रिदोषनुत् ॥ १५ ॥
सतंडुलहिमैर्हन्ति खर्जूरैर्मायुजं ज्वरम् ।
यवानिकालवङ्गाभ्यां युतं शीतज्वरं जयेत् ॥ १६ ॥
खर्जूरतडुलाहिमै रक्तातीसारनाशकृत् ।
शर्कराजाजिसंयुक्तमतिसारवमिं जयेत् ॥ १७ ॥

अब यशदभस्म सेवन करनेके अनुपान कहते हैं यह जस्तेकी भस्म गौके पुराने घीके साथ नेत्रोंके लिये हित करती है, पानके साथ सेवन करनेसे प्रमेह रोगको नाश करती है, अरणी (अगेथुवा) के साथ जठराग्निको बढाती है, त्रिसुगन्ध (इलायची) दालचीनी, तेलपातक साथ सन्निपातको नष्ट करती है, चावलके हिम और खजूरके साथ पित्तज्वरको, अजवायन और लौंगके साथ शीतज्वरको, खर्जूर और चावलोंके हिमके साथ रक्तातीसारको, जीरा और मिश्रीके साथ वमन तथा अतिसारको दूर करती है ॥ १५ ॥ १७ ॥

अपक्वयशददोषाः।

अपक्वं यशदं रोगान्प्रमेहाजीर्णमारुतान्।
वमिं भ्रमिं करोत्येतच्छोधयेन्नागवत्ततः ॥ १८ ॥

अपक्व अर्थात् नहीं पकाहुआ वा हीन पका हुआ जस्ता प्रमेह, अजीर्ण, शरदी, वमन और भ्रमका उत्पन्न करता है इस कारण इसको सीसेके समान शुद्ध करे ॥ १८ ॥

अपक्वयशदसेवनोपद्रवशान्त्युपायः।

बालाभयां सितायुक्तां सेवते यो दिनत्रयम्।
यशदस्य विकारोऽस्य नाशमायाति नान्यथा ॥ १९ ॥

छोटी हरड और मिश्री एकमें मिलाकर तीन दिन पर्यन्त सेवन करे तो अपक्व यशदके दोषोंकी शान्ति होती है अन्यथा नहीं ॥ १९ ॥

उक्ताः पञ्चदशाऽध्याये यशदस्य क्रियाः शुभाः ॥ २० ॥

हे वत्स ! इस पन्द्रहवें अध्यायमें यशदकी सम्पूर्ण उत्तम २ क्रियायें कही गई हैं ॥ २० ॥

इति श्रीटकसालनिवासिपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते
रसेन्द्रपुराणे यशदवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः।

अथातो नागवर्णनं नाम षोडशाध्यायं व्याख्यास्यामः।

अब हम नागवर्णन नामक सोलहवें अध्यायका वर्णन करते हैं ॥

गुरुरुवाच।

नागतुल्यबलस्याथ नागस्य शोधनादिकम्।
वक्ष्ये यस्य प्रयोगाच्च नागवज्जायते नरः ॥ १ ॥

गुरुने शिष्यसे कहा कि, हे वत्स ! अब मैं हाथीके समान बलवाले नाग अर्थात् सीसेकी शोधन तथा मारण आदि क्रियाओंको तुमसे कहताहूँ जिसके प्रयोगमात्रसे मनुष्य हाथीके सदृश बलवान् होताहै ॥ १ ॥

नागोत्पत्तिः।

दृष्ट्वा भोगिसुतां रम्यां वासुकिस्तु मुमोच यत्।
वीर्यं जातस्ततो नागः सर्वरोगापहो नृणाम् ॥ २ ॥

किसी समय भोगी नागकी अति रूपवती कन्याको देखकर वासुकिनागने जो वीर्यपतन किया वह नाग (सीसा) होगया, यह सीसा विधिपूर्वक सेवन करनेसे सब रोगोंको दूर करताहै ॥ २ ॥

नागभेदौ ।

नागं च द्विविधं प्रोक्तं कुमारं समलं तथा ।
कुमारं रसमार्गेषु योजनीयं गुणाधिकम् ॥ ३ ॥

सीसा दो तरहका होताहै, पहलेका नाम कुमार है और दूसरेका समल, इन दोनोंमेसे रसकी क्रियाओंमें गुणोंमें अधिक कुमारनामक सीसेका ही उपयोग करना चाहिये समलका नहीं ॥ ३ ॥

नागपरीक्षा ।

द्रुतौ याते महाभारं छेदे कृष्णं समुज्ज्वलम् ।
पूतिगन्धि बहिः कृष्णं शुद्धं शीशमतोऽन्यथा ॥ ४ ॥

सीसोंमें वह सीसा शुद्ध है, जो कि गलानेपर भारी हो और तोडनेमें भीतर काला व उज्ज्वल निकले, दुष्ट गंधस युक्त हो, बाहरसे देखनेमें काला देखपडे इन लक्षणोंसे रहित सीसा अशुद्ध जानना चाहिये ॥ ४ ॥

नागशोधनम् ।

फलत्रिकजकषाये वा कुमारीरसे वा करिवरसलिले वा गालयेत्सप्तवारम् ।
खदिरदहनतप्तं लोहपात्रे स्थितं सत्तदनुसपदि नागे जायते शुद्धभावः ॥५॥

अब सीसेके शुद्ध करनेकी रीति,-भट्टीमें खैरकी लकडी जलाकर लोहेके पात्रमें सीसेको गलाके जब अच्छे प्रकार गलजावे तब त्रिफलाके काथ, घीकुवारके रस, और हाथीके मूत्रमें सात सात बार बुझावे तो शीघ्रही सीसा शुद्ध होजाता है ॥ ५ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

सच्छिद्रहंडिकायान्तु रविदुग्धं च निक्षिपेत् ।
तेनैव द्रुतनागन्तु शोधयेच्च त्रिवारकम् ॥ ६ ॥

अथवा किसी स्वच्छ हंडीमें आकका दूध छोडकर उससे अग्निमें गलाये हुए सीसेको तीन बार बुझावे तो वह सीसा शुद्ध होजाता है ॥ ६ ॥

नागमारणविधिः ।

त्रिभिः कुंभिपुटैर्नागो वासारसविमर्दितः ।
सशिलो भस्मतामेति तद्रजः सर्वमेहनुत् ॥ ७ ॥

अब नागके मारणकी विधि कहते हैं। शुद्ध सीसा और मनशिलका चूर्ण इन दोनोंको अडूसेके रसमें अच्छे प्रकार घोटकर गजपुटमें पकावे, इसी प्रकार तीन बार गजपुटकी आँचमें पकानेसे सीसेकी श्रेष्ठ भस्म सिद्ध होजाती है यह भस्म सब प्रमेहोंको दूर करताहै ॥ ७ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

भागैकमहिफेनस्य नागभागचतुष्टयम् ।
घर्षणान्निम्बकाष्ठेन मन्दवह्निप्रदानतः ॥
नागभूतिर्भवेच्छ्वेता वीर्यदार्ढ्यकरी मता ॥ ८ ॥

सीसेके मारणकी दूसरा प्रकार कहते हैं—सीसा चार भाग, अफीम एक भाग लेकर खपडेमें डालकर धीमी आँचसे गलावे और नीमकी लकडीसे चलाता जाय तो सीसेकी सफेद रंगवाली उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है यह भस्म वीर्यको दृढ करनेवाली है ॥ ८ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

कुडवं नागपत्राणां कुनट्याः स्यात्पलार्द्धकम् ।
तण्डुलीयरसैर्यामं यामं वासारसैस्तथा ॥ ९ ॥
संमर्द्य चक्रिकां कृत्वा घर्मे संशोष्य तां पुनः ।
शरावसंपुटे कृत्वा पचेद्वन्योपलैर्भिषक् ॥ १० ॥
एवं सप्तपुटैर्नागो भस्मीभवति निश्चितम् ।
द्विगुञ्जोऽयं ध्रुवं हन्यात्प्रमेहानखिलान् गदान् ॥ ११ ॥

सीसेके मारणका तीसरा प्रकार, चार पल सीसेके कंटकवेधी पत्रोंको और आधा पल मनशिलको खरलमें डालकर चौलाईके रसमें एक प्रहर पर्यन्त अच्छे प्रकार घोटे तत्पश्चात् एक प्रहर तक अडूसेके रसमें घोटकर टिकिया बना धूपमें सुखालेवे जब सूखजावे तब शरावसंपुटमें रख गजपुटमें जंगली उपलोंकी आँचसे पकावे स्वांगशीतल होनेपर सीसेको शरावसंपुटसे अलग निकाल पूर्ववत् फिर मनशिल डालकर एक प्रहर चौलाई और एक प्रहर अडूसेके रसमें खरलकर शरावसंपुटमें रख गजपुटमें फूँक देवे इसी प्रकार प्रत्येक पुटमें करे, सब मिलाकर सात पुट देनेसे निस्सन्देह सीसा भस्मरूप हो जाताहै । बडी इलायची और सहतके साथ दो रत्ती प्रमाण इस भस्मका नित्य सेवन करे तो प्रमेह और मूत्रस्राव आदि सर्व रोग अवश्य नष्ट होजावें ॥ ९-११ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

अश्वत्थचिञ्चात्वक्चूर्णं चतुर्थांशं च निक्षिपेत् ।
मृत्पात्रे विद्रुते नागे लौहदर्व्या प्रचालयेत् ॥ १२ ॥
यामैकेन भवेद्भस्म तत्तुल्यां च मनःशिलाम् ।
काञ्जिकेन द्वयं पिष्ट्वा शोषयेदातपे पुनः ॥ १३ ॥
शरावसंपुटे कृत्वा पचेद्गजपुटेन च ।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य शिलया काञ्जिके पुनः ॥ १४ ॥
संमर्द्य संपुटे कृत्वा पचेत्करिपुटेन तु ।
एवं षड्भिः पुटैर्नागो मृतिं यास्यति निश्चितम् ॥ १५ ॥

सीसेके मारणका चौथा प्रकार, मट्टीके किसी स्वच्छ पात्रमें सीसेको डालकर चूल्हेपर रख अग्नि प्रदीप्त करे जब सीसा गलजावे तो उसमें सीसेका चौथाई भाग पीपल और इमलीकी छालका चूर्ण डालकर लोहेकी करछीसे चलाता जावे एक प्रहरमें वह सीसा भस्मरूप होजायगा तत्पश्चात् इस भस्मकी बराबर मनशिल लेवे और दोनोंको कांजीमें घोटकर टिकिया बना, धूपमें सुखालेवे उस टिकियाको शरावसंपुटमें रख गजपुटमें पकावे और स्वांगशीतल होनेपर शरावसंपुटसे अलग निकाल फिर मनशिलके साथ कांजीमें खरल करे और पहलेकी तरह शरावसंपुटमें रख गजपुटमें पकावे इसी प्रकार सब मिलाकर छः पुट देवे तो निस्सन्देह सीसा मरजाता है ॥ १२-१५ ॥

पञ्चमः प्रकारः ।

भूभुजंगमगस्तिं च पिष्ट्वा पात्रं विलेपयेत् ।
तत्स्थे च विद्रुते नागे वासापामार्गसंभवम् ॥ १६ ॥
क्षारं विमिश्रयेत्तत्र चतुर्थांशं च बुद्धिमान् ।
प्रहरं पाचयेच्चुल्ल्यां वासादर्व्या च घट्टयेत् ॥ १७ ॥
तत उद्धृत्य तच्चूर्णं वासानीरे विमर्दयेत् ।
पुटेत्पुनः समुद्धृत्य तेनैव परिमर्दयेत् ॥ १८ ॥
एवं सप्तपुटं नागं सिन्दूरं जायते ध्रुवम् ।
तारस्थो रंजनो नागो वातपित्तकफापहः ॥
ग्रहणीकुष्ठमेहार्शःप्राणशोषविषापहः ॥ १९ ॥

सीसेके मारणका पांचवां प्रकार। केंचुएं और अगस्तके पत्रोंको बारीक पीसकर पात्रमें लेपकरे और उसमें सीसा छोड चूल्हेपर चढाय अग्नि प्रदीप्त करे, जब सीसा अच्छे प्रकार गलजावे तब उसमें सीसेकी चतुर्थांश अडूसा और चिरचिटेकी भस्म छोडताजाय पकाते समय अडूसेकी लकडीसे सीसेको चलातारहे, इस प्रकार एक प्रहर तक पकाकर उतारलेवे और फिर अडूसेके रसमें उस सीसेको घोटे यह एक पुट हुई तत्पश्चात् पूर्ववत् दूसरी पुट देकर भस्म करे और अडूसेके रसमें खरल करे इस प्रकार सब मिलाकर सात पुट देनेसे सिंदूरके तुल्य लाल भस्म सिद्ध होजाती है। चाँदीमें इसके संयोगसे उत्तम रंग उत्पन्न होताहै इस भस्मके सेवनसे वात, पित्त और कफसे उत्पन्न रोग, संग्रहणी, कुष्ठ, प्रमेह, बवासीर, प्राणशोष और विषको नष्ट करता है ॥ १६-१९ ॥

षष्ठप्रकारे नागस्य हरिद्भस्मविधिः ।

खर्परे निहितं नागं रविमूलेन घर्षयेत् ।
यामत्रिकैर्भवेद्भस्म हरिद्वर्णमदूषणम् ॥ २० ॥

सीसेकी हरिद्वर्णयुक्त भस्म बनानेकी विधि । एक खपडेको चूल्हेपर रखकर सीसा डाल अग्नि प्रदीप्त करे और आककी जडसे रगडता जाय तो तीनही प्रहरमें हरे रंगवाली दोषरहित भस्म सिद्ध होजाती है ॥ २० ॥

सप्तमप्रकारे पीतभस्मविधिः ।

शिलागन्धककर्पूरं कुंकुमं मर्दयेत्समम् ।
जम्बीरस्य द्रवैर्यामं तत्समं नागपत्रकम् ॥ २१ ॥
लिप्त्वा लिप्त्वा पुटे पाच्यं यावत्षष्टिपुटं भवेत् ।
तन्नागं विद्युदाभासं जायते नात्र संशयः ॥ २२ ॥

सीसेकी पीत भस्म बनानेकी विधि । मनशिल, गंधक, कपूर और केशर इनको तुल्यभाग लेकर जंबीरी नींबूके रसमें एक प्रहर पर्यन्त खरल करे और पूर्वोक्त चारों औषधोंके बराबर सीसेके कंटकबेधी पत्रोंपर लेप करके गजपुटमें फूँकदे इसी रीतिसे साठ पुटदेवे तो सीसेकी बिजलीके समान कांतिवाली भस्म सिद्ध होजाती है ॥ २१ ॥ २२ ॥

अष्टमप्रकारे रक्तवर्णभस्मविधिः ।

कुमारीपादघातेन तत्क्षणान्म्रियते फणी ।
पुटेन शतकेनापि सिन्दूरं केवलं भवेत् ॥
तारे ताम्रे तथा वंगे शतवेधी भवेद्ध्रुवम् ॥ २३ ॥

सीसेकी लाल रंगयुक्त भस्मकी विधि सीसेको गलाकर घीकुवारके मूसलेसे घोटे तो उसी समय वह सीसा भस्मरूप होजावे, और घीकुवारके रसमें सीसेके कंटकबेधी पत्रोंको खरल करके शरावसंपुटमें रख गजपुटमें फूँकदे यह एक पुट हुई, इसी प्रकार सौ पुट देवे तो सिंदूरके सदृश सुर्ख रंगयुक्त भस्म सिद्ध होवे इसमें चाँदी, तांबा व वंग गलाकर डाले तो इसका शतांश भाग वेधकर सुवर्ण करे ॥ २३ ॥

नवमप्रकाररक्तभस्मविधेः द्वितीयः प्रकारः ।

भूनागागस्त्यपत्राणि पिष्ट्वा पात्रं विलेपयेत् ।
वासापामार्गजं क्षारं तत्र नागयुतं क्षिपेत् ॥ २४ ॥
चतुर्थांशं च विधितः वासादर्व्या विघट्टयेत् ।
यामैकेन भवेद्भस्म ततो वासारसान्वितम् ॥
मर्दयेत्संपुटेनैवं नागसिंदूरकं शुभम् ॥ २५ ॥

नवम प्रकारमें लाल भस्म बनानेका दूसरा प्रकार । केंचुएं और अगस्त वृक्षके पत्तोंको बारीक पीसकर पात्रमें लेपकरे, उस पात्रमें सीसा छोडकर चूल्हेपर चढादेवे और अग्नि प्रदीप्त करे जब सीसा गलजावे तब उसमें सीसेका चतुर्थांश अडूसा और चिरचिटेका क्षार थोडा २ छोडता जावे और अडूसेकी लकडीसे चलाता रहे तो एक प्रहरमें सीसेकी भस्म सिद्ध होजावे इसी भस्मको अडूसेके रसमें घोटकर गजपुटकी आँचमें पकावे तो वह भस्म सिंदूरके समान लालरंगयुक्त होजाती है ॥ २४ ॥ २५ ॥

दशमप्र०निरुत्थभस्मविधिः ।

ताम्बूलीरससंपिष्टशिलालेपात्पुनः पुनः ।
द्वात्रिंशद्भिः पुटैर्नागो निरुत्थो याति भस्मताम् ॥ २६ ॥

नवम प्रकारमें निरुत्थ भस्मकी विधि,–सीसेके कंटकबेधी पत्रोंपर पानके रसमें खरल किये हुए मनशिलका लेप करके शरावसंपुटमें रख गजपुटमें फूंकदे, यह एक पुट हुई इसी प्रकार सब मिलाकर बत्तीस पुट देवे तो सीसेकी निरुत्थ भस्म सिद्ध होवे ॥ २६ ॥

एकादशप्र०नागेश्वररसनिर्माणविधिः ।

पलद्वयं मृतं नागं हिङ्गुलं च पलद्वयम् ।
शिला कर्षमिता ग्राह्या सर्वतुल्यं हि गन्धकम् ॥ २७ ॥

निंबुनीरेण संमर्द्य ततो गजपुटे पचेत् ।
तदा नागेश्वरोऽयं स्यान्नागराजसुतोपमः ॥ २८ ॥

ग्यारहवें प्रकारमें नागेश्वररसके बनानेकी विधि, शुद्ध कियेहुए सीसेकी भस्म दो पल, हिङ्गुल दो पल, मनशिल एक तोला और इन सबोंकी बराबर गंधक लेकर सबको नींबूके रसमें घोटकर गजपुटकी आँचमें पकावे तो नागराजसुतके समान नागेश्वर रस सिद्ध होता है ॥ २७ ॥ २८ ॥

नागभस्मसेवनानुपानानि ।

मृतं नागं सितायुक्तं मायुं वायुं शिरोव्यथाम् ।
नेत्ररोगं शुक्रदोषं प्रलापं दाहकं जयेत् ॥ २९ ॥
प्रददाति रुचिं कामं वर्द्धयेत्पथ्यसेविनः ।
स्वबुद्ध्या कल्पयेद्धीमाननुपानं गदेषु च ॥ ३० ॥

नागभस्म सेवन करनेके अनुपान-यह शुद्ध सीसेकी भस्म मिश्रीके संग सेवन करे तो पित्तरोग, वातरोग, शिरकी व्यथा, नेत्ररोग, शुक्रदोष, प्रलाप और दाह इन सबको नष्ट करती है, और पथ्य भोजन करनेवाले मनुष्यकी अन्नमें रुचि और कामशक्तिको बढाती है बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि, अन्यरोगोंमें भी निज बुद्धिसे अनुपानोंकी कल्पना करके इस भस्मको देवे ॥ २९ ॥ ३० ॥

नागभस्मगुणाः ।

क्षयपवनविकारे गुल्मपाण्ड्वामयेषु ।
भ्रमकृमिकफशूले मेहकासामयेषु ॥
ग्रहणिगुदगदे वै नष्टवह्नौ प्रशस्तः ।
शुभविधिकृतनागः कामपुष्टिं ददाति ॥ ३१ ॥

नागभस्मके गुण-विधिपूर्वक बनाई हुई सीसेकी भस्म क्षयी, वायुके विकार, गुल्मरोग, पाण्डु, भ्रम, कृमिरोग, कफरोग, शूल, प्रमेह, कासरोग, संग्रहणी, बवासीर आदि गुदाके रोग और अग्निमान्द्यको नष्ट करती तथा कामदेवको बढाती है॥३१॥

नागभस्मप्रशंसा ।

नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति व्याधिं विनाशयति जीवनमातनोति ।
वह्निं प्रदीपयति कामबलं करोति मृत्युं च नाशयति संततसेवितःसः॥ ३२॥

नागभस्मप्रशंसा, निरन्तर सेवन करनेसे यह भस्म सौ हाथीके समान बलको देती है, व्याधियोंको नाश करती है, आयुको बढाती है, अग्निको प्रदीप्त करती है, कामशक्तिको उत्पन्न करती और मृत्युको हटाती है ॥ ३२ ॥

अपक्कनागसेवनोपद्रवाः ।

कुष्ठानि गुल्मारुचिपाण्डुरोगान्क्षयं कफं रक्तविकारकृच्छ्रम् ।
ज्वराश्मरीशूलभगन्दराद्यं नागं त्वपक्कं कुरुते नराणाम् ॥ ३३ ॥

अपक्क नागको सेवन करनेसे उपद्रव-यह अपक्क नाग कुष्ठरोग, गुल्मरोग, अन्नमें अरुचि, पाण्डुरोग, क्षयी, कफरोग, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, पथरी, शूल और भगंदर आदि अनेक रोग मनुष्योंको उत्पन्न करता है ॥ ३३ ॥

अपक्कनागसेवनोपद्रवशान्त्युपायः ।

हेम्ना हरीतकीं खादन्सितायुक्तां दिनत्रयम् ।
अपक्कनागदोषेण विमुक्तः सुखमेधते ॥ ३४ ॥

अपक्कनागके उपद्रवोंसे युक्त मनुष्य यदि हरड और मिश्रीके साथ सुवर्णकी भस्मको तीन दिन पर्यन्त सेवन करे तो अपक्क नागदोषसे मुक्त होकर सुखको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥

एवं नागविधिस्तात ह्यध्याये षोडशे क्रमात् ।
शोधनं मारणं चापि विशेषाद्वर्णितं मया ॥ ३५ ॥

हे वत्स ! इस प्रकार इस सोलहवें अध्यायमें सीसेकी शोधन, मारणकी सम्पूर्ण विधि विशेषतासे मैंने तुमसे वर्णन किया ॥ ३५ ॥

इति श्रीटकसालनिवासिपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे नागभस्मवर्णनो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः ।

अथातो लोहोत्पत्तिशोधनादिवर्णनं नाम सप्तदशाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब हम लोहकी उत्पत्ति तथा शोधनादि वर्णन नामके सत्रहवें अध्यायका वर्णन करते हैं ॥

गुरुउवाच ।

अथ लोहविधानं ते प्रवक्ष्यामि विशेषतः ।
यस्य सेवनमात्रेण वज्रतुल्यतनुर्भवेत् ॥ १ ॥

गुरुने कहा कि, हे पुत्र ! अब मैं तुमसे लोहके शोधन तथा मारण आदिका विधान विशेषतासे कहताहूँ जिसके सेवनमात्रसे मनुष्य वज्रतुल्य शरीरसे युक्त होताहै ॥ १ ॥

तत्रादौ लोहोत्पत्तिः ।

पुरा सुधां क्षीरसमुद्रजां च अप्राप्य दैत्याः चुकुपुःप्रगाढम् ।
ततः सुरैराजिमकुर्वतैषां हताङ्गकेभ्यो विविधाश्च लोहाः ॥ २ ॥

(किसी समय देवता और दैत्योंने क्षीरसमुद्रका मथन किया उसमें जब अमृत उत्पन्न हुआ तब विष्णुने मोहिनी रूप होकर दैत्योंको ठगालिया और अमृत देवताओंको पिलादिया) तत्पश्चात् उस क्षीरसमुद्रमेंसे उत्पन्न हुए अमृतको नहीं पाकर दैत्योंने बडा क्रोध किया और देवताओंसे युद्ध किया उस समय युद्धमें मारेहुए दैत्योंके शरीरोंसे अनेक प्रकारके लोहा उत्पन्न हुए ॥ २ ॥

लोहभेदाः ।

मुण्डं तीक्ष्णं तथा कान्तं भेदास्तेषां त्रयोदश ॥ ३ ॥

लोहा तीन तरहका होताहै उनमेंसे पहलेका नाम मुंड है, दूसरेका नाम तीक्ष्ण और तीसरेका नाम कान्त है, इनमेंसे प्रत्येकके सब भेद मिलाकर तेरह भेद होते हैं ॥ ३ ॥

तत्रादौ मुण्डलोहभेदाः ।

मृदु कुण्डं च काण्डारं त्रिविधं मुण्डमुच्यते ॥ ४ ॥

मुंड नामक लोहा तीन प्रकारका होता है जैसे मृदु, कुंड, कांडार ॥ ४ ॥

तीक्ष्णलोहभेदाः ।

खरसारं च होत्तालं तारवट्टं विडं तथा ।
काललोहं गजाख्यं च षड्विधं तीक्ष्णमुच्यते ॥ ५ ॥

तीक्ष्ण अर्थात् पौलाद नामक लोहा छः प्रकारका होता है। जैसे खरसार, होत्ताल, तारबट्ट, विड, काललोह, गज ॥ ५ ॥

कान्तलोहभेदाः ।

कान्तं लोहं चतुर्द्धोक्तं रोमकं भ्रामकं तथा ।
चुम्बकं द्रावकं चैव गुणास्तस्योत्तरोत्तराः ॥ ६ ॥
पञ्चमं च क्वचित्प्रोक्त कर्षणं च रसार्णवे ।
यद्यदाकरसंभूतं तत्तद्देशजरोगनुत् ॥ ७ ॥

कान्त नामक लोहा चार प्रकारका होता है, जैसे रोमक, भ्रामक, चुम्बक, द्रावक इन सबोंमें उत्तरोत्तर अधिक गुण है। पूर्वोक्त चार भेदोंके अतिरिक्त पाँचवाँ भेद कर्षण नामक लोहा भी कहीं २ कहागया है, यह कर्षण लोहा जिस देशकी खानसे निकलता है उसी देशमें निवास करनेवाले मनुष्योंके रोगोंको दूर करता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

मुण्डभेदेषु–मृदुलोहलक्षणम् ।

मृदुलोहः स विज्ञेयो घनाघातेन न स्फुटेत् ।
तथा स्निग्धश्च नम्रः स्यादुत्तमः स तु कीर्तितः ॥ ८ ॥

मृदु लोह उसको कहते हैं कि, जो घनकी चोटोंसे न फूटता हो, तथा चिकना और नरम हो, यह रसके काममें श्रेष्ठ कहा है ॥ ८ ॥

कुण्डलोहलक्षणम् ।

त्रुट्यति यस्तु घनाघातैः काठिन्यात्कुण्ड उच्यते ।
मध्यमः स च विज्ञेयो भिषग्भिस्सुपरीक्षकैः ॥ ९ ॥

परीक्षा करनेमें चतुर वैद्य उस लोहका कुण्ड कहते हैं कि, जो घनकी चोटसे कठिनतासे टूटे और गुणोंमें मध्यम हो ॥ ९ ॥

काण्डारलोहलक्षणम् ।

घनाघातैश्च यः शीघ्रं त्रुटेद्गर्भे तु कृष्णकः ।
अधमः स तु विज्ञेयो वत्स काण्डारसंज्ञकः ॥ १० ॥

हे वत्स ! जो लोहा घनकी चोटोंसे शीघ्र हो टूट जावे और भीतर काले रंगका निकले वह अधम है काण्डार नामक लोहा जानना चाहिये ॥ १० ॥

तीक्ष्णलोह भेदेषु-खरलक्षणम् ।

कठिनो त्रोटनात्तियग्रेखा पारदसन्निभा ।

भारान्न च भवेन्नम्रः खरलोहः स कथ्यते ॥ ११ ॥

कडा हो और तोडनेसे जिसके भीतर टेढी पारेके समान रेखा जानपडें, बोझा रखनेसे जो नम्र न हो वह तीक्ष्णलोहेका भेद खर नामक लोहा कहा जाता है ॥११॥

सारलोहलक्षणम् ।

पृथिव्या जायते यस्तु तिर्यग्रेखासमन्वितः ।

कठिनः स्यात्तथा पातः लोहसारः स उच्यते ॥ १२ ॥

जो पृथवीसे पैदा होताहो, टेढी रेखाओंसे युक्त हो कडा हो, पीले रंगबाला हो उसे सार लोहा कहते हैं ॥ १२ ॥

खरसारलक्षणम् ।

ह्रीबेरपुष्पवद्वर्णे खरसारोऽभिधीयते ।

स्थलसूक्ष्मप्रभेदाभ्यां स चापि द्विविधः स्मृतः ॥ १३ ॥

ओड्रदेशोद्भवो ह्यौड्रः कालगस्तु कलिंगजः ।

स्नुहीपत्रनिभश्छिद्रैर्युक्तस्त्वौड्रश्च संस्मृतः ॥

शुकपञ्जरवर्णाभो नम्रः कालिङ्ग उच्यते ॥ १४ ॥

जिस लोहेका रंग सुगन्धवालाके पुष्पके तुल्य हो वह लोहा खरसार कहा जाता है, स्थूल और सूक्ष्म भेदोंसे वह दो प्रकारका होता है ओड्र अर्थात् उडिया देशमें जो पैदा होता है उस औड्र कहते हैं और कलिङ्ग देशमें जो पैदा होता है उसको कलिङ्गज कहते हैं। जो थूहरके पत्तेके सदृश हो और छेदोंस युक्त हो वह लोहा औड्र है, जो तोताक पिजरक वण सदृश और नम्र हो उसको कलिङ्गज कहते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

होत्ताललोहलक्षणम् ।

कृष्णवर्णस्तथा पीतस्तिर्यग्रेखासमन्वितः ।

स्यात्त्रोटनेऽतिकठिनः लोहो होत्तालसंज्ञकः ॥ १५ ॥

जो काला और पीला हो, टेढी रेखाओंसे युक्त हो, तोडनेमें अत्यन्त कठिन हो, उसे होत्ताल लोह कहते हैं ॥ १५ ॥

तारलोहलक्षणम् ।

यस्तु वज्रवदाभाति सूक्ष्मरेखायुतस्तथा ।
श्यामवर्णो गुरुश्चास्ति तारस्स त्वभिधीयते ॥ १६ ॥

जो वज्रके तुल्य प्रकाशित होता है और सूक्ष्म रेखाओंसे युक्त हो, काले रंगवाला तथा भारी हो उसको तार लोहा कहते हैं ॥ १६ ॥

काललोहलक्षणम् ।

कृष्णो नीलो गुरुः स्निग्धो त्रुटयेन्नैव च त्रोटनात् ।
स काललोहनाम्ना वै कीर्तितो भिषजां वरैः ॥ १७ ॥

जो लोहा काला, नीला, भारी और चिकना हो, तोडनेसे भी न टूटे । उसको श्रेष्ठ वैद्य काललोह कहते हैं ॥ १७ ॥

लोहमातृकागजवल्लीलक्षणम् ।

गजवल्लीति विख्याता सर्वलोहस्य मातृका ।
स्थूललघ्वङ्गभेदेन तत्स्याद्वज्रादिसंभवम् ॥ १८ ॥

सर्वलोहोंकी माता,गजबेली जिसका प्रसिद्ध नाम है वह स्थूल और लघुभेदसे दो प्रकारकी होती है, इसकी उत्पत्ति वज्रसंज्ञक लोहासे है ॥ १८ ॥

अथ प्रसङ्गाद्वज्रलोहभेदाः ।

असितं काललोहाख्ये रक्तं लोहितवज्रके ।
मायूरवज्रकं चान्यदन्यत्तित्तिरवज्रकम् ॥ १९ ॥
रोहिणीवज्रकं चान्यदन्यद्वा शुकवज्रकम् ।
एवं दशविधं वज्रं गुणवच्चोत्तरोत्तरम् ॥ २० ॥

अब प्रसङ्गसे वज्रलोहके भेद कहते हैं । असित, काल, लोह, रक्त, लोहित, वज्रक, मयूरवज्र, तित्तिरवज्र, रोहिणीवज्रक, शुकवज्र यह दश प्रकारका वज्र नामक लोहा उत्तरोत्तर गुणोंमें अधिक है ॥ १९ ॥ २० ॥

कान्तलोहपरीक्षा ।

पात्रे यस्य प्रसरति जले तैलबिन्दुर्न तप्ते
हिङ्गुर्गन्धं विसृजति निजं तिक्ततां निम्बकल्कः ।
पाच्यं दुग्धं भवति शिखिराकारकं नाति भूमौ
कान्तं लोहं तदिदमुदितं लक्षणाक्तं तथान्यत् ॥ २१ ॥

कान्तलोहकी परीक्षा,–अग्निमें तपाया हुआ तथा जलसे युक्त जिस लोहपात्रमें छोडे हुए तैल बिन्दु न फैलते हों, हींग अपने गंधको छोडदेती हो, नीमका कल्क अपनी तिक्तताको त्याग देता हो, दूध औटानेसे पर्वतकी तुल्य ऊँचा होजाय पर पृथिवीमें न गिरे उसको कान्त लोह कहते हैं॥ २१॥

कान्तलोहभेदोक्तरोमकादिलक्षणम् ।

तद्रोमकान्तं स्फुटिताद्यतो रोमोद्गमो भवेत् ।
भ्रामकं लोहजातिं तु तत्कान्तं भ्रामकं मतम् ॥ २२ ॥
चम्बयेच्चुम्बकं कान्तं कर्षयेत्कर्षकं तथा ।
साक्षाद्यद्द्रावयेल्लोहं तत्कान्तं द्रावकं भवेत् ॥ २३ ॥

पूर्वोक्त कान्तलोहभेद रोमकादिकोंके लक्षण--तोडते समय जिसमें रुयेंसे जानपडें उसको रोमकान्त कहते हैं। लोहकी जातियोंको जो भ्रमावे उसे भ्रामक कहते हैं। जो लोहा अन्य लोहोंको चुम्बन करे उसे चुम्बक कहते हैं। जो आकर्षण करे उसकी कर्षक संज्ञा है। जो लोहा इतर लोहोंको नरम करे उसकी द्रावक संज्ञा है॥ २२॥ २३॥

रोमकादिभेदाः।

एकास्यं द्विमुखाख्यं च वेदास्यं शंखचाक्रिकम् ।
सर्वतोमुखमित्येवमुत्तमाधमकान्तकम् ॥
भेदानां लक्षणं यच्च तन्नोक्तं ग्रन्थगौरवात् ॥ २४ ॥

पूर्वोक्त रोमकादिकोंके भेद पहले जो कान्तलोहके चार भेद कहे गये हैं, उन्हींके एकमुख, द्विमुख, चतुर्मुख, शंखचक्रिक और सर्वतोमुख यह छः भेद हैं इनके उत्तम मध्यमादि अनेक भेद होते हैं। यहां ग्रन्थगौरव होजानेके भयसे उक्त एकमुखादिकोंके लक्षण नहीं कहे गये हैं॥ २४॥

कान्तलोहस्य वर्णादिकथनम् ।

पीतं रक्तं तथा कृष्णं त्रिवर्णं स्यात्पृथक्पृथक् ।
क्रमेण देवतास्तत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ २५ ॥

कान्तनामक लोहका पीला, लाल और कृष्ण रंग है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र यह क्रमसे उनके देवता हैं (इनमेंसे पीले रंगका स्पर्शवेधी है और काले रंगक रसायनमें ग्राह्य है, लाल रंगवाले कान्तलोहको पारेके बंधनमें ग्रहण करना योग्य है, द्रावक अति श्रेष्ठ है, कर्षक श्रेष्ठ है, चुम्बक मध्यम और भ्रामक अधम है॥२५॥

पाण्ड्याख्यलोहलक्षणम् ।

घर्षणाज्जायते गोलः यस्मिन्रेखास्ति हेमभा ।
स वै पाण्ड्यो द्विधा ख्यातः श्वेतकृष्णाविभेदतः ॥ २६ ॥

जो लोहा सुवर्ण सदृश रेखाओंसे युक्त हो, घिसनेसे गोल होजाय उसको पाण्ड्य कहते हैं, श्वेत और कृष्ण भेदसे वह दो प्रकारका होताहै ॥ २६ ॥

अथोक्तलोहादिविषये मिश्रवर्णनम् ।

मुण्डन्तु वर्तुलं भूमौ पर्वतेषु च दृश्यते ।
गजवल्ल्यादि तीक्ष्णं स्यात्कान्तं चुम्बकसंभवम् ॥ २७ ॥
मुण्डात्कटाहपत्रादि जायते तीक्ष्णलोहतः ।
खड्गादिशस्त्रभेदाः स्युः कान्तलोहं तु दुर्लभम् ॥ २८ ॥

मुंड नामका लोहा पृथ्वी वा पहाडोंमें वर्तुलरूपसे प्राप्त होता है, तीक्ष्णलोहा गजबेलि आदिसे उत्पन्न होताहै, और कान्त लोहा चुंबक पत्थरसे पैदा होता है, मुंड लोहसे कडाही, तवा आदि वस्तु बनाईजाती हैं, तीक्ष्ण संज्ञक लोहेसे तलवार आदि हथियार बनाये जाते हैं इनमेंसे कान्त लोहका मिलना बहुत कठिन है ॥ २७ ॥ २८ ॥

लोहानां पारस्परिकाधिकश्रेष्ठत्ववर्णनम् ।

किट्टाद्दशगुणं मुंडं मुण्डात्सारं चतुर्गुणम् ।
सारादौड्रं द्विगुणितं कालिंगं च ततोऽष्टधा ॥ २९ ॥
तस्माद्भद्रं दशगुणं भद्राद्वज्रं सहस्रधा ।
वज्रात्षष्टिगुणं पांड्यं कान्तिजं शतधा ततः ॥ ३० ॥
सर्वलोहोत्तम यस्मात्तस्मात्कोटिगुणं मतम् ।
यल्लोहे यद्गुणं प्रोक्तं तत्किट्टमपि तद्गुणम् ॥ ३१ ॥

किट्ट संज्ञक लोहसे मुंड लोहा गुणोंमें दशगुण अधिक है,मुंडसे चतुर्गुण सार, सारसे द्विगुण औड्र, औड्रसे अष्टगुण कलिंगज, कलिङ्गजसे दशगुण भद्र, भद्रसे सहस्रगुण वज्र, वज्रसे साठिगुणा पांड्य, पांड्यसे सौ कान्तिलोहमें अधिक गुण हैं । जिस कारण सब लोहोंमें कान्तसंज्ञक लोहा उत्तम है इस कारण इसको करोड गुणयुक्त कहना अनुचित नहीं है । जिस लोहमें जितने गुण कहे गये हैं उस लोहकी किट्टमेंभी उतनेही गुण समझना चाहिये ॥ २९-३१ ॥

कान्तादिगुणसंख्याकल्पना ।

कान्ते लक्षगुणं प्रोचुः रसकर्मविशारदाः ।
स्फटिकोत्थं कोटिगुणं विद्युत्संभूतदुर्लभम् ॥ ३२ ॥

रसकर्ममें चतुर वैद्योंने कान्तलोहमें लक्ष गुण कहा है, स्फटिकके लोहमें कोटि गुण कहा है, और बिजलीसे उत्पन्न लोह तो पृथिवीमें दुर्लभ हे ॥ ३२ ॥

ग्राह्यलोहकथनम् ।

कान्ताभावे तीक्ष्णलोहं च ग्राह्यं तल्लोहं वै सन्मृदुत्वं विधत्ते ।
मुण्डं त्याज्यं सर्वथा नैव ग्राह्यं यस्मान्मुण्डे भूरिदोषा वदन्ति ॥ ३३ ॥

जहाँतक होसके कान्तलोहा लेवे, यदि वह न मिले तो उसके अभावमें तीक्ष्ण (फौलाद) लोहा लेवे क्योंकि वह गुणोंमें श्रेष्ठ और मृदु होता है । श्रेष्ठ वैद्य मुंड नामक लोहामें अनेक दोष कहते हैं इस हेतु उसका त्याग करनाही योग्य हैं क्योंकि वह ग्रहण करनेके योग्य नहीं है ॥ ३३ ॥

लोहशोधनावश्यकत्वम् ।

अशुद्धं तु मृतं लोहमायुर्हारि रुजाकरम् ।
कुष्ठाङ्गमर्दहृत्पीडां दद्यात्तस्मात्सुशोधयेत् ॥ ३४ ॥

विना शुद्ध किये हुएही माराहुआ लोहा सेवन करनेसे आयुकी हानि तथा रोगोंको पैदा करता है, कुष्ठरोग, अंगोंका टूटना और हृदयमें पीडाको उत्पन्न करता है, इस कारण वैद्यको उचित है कि, लोहेका विधिपूर्वक शोधन करे ॥३४॥

लोहस्थितसप्तदोषाख्यानम् ।

गुरुता दृढता क्लेदी कश्मली दाहकारकः ।
अश्मदोषः सुदुर्गन्धो सप्त दोषा अयःस्थिताः ॥ ३५ ॥

लोहमें भारीपन, दृढता, क्लेद, कश्मल, दाहकत्व, गिरिदोष, दुर्गन्ध यह सात दोष स्थित हैं ॥ ३५ ॥

लोहस्थदोषदर्शनपुरस्सरं तच्छोधनावश्यकता ।

गरलं क्लमवान्तिवीर्यहा इति दोषान्प्रवदन्ति शोधकाः ।
अथ शोधनभावकान्पुटान्विधिनैकेन वदन्ति सूरयः ॥ ३६ ॥

धातुशोधक वैद्य लोहमें विष, क्लम, वमन, वीर्यनाशकत्व आदि दोषोंको कहते हैं इस कारण वह लोहकी शोधक पुटोंको एक विधिसे वर्णन करते हैं ॥ ३६ ॥

सर्वलोहशोधनप्रकारः।

शशरक्तेन संलितं चिञ्चार्कपयसायसम्।
दलं हुताशने ध्मातं सिक्तं त्रैफलवारिणा॥ ३७॥

लोहेपर शश अर्थात् खरगोशके रुधिरका लेप करके अग्निमें तपाकर पहलेसे सिद्ध किये हुए त्रिफलाके काढेमें बुझावे इसी रीतिसे तीन पुट देवे तत्पश्चात् इमली और आकके दूधका अलग २ लेप करके पूर्ववत् त्रिफलाके काढेमें बुझावे इसी प्रकार तीन पुट देवे तो निस्सन्देह लोहाकी उत्तम शुद्धि होजाती है॥३७॥

द्वितीयः प्रकारः।

सर्वलोहानि तप्तानि कदलीमूलवारिणा।
सप्तधाभिनिषिक्तानि शुद्धिमायान्त्यथोत्तमम्॥ ३८॥

दूसरा प्रकार, सब प्रकारके लोहोंको अग्निमें तपा तपाकर केलाकी जडके रसमें सात बार बुझावे तो सहजमें ही उनकी उत्तम शुद्धि होजाती है॥ ३८॥

तीक्ष्णमुण्डयोर्विशेषशुद्धिस्तदितरसामान्यशुद्धिश्च।

शुद्धिमायाति तीक्ष्णं च मुण्डं निर्गुण्डिसेचनात्।
इतराणि च लोहानि सर्वाण्युलूकविष्ठया॥ ३९॥

तीक्ष्णलोहाको अग्निमें तपा २ कर सह्मालूके रसमें बुझावे तो वह शुद्ध हो जाता है और इसी प्रकार मुंडनामक लोहकी भी शुद्धि होजाती है। इन दोनोंसे अन्य सब लोहोंको पूर्ववत् अग्निमें तपा २ कर उल्लूकी विष्ठाके रसमें बुझावे तो वे शुद्ध हो जाते हैं॥ ३९॥

लोहगिरिघ्न विशेषशुद्धिः।

समुद्रलवणोपेतं तप्तं निर्वापितं खलु।
त्रिफलाक्वथिते नूनं गिरिदोषमयस्त्यजेत्॥ ४०॥

लोहेको अग्निमें तपा २ कर सामुद्रनमकसे युक्त त्रिफलाके क्वाथमें बुझावे तो लोहेमें जो पर्वतदोष है वह दूर होवे॥ ४०॥

शुद्धलोहपरीक्षा।

न विस्फुलिङ्गा न च बुद्बुदा यदा यदा न चैषां पटलं न शब्दः।
मूषागतं रत्नसमं स्थिरं च तदा विशुद्धं प्रवदन्ति लोहम्॥ ४१॥

अग्निमें तपानेसे जिसमें चिनगारियाँ न निकलें और पानीमें बुझानेसे बुलबुले न उठे, तथा जो पर्तरहित हो जिसमें आवाज न हो, मूषामें रखनेसे जो रत्नके सदृश स्थित रहे उसको शुद्ध लोहा समझना चाहिये ॥ ४१ ॥

लोहमारणावश्यकता ।

सम्यगौषधकल्पानां लोहकल्पः प्रशस्यते ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन लोहमादौ विमारयेत् ॥ ४२ ॥

जहाँतक हो सके सर्व प्रयत्नसे पहले लोहका मारण करे क्योंकि यह लोहकल्प सब औषधियोंके कल्पमें श्रेष्ठ मानाजाता है ॥ ४२ ॥

मारणेऽयसोमितिस्तत्क्रियासु मन्त्रपठनाज्ञा च ।

नातः पचेत्पंचपलादर्वागूर्ध्वं त्रयोदशात् ।
आदौ मन्त्रस्ततः कर्म कर्तव्यं मन्त्र उच्यते ॥ ४३ ॥
ॐ अमृतोद्भवाय स्वाहा ॥ ४४ ॥

पाँच पलसे न्यून और तेरह पलसे अधिक लोहा न फूँके, पर लोहेकी शोधन तथा मारणादि क्रिया करनेके पूर्वही " ॐ अमृतोद्भवाय स्वाहा" इस मंत्रका जप कर लिया करे तत्पश्चात् शोधनादि कार्य करे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

लोहे पारदाभ्रकसंस्कारावश्यकता ।

न रसेन विना लोहं न लोहं चाभ्रकं विना ।
एकत्वेन शरीरस्य बन्धो भवति देहिनाम् ॥ ४५ ॥
पारदेन विना लोहं यः करोति पुमानिह ।
उदरे तस्य कीटानि जायन्ते नात्र संशयः ॥ ४६ ॥

पारा और अभ्रकके संस्कार विना लोहकी भस्म नहीं होती, क्योंकि एकतासेही देहियोंके शरीरका बन्ध होता है जो मनुष्य पारेके विना लोहकी भस्म बनाता है और उसका सेवन करता है उसके पेटमें निस्सन्देह कीडे उत्पन्न होजाते हैं॥४५॥४६॥

तीक्ष्णलोहभस्मविधिः ।

शुद्धं लोहभवं चूर्णं पातालगरुडीरसैः ।
मर्दयित्वा पुटेद्वह्नौ दद्यादेवं पुटत्रयम् ॥ ४७ ॥
पुटत्रयं कुमार्याश्च कुठारच्छिन्नकारसैः ।
पुटषट्कं ततो दद्यादेवं तीक्ष्णमृतिर्भवेत् ॥ ४८ ॥

शुद्ध किये हुए लोहेके चूर्णको छिराहिटाके रसमें घोटकर शरावसंपुटमें रख कपरमिट्टी करे और जंगली उपलोंकी अग्निमें गजपुटमें फूँकदेवे इसी प्रकार सब तीन पुट देवे, तत्पश्चात् घीकुवारके रसमें खरलकर पूर्ववत् तीन पुट देवे, और हडसंकरीके रसमें खरलकर छः पुट देवे तो तीक्ष्ण अर्थात् फौलाद लोहेकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

द्वादशांशेन दरदं तीक्ष्णचूर्णे च मेलयेत् ।
कन्यानीरेण संमर्द्य यामयुग्मं तु तत्पुनः ॥ ४९ ॥
शरावसंपुटे कृत्वा पुटेद्गजपुटेन च ।
सप्तधैवं कृतं लोहं रजो वारितरं भवेत् ॥ ५० ॥

दूसरा प्रकार,-शुद्ध किये हुए पौलदका जितना चूर्ण हो उसका बारहवाँ भाग सिङ्गरफका मिलाकर घीकुवारके रसके साथ दो प्रहर पर्यन्त खरल करे तत्पश्चात् शरावसंपुटमें रख कपरमिट्टी करके गजपुटमें फूँकदेवे इसी प्रकार सब मिलाकर सात पुट देवे तो पानीपर तैरनेवाली लोहभस्म सिद्ध हो जावे ॥४९॥५०॥

तृतीयः प्रकारः ।

काकोदुम्बीरकानीरे लोहपत्राणि सेचयेत् ।
तप्ततप्तानि षड्वारं कुट्टयेत्तदुलूखले ॥ ५१ ॥
तत्पञ्चमांशं दरदं क्षिप्त्वा सर्वं विमर्दयेत् ।
कुमारीनीरतस्तीक्ष्णं पुटे गजपुटे तथा ॥ ५२ ॥
त्रिवारं त्रिफलाक्काथैस्तत्संख्याकैरतन्द्रितः ।
एवं चतुर्दशपुटैर्लोहं वारितरं भवेत् ॥ ५३ ॥

तीसरा प्रकार,-पौलादके कंटकवेधी पत्रोंको अग्निमें तपा २ कर कठूमरीके रसमें बुझावे तत्पश्चात् ओखलीमें डालकर उनको कूटे, यह एक पुट हुई इसी प्रकार सब मिलाकर जब छः पुट देचुके तब लोहपत्रोंका पाँचवा भाग उसमें सिङ्गरफ मिलाकर घीकुवारके रसमें दो प्रहर तक खरल करके शरावसंपुटमें रख कपरमिट्टी कर गजपुटमें फूँकदेवे ऐसे ही सब मिलाकर पाँच पुट देवे तत्पश्चात् त्रिफलाके काढेमें खरल करके तीन पुट देवे । इस प्रकार सब चौदह पुट देनेसे पानीपर तैरनेवाली लोहभस्म सिद्ध होजाती है ॥ ५१-५३ ॥

चतुर्थः प्रकारः।

तिन्दूफलस्य मज्जायां खड्गं लिप्त्वातपे खरे।
धारयेत्कांस्यपात्रेण दिनैकेन पुटत्यलम् ॥ ५४ ॥
लेपं पुनः पुनः कुर्याद्दिनान्ते तत्प्रपेषयेत्।
त्रिफलाक्काथसंयुक्तं दिनैकेन मृतिर्भवेत् ॥ ५५ ॥

चौथा प्रकार–लोहेके पत्रोंको तिन्दू फलके गूदेका लेप करके कांसीके पात्रमें रख तेज धूपमें सुखालेवे इसी प्रकार दिनमें वारवार लेप कर करके धूपमें सुखालिया करे, सायंकाल त्रिफलाके काढेके साथ खरल करके गजपुटकी आँच देनेसे एक ही दिनमें भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

पञ्चमः प्रकारः।

लोहे पत्रमतीव तप्तमसकृत्क्काथे क्षिपेत्रैफले
चूर्णीभूतमतो भवेत्त्रिफलजे क्काथे पचेद्गोजले।
मत्स्याक्षीत्रिफलारसेन पुटयेद्यावन्निरुत्थं भवेत्
पश्चादाज्यमधुप्लुतं सुपुटितं शुद्धं भवेदायसम् ॥ ५६ ॥

पाँचवाँ प्रकार–लोहेके कंटकबेधी पत्रोंको अग्निमें वार २ खूब गरम कर करके त्रिफलाके काढेमें अनेकवार बुझावे और त्रिफलाहीके क्काथमें खरल करके गौके मूत्रमें पकावे तत्पश्चात् मछेछी और त्रिफलाके क्काथमें तब तक भावना दे जब तक कि वह भस्म निरुत्थ न होय फिर घृत और शहदमें लपेटकर पुट देनेसे लोहा शुद्ध होजाताहै ॥ ५६ ॥

षष्ठः प्रकारः।

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं खल्वे कृत्वाथ कज्जलीम्।
द्वयोः समं लोहचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ ५७ ॥
यामद्वयात्समुद्धृत्य तद्गोलं ताम्रपात्रके।
आच्छाद्यैरण्डपत्रैश्च यामार्द्धेत्युष्णतां ददेत् ॥ ५८ ॥
धान्यराशौ न्यसेत्पश्चात्त्रिदिनान्ते समुद्धरेत्।
संपेष्य गालयेद्वस्त्रे सत्यं वारितरं भवेत् ॥ ५९ ॥
कान्ततीक्ष्णं तथा मुण्डं निरुत्थं जायते ध्रुवम् ॥ ६० ॥

अच्छे प्रकार शुद्ध किया हुआ पारा एक भाग, शुद्ध गंधक दो भाग और दोनोंके बराबर लोहेका चूर्ण लेकर घीकुवारके रसमें दो प्रहर पर्यन्त खरलकर गोला बनालेवे और उस गोलेको किसी स्वच्छ ताँबेके पात्रमें रखकर अरंडके पत्तोंसे आच्छादित करके आधे प्रहर धूपमें रख सुखालेवे तदनन्तर उस गोलेको अन्नकी राशिमें तीन दिवस तक गाडे रक्खे, और चौथे दिन अन्नकी राशिसे उस गोलेको अलग निकाल बारीक पीसकर किसी स्वच्छ कपडेमें छानलेवे तो निस्सन्देह यह भस्म जलके ऊपर तैरने लगे इसी प्रकारसे कान्त, तीक्ष्ण और मुंड इन तीनों लोहोंकी निरुत्थ भस्म सिद्ध होजाती है (यदि खाँसी आती हो तो इस भस्मको लोहरसायनके साथ देनेसे फायदा होताहै, और यह भस्म सुवर्णपर्पटी तथा योगराज योगमें भी मिलाई जाती है) ॥ ५७-६० ॥

सप्तमः प्रकारः ।

लोहचूर्णपलं खल्वे सोरकस्य पलं तथा ।
अश्वगान्धपलं चापि सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ ६१ ॥
कुमार्यद्भिर्दिनं पश्चाद्गोलकं ऋभुपत्रकैः ।
संवेष्ट्य च मृदा लिप्त्वा पुटेद्गजपुटेन च ॥ ६२ ॥
स्वांगशीतं समुद्धृत्य सिन्दूराभमयोरजः ।
मृतं वारितरं ग्राह्यं सर्वकार्यकरं परम् ॥ ६३ ॥

अच्छे प्रकार शुद्ध किये हुए लोहेका चूर्ण एक पल अर्थात् चार तोले, शोरा एक पल और असगंध एक पल इन सबोंको एकमें मिलाकर घीकुवारके रसके साथ एक दिन खरल करे जब ठीक २ खरल होजावे तो उसका गोला बना अरंडके पत्तोंमें लपेटकर ऊपरसे मिट्टीका लेप करदे और गजपुटकी आँचमें पकावे जब स्वयं शीतल होजावे तो गोलेको अलग निकाल लेवे। यह लोहभस्म सिंदूरके तुल्य लालरंग युक्त, जलमें तैरनेवाली और सम्पूर्ण कार्योंको करनेवाली तथा गुणोंमें श्रेष्ठ है अतः ग्रहण करनेके योग्य है ॥ ६१-६३ ॥

अष्टमः प्रकारः ।

आदौ लोहविचूर्णितं तदनु गोतोये विभाव्यं दिने
रात्रौ चैव पुटाश्च विंशतिमिताः कूर्माख्ययन्त्रे शुभे ।
एवं वै त्रिफलाजलस्य कथिता भावाश्च षष्टिः पुटाः
कन्याया रसभावनाश्च कथिताश्चाष्टौ च वैद्यैः पुटाः ॥ ६४ ॥

वज्रार्कौ हालिनीङ्गुदी द्विरजनी गुंजा तुरंगी घना
निर्गुण्डी गरुडी कुठेरकनकं वह्निश्च मत्स्या लता ।
हैमी हंसपदी तथामृतलता भृङ्गेन्द्रवृक्षैर्दिने
रात्रौ तद्रसकं पृथक्पृथगहो सप्तैव भावाः पुटाः ॥ ६५ ॥
राजीतक्रयुतं सुखल्वकतले पिष्ट्वा दिनैकं दृढं
भावाश्चैव पुटाश्च सप्त कथिताः सर्वैश्च वैद्याधिपैः ।
भावा वै कथिता नगा दिनदिने नित्यं पुनः सूरिभी-
रात्रौ सप्त पुटाश्च सन्निगदिता यन्त्रे च कूर्माभिधे ॥ ६६ ॥
पश्चाद्भावपुटाश्च पञ्च सततं पञ्चामृतानां पुन-
स्तच्चूर्णस्य दशांशकं च दरदमुत्क्वाथ्य क्षीरे स्त्रियाः ।
गोदुग्धे यदि वा त्रयोपि सततं पिष्ट्वा च भावा पुटेत्
पश्चादर्द्धसुपारदेन शुचिना गन्धेन कन्यारसैः ॥ ६७ ॥
तच्चूर्णं परिमर्दयेद्दृढतरं संपाचयेत्संपुटेत्
पश्चात्केवलकन्यकाशुचिरसैर्भस्म त्रिशः पाचयेत् ।
पश्चात्कज्जलिसान्निभं जलतरं शुद्धं च लोहं भवे-
देवं प्रोक्तबलाजलैः परिहृतं तल्लोहमुक्तं शुभम् ॥ ६८ ॥

आठवाँ प्रकार--शुद्ध किये हुए लोहेके बारीक चूर्णको दिनमें गोमूत्रमें खरल करे और रात्रिको कूर्मयन्त्रमें फूँक देवे, यह एक पुट हुई। ऐसे ही कच्छपयन्त्रमें बीस पुट देवे, और इसी प्रकार त्रिफलाके रसकी बार बार भावना देकर साठ वार गजपुटमें फूँके तत्पश्चात् घीकुवारके रसकी भावना दे दे कर आठ वार गज-पुटमें पकावे और फिर थूहर, आक, कलिहारी, गोंदी, हल्दी, दारुहल्दी, घुँघची, असगंध, नागरमोथा, सम्हालू, छिरहिटा, वनतुलसी, धतूर, चित्रक, मछेछी, पीली जुही, लाल रंगकी लज्जालु, गिलोय, भाँगरा, देवदारु इन प्रत्येक औषधि-योंके काढे वा रसमें अलग २ दिनमें खरल करे और रात्रिमें गजपुटकी आँचमें पकावे इस प्रकार सात दिवसमें सात पुट देवे, ऐसेही राई और छाँछके साथ एक दिन अच्छे प्रकार खरल करके रात्रिमें गजपुटकी आँचमें फूँक देवे यह एक बारकी क्रिया हुई। इसी प्रकार सात दिन पर्यन्त करे। दिन दिनमें सात भावना

दे और रात्रि रात्रिमें कच्छपयन्त्रमें सात पुट देवे । पश्चात् पंचामृत (गिलोय, गोखुरू, मुसली, गोरखमुण्डी, शतावर) के काढेकी पाँच भावना देकर पाँच बार गजपुटमें पकावे, इसके अनन्तर लोहेके चूर्णका दशवाँ भाग शिङ्गरफ मिलाकर स्त्री वा गौके दूधमें औटावे इस प्रकार तीन बार करे । अथवा पूर्वोक्त दोनों दूधोंमेंसे किसी एक दूधमें तीन वार खरल करके तीनही वार गजपुटकी आँचमें पकावे, तत्पश्चात् लोहचूर्णका आधा भाग शुद्ध पारा और आधा भाग शुद्ध गंधक मिलाकर घीकुवारके रसके साथ खूब खरल करके शरावसंपुटमें रख गजपुटकी आँचमें पकावे, जब स्वांगशीतल हो जावे तब शरावसंपुटसे अलग निकाल घीकुवारके रसकी तीन भावना देकर तीन वार गजपुटमें पकावे । इस पूर्वोक्त सर्व क्रियाके करनेसे कज्जलके सदृश रंग युक्त तथा जलमें तैरनेवाली शुद्ध भस्म सिद्ध होजाती है । यदि इस सिद्ध भस्ममें बलाके रसकी पुट देवे तो बहुतही उत्तम होजाती है ॥ ६४--६८ ॥

लोहभस्मपरीक्षा ।

सर्वमेव मृतं लोहं ध्मातव्यं मित्रपञ्चकैः ।
यदेवं स्यान्निरुत्थं तु सेव्यं वारितरं हि तत् ॥ ६९ ॥
मध्वाज्ये मृतलोहं च रूप्यं संपुटगे क्षिपेत् ।
रुद्ध्वा ध्मातं च संग्राह्यं रूप्यं वै पूर्वमानकम् ॥
तदा लोहमृतिं विद्यादन्यथा मारयेत्पुनः ॥ ७० ॥

सब लोहोंकी भस्ममें अलग २ मित्र पंचक मिलाकर अग्निमें रख धमनेसे यदि न जीवे और जलमें तैरती हो तो वह भस्म सेवन करनेके योग्य है । शहद, घी, लोहभस्म और चांदीको एकमें मिलाकर संपुटमें रख धमनेसे यदि चांदीका रंग तथा वजन ज्यौंका त्यौं रहे तो समझना चाहिये कि, लोहेका मारण ठीक २ होगया इससे अन्यथा हो तो फिर मारण करे ॥ ६९ ॥ ७० ॥

नवमः प्रकारः ।

तीक्ष्णस्य चूर्णं सरसं सगन्धं रसेन संमर्द्य भृशं कुमार्याः ।
पाकीकृतं कांस्यपुटांतरस्थं सूर्यातपे मृत्युमुपैति युक्तम् ॥ ७१ ॥

नववां प्रकार–शुद्ध पौलाद लोहका चूर्ण, शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक इन तीनोंको ग्वारपाठेके रसमें खरल करके काँसेके पात्रके संपुटमें रख सूर्यकी धूपमें रखदेवे तो लोह मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ७१ ॥

लोहमर्दनकालः।

तावत्तु मर्दयेल्लोहं यावत्कज्जलसन्निभम्।
करोति निहितं नेत्रे नैव पीडां मनागपि ॥ ७२ ॥

लोहेको तबतक खरल करे, जबतक वह काजलके तुल्य न हो और नेत्रोंमें लगानेसे कुछभी पीडा न करे ॥ ७२ ॥

पुटकालः।

तावल्लोहं पुटेद्वैद्यो यावच्चूर्णीकृतो जले।
निस्तरङ्गो लघुस्तोये समुत्तरति हंसवत् ॥ ७३ ॥

वैद्य तबतक लोहेमें पुट देता रहे जबतक कि, चूर्णीभूत, निस्तरंग और हलकापनसे युक्त वह लोहा पानीमें हंसके समान तैरे ॥ ७३ ॥

पुटावश्यकता।

लोहानामपुनर्भावो यथोक्तगुणकारिता।
सलिले तरणं वापि पुटनादेव जायते ॥ ७४ ॥
यथा यथा प्रदीयन्ते पुटास्तु खलु चायसे।
तथा तथा विवर्द्धन्ते गुणाः शतसहस्रशः ॥ ७५ ॥

पुटोंकी आवश्यकता--लोहेका फिर न जीना और उसमें यथोक्त गुणकर्तृत्व तथा जलमें तैरना आदि पुट देनेसेही होते हैं अन्यथा जैसे जैसे लोहेमें अधिक पुट दिये जाते हैं वैसे वैसे उसमें गुणभी बढते जाते हैं ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

पुटगुणाः।

पुटनात्स्याल्लघुत्वं च शीघ्रव्याप्तिश्च दीपनम्।
जारितादपि सूतेन्द्राल्लोहानामधिका गुणाः ॥ ७६ ॥

पुट देनेके गुण--हलकापन, शरीरमें शीघ्र फैलना, तथा जठराग्निको प्रदीप्त करना आदि सब गुण लोहमें पुट देनेसेही होते हैं पारेकी भस्मसेभी लोहभस्ममें अधिक गुण होते हैं ॥ ७६ ॥

स्वर्णादिमृतौ पुटविनिर्णयः।

स्वर्णरौप्यवधे ज्ञेयं पुटं कुक्कुटकाभिधम्।
ताम्रे काष्ठादिजो वह्निर्लोहे गजपुटानि च ॥ ७७ ॥

सुवर्ण और चाँदीके मारणमें कुक्कुटपुट और लोहेके मारणमें गजपुटका उपयोग करना चाहिये तांबेके मारणमें काष्ठादिककी अग्नि देनी चाहिये ॥७७॥

न्यूनाधिकपुटदाननिषेधः ।

रसादिद्रवपाकानां प्रमाणज्ञानजंपुटम् ।
नेष्टो न्यूनाधिकः पाकः सुपाकहितमौषधम् ॥ ७८ ॥

पारा आदि सब धातुमात्रके पाकमें जितने पुट लिखे हैं उतने ही पुट देना चाहिये उससे न्यून वा अधिक पुटोंका देना अनुचित है, क्योंकि यथार्थ पकी हुई औषधि हितकारी होती है ॥ ७८ ॥

लोहभस्मगुणाः ।

लोहं मृतं कज्जलसन्निभं तु भुंक्ते सदायो रसराजयुक्तम् ।
न तस्य देहे च भवन्ति रोगा मृतोपि कामःपुनरेति धाम ॥ ७९ ॥
आयुःप्रदाता बलवीर्यकर्ता रोगस्य हर्ता मदनस्य भर्ता ।
अयःसमानं नहि किञ्चिदन्यद्रसायनं श्रेष्ठतमं वदन्ति ॥ ८० ॥

लोहभस्मके गुण, जो मनुष्य काजलके तुल्य रंगवाली इस लोहभस्मको पारद सहित विधिपूर्वक सेवन करता है उस मनुष्यके शरीरमें किसी प्रकारके रोग नहीं उत्पन्न होते, और शान्तहुई कामाग्नि फिर भी प्रदीप्त होती है श्रेष्ठ वैद्यजन कहते हैं कि, इस लोहभस्मके सदृश उत्तम अन्य कोई रसायन नहीं है क्योंकि यह आयुको देनेवाली बलवीर्यको करनेवाली और कामदेवको पुष्ट करनेवाली है ॥ ७९ ॥ ८० ॥

लोहभस्मानुपानानि ।

शूले हिङ्गुघृतान्वितं मधुकणायुक्तं पुराणज्वरे
वाते साज्यरसोनकं श्वसनके क्षौद्रान्वितं त्र्यूषणम् ।
शीते व्याललतादलं समरिचं मेहे वरा सोपला
दोषाणां त्रितयेऽनुपानमुदितं सक्षौद्रमार्द्रोदकम् ८१ ॥

लोहभस्म सेवन करनेके अनुपान,-शूलमें हींग और घृतके साथ इस लोह-भस्मका सेवन करना चाहिये, जीर्णज्वरमें शहद और पिप्पलीके साथ, वातमें घी और लहसनके साथ, श्वास रोगमें शहद सहित सोंठ, मिर्च, पीपलके साथ, शीतमें मिरच और पानके साथ, प्रमेहमें त्रिफला और मिश्रीके साथ, सन्निपातमें शहद मिलेहुए अदरखके रसके साथ इस भस्मको विधि पूर्वक सेवन करे तो रोगोंसे मुक्त होजाता है ॥ ८१ ॥

घृतेन वातके देयं मधुना पित्तजे ज्वरे ॥ ८२ ॥
श्लेष्मपित्ते चार्द्रकेण निर्गुण्ड्या शीतवातके ॥ ८३ ॥
शुण्ठी वाते सिता पित्ते कफे कृष्णा त्रिजातके ।
सन्धिरोगेषु सर्वेषु प्रोक्तं लोहानुपानकम् ॥ ८४ ॥
वल्लं वल्लार्द्धमानं च यथायोगेन योजयेत् ।
त्रिफलालोहचूर्णं च वलीपलितनाशनम् ॥ ८५ ॥
कज्जलीमधुकृष्णाभ्यां श्लेष्मरोगनिवारणम् ।
खण्डया सचतुर्जातं रक्तपित्तनिवारणम् ॥ ८६ ॥
पुनर्नवात्वगाक्षीरैर्बलवृद्धिकरं परम् ।
पुनर्नवारसेनैव पाण्डुरोगनिषूदनम् ॥ ८७ ॥
हरिद्राया लोहचूर्णं पिप्पल्या मधुना सह ।
विंशतिं च प्रमेहाणां नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ८८ ॥
शिलाजतुसमायुक्तं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम् ।
वासकः पिप्पली द्राक्षा लोहं च मधुना सह ॥ ८९ ॥
गुटिकां भक्षयेत्प्रातः पञ्चकासनिवारणम् ।
ताम्बूलेन समायुक्तं भक्षयेल्लोहमुत्तमम् ॥ ९० ॥
अग्निदीप्तिकरं वृष्यं देहकान्तिविवर्द्धनम् ।
त्रिफलामधुसंयुक्तं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ९१ ॥
पथ्या सिता लोहभस्म यथोक्तं गुणदं भवेत् ।
किमत्र बहुनोक्तेन देहलोहकरं परम् ॥ ९२ ॥
ये गुणा मृतरूप्यस्य ते गुणाः कान्तभस्मनः ।
कान्ताभावे प्रदातव्यं रूप्यं तद्गुणतुल्यकम् ॥ ९३ ॥

वातज्वरमें घीके संग, पित्तज्वरमें शहदके साथ, कफपित्तज्वरमें अदरकके रसके साथ, कफवातमें सम्हालूके रसके साथ, वातमें सोंठके, पित्तमें मिश्रीके, और कफमें पीपलके साथ सेवन करे, संधिरोगोंमें दालचीनी, इलायची और तेजपातके साथ सेवन करना चाहिये । इस लोहभस्मकी मात्रा तीन या डेढ रत्ती है,

जिस रोगमें जो अनुपान कहा है उसीके साथ इसका सेवन करे । वलीपलित रोगके नाशके लिये त्रिफला युक्त लोहभस्मका सेवन करे । कफरोगमें पारे और गंधककी कज्जली सहित पीपल तथा शहद्के साथ, रक्तपित्तमें मिश्री और चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर) के साथ, बलवृद्धिकरनेमें पुनर्नवा और वंशलोचनके साथ, पाण्डुरोगमें पुनर्नवाके रसके साथ सेवन करे और हल्दी, पीपल तथा शहद्के साथ सेवन करे तो बीस प्रकारके प्रमेहोंको नाश करती है । इसमें सन्देह नहीं है । शिलाजीतके साथ सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्रको हरती है, अडूसा, पिप्पली, दाख और शहत संयुक्त लोहभस्मकी गोली बनाकर नित्य सेवन करे तो पाँच प्रकारकी खाँसी दूर होती है, पानके रसके साथ इस लोहभस्मका सेवन करना जठराग्निको दीप्ति कारक है, वृष्य है, शरीरकी कान्तिको बढानेवाला है, त्रिफला और शहतके साथ सब रोगोंमें इसको देवे । अथवा छोटी हरड और मिश्रीके साथ देवे तो भी सब रोगोंको हरती है । इस लोहभस्मकी बहुत प्रशंसा करनेसे कुछ लाभ नहीं अतः इसके विषयमें केवल इतना ही कहा जाताहै कि, यह शरीरको लोहेके सदृश पुष्ट या मजबूत करती है, जो गुण रूप्यभस्मके हैं वही गुण कान्तभस्मके भी हैं, यदि कान्तभस्म न मिले तो रूप्यभस्म देना चाहिये ॥ ८२--९३ ॥

लोहभस्मसेवनेऽपथ्यानि ।

कूष्माण्डं तिलतैलं च माषान्नं राजिकां तथा ।
मद्यमम्लरसं चैव त्यजेल्लोहस्य सेवकः ॥ ९४ ॥
मत्स्यजीवकवार्ताकं माषं च कारवेल्लकम् ।
व्यायामं तीक्ष्णमद्यं च तैलाम्लं दूरतस्त्यजेत् ॥ ९५ ॥

लोहभस्मके सेवनमें अपथ्य--लोहभस्मका सेवन करनेवाला मनुष्य कुम्हडा, तिलोंका तैल, उडद,राई, मदिरा और खट्टे पदार्थोंका त्याग करे । और मछली, जीवकका शाक, बैंगन, उडद, करेला, कसरत, लाल मिरचा आदि तीखे पदार्थ, मद्य, तेल, खटाई आदिकाभी त्याग करे ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

लोहस्यामृतीकरणम् ।

तोयाष्टभागशेषेण त्रिफलापलपञ्चकम् ।
घृतं क्राथस्य तुल्यं स्याद्घृततुल्यं मृतायसम् ॥ ९६ ॥
पाचयेत्ताम्रपात्रे च लोहदर्व्या विचालयेत् ।

योगवाहं मयाख्यातं मृतं लोहं महारसम् ॥
इत्थं कान्तस्य तीक्ष्णस्य मुण्डस्यापि ह्ययं विधिः ॥ ९७ ॥

पांच पल त्रिफलेमें आठ हिस्सा जल मिलाकर काढा पकावे, पकते २ जब आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब गौका घी और घीकेही बराबर लोहेकी भस्मको लेकर तांबेके पात्रमें पकावे और लोहेकी कलछीसे चलाता जाय, जब जल और घृत दोनों जलजावें केवल लोहभस्मही शेष रहजाय तब चूल्हेपरसे उतारलेवे । यह मृत लोह महारस योगवाह मैंने कहा इसी प्रकारसे कान्त, तीक्ष्ण और मुंड नामक लोहकी विधि समझनी चाहिये ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

लोहभस्मसेवनमन्त्रः ।

ॐ अमृतेन्द्रं भक्षयामि नमः स्वाहा ।

लोहपाकभेदास्तल्लक्षणानि च ।

लोहपाकस्त्रिधा प्रोक्तो मृदुर्मध्यः खरस्तथा ।
पंकशुष्करसौ पूर्वौ वालुकासदृशः खरः ॥ ९८ ॥

लोहपाक तीन प्रकारका होताहै उनमेंसे जो कीचके तुल्य हो वह मृदु कहाता है, जिसका रस सूखगया हो वह मध्यम कहाता है और जो वालुके सदृश हो वह खर कहावा है ॥ ९८ ॥

लोहद्रावणम् ।

देवदाल्या रसैर्भाव्यं गन्धकं दिनसप्तकम् ।
तस्य प्रवापमात्रेण लोहास्तिष्ठन्ति सूतवत् ॥ ९९ ॥

गंधकको सात दिन पर्यन्त देवदालीके फलके रसमें भावना देकर पीसलेवे और इस तपाये हुए लोहामें छोडे तो लोहा पारेके तुल्य पतला होकर ठहर जायगा ॥ ९९ ॥

तीक्ष्णवत्कान्तेऽपि क्रियाकरणात्ता (?) ।

तीक्ष्णमारणयोगेन कान्तमारणमिष्यते ।
शुद्धश्च तादृशी ज्ञेया सेवनं तु तथैव हि ॥ १०० ॥

पहले जिस रीतिसे फौलादका मारण कहागया है उसी रीतिसे कान्तसंज्ञक लोहकाभी मारण करना चाहिये, और शोधन तथा सेवन करनेकी विधिभी उसी प्रकार समझनी चाहिये ॥ १०० ॥

अल्पौषधपुटादिसिद्धभस्मन आयुःक्षयकरत्ववर्णनम् ।

अल्पौषधस्तोकपुटैर्हीनगन्धकपारदैः ।
अपक्कलोहजं चूर्णमायुःक्षयकरं परम् ॥ १०१ ॥

लोहके शोधन, मारण और पुट आदिमें जितने औषध लिखे हैं उनसे न्यून औषधोंके द्वारा यदि उक्त शोधनादि क्रियायें की गई हों तथा पुटभी कम दिये गये हों और पारा, गंधकभी जितने चाहिये उतनेसे न्यून डाले गये हों ऐसा कच्चे लोहसे उत्पन्न कच्ची भस्म आयुष्यका नाश करती है ॥ १०१ ॥

अपक्कलोहभस्मसेवनोपद्रवाः ।

षण्ढत्वकुष्ठामयमृत्युदं भवेद्धृद्रोगशूलौ कुरुतेऽश्मरीं च ।
नानारुजानां च तथा प्रकोप करोति हृल्लासमशुद्धलोहम् ॥ १०२ ॥

यह अपक्कलोहभस्म नपुंसकता, कुष्ठरोग और मृत्युको देनेवाली है, तथा हृद्रोग, शूल, पथरी, हृल्लास, और अनेक प्रकारके रोगोंकोभी उत्पन्न करती है ॥ १०२ ॥

अपक्कलोहसेवनोपद्रवशान्त्युपायः ।

मुनिरसपिष्टविडङ्ग मुनिरसलीढं चिरस्थितं घर्मे ।
द्रावयति लोहदोषान्वह्निर्नवनीतपिण्डमिव ॥ १०३ ॥

वायविडंगको अगस्तवृक्षके रसमें बारीक पीसे और उसको फिर उसी अगस्तके रसके साथ खाकर धूपमें अधिक समयतक बैठा रहे तो अग्नि जैसे माखनके पिण्डको पिघलाकर बहादेती है इसी प्रकार यह औषधभी लोहके समस्त विकारोंको पतला कर निकाल देती है ॥ १०३ ॥

अपक्कभस्मसेवनजकृम्यादिशां० ।

आरग्वधस्य मज्जाया रेचनं कीटशान्तये ।
भवेदप्यतिसारश्च पीत्वा दुग्धं तु तं जयेत् ॥ १०४ ॥
यदि लोहविकारेण उदरे शूलसंभवः ।
तदाभ्रकं विडङ्गं तु विडङ्गरससंयुतम् ।
पिबेद्वा खण्डमधुना एलाचूर्णं दिनत्रयम् ॥ १०५ ॥

यदि कच्ची भस्मके सेवनसे पेटमें कीडे पडगये हों तो अमलतासकी मज्जाको खावे उससे दस्तोंके द्वारा सब कीडे निकल जायंगे । अतिसार हो तो दूध पीकर दूर करे । और पेटमें शूल हो तो अभ्रककी भस्म तथा वायविडंगका चूर्ण

वायविडंगके रसके साथ पान करे अथवा छोटी इलायचीके चूर्णको खाँड और शहतके साथ तीन दिन पर्यन्त सेवन करे तो उदरशूल दूर होवे ॥१०४॥१०५॥

एवं लोहविधानं ते ह्यध्यायेऽस्मिन्प्रकीर्तितम् ।
सम्यग् ज्ञात्वा च कृत्वा तत्कार्यमामयनाशनम् ॥ १०६ ॥

हे वत्स ! इस प्रकार इस सत्रहवें अध्यायमें लोहके शोधन तथा मारणादिका विधान मैंने तुमसे कहा उसको अच्छे प्रकार समझ तथा सिद्ध करके रोगोंका नाश करना चाहिये ॥ १०६ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
लोहवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः ।

अथातो मण्डूरवर्णनं नामाष्टादशाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब मंडूर वर्णन नामके अठारहवें अध्यायका वर्णन करते हैं ॥

गुरुरुवाच ।

शृणु तात प्रवक्ष्यामि किट्टस्य शोधनादिकम् ।
लोहाभावे प्रयोक्तव्यं नानारोगनिवृत्तये ॥ १ ॥

हे पुत्र ! अब मैं किट्ट वा मंडूरके शोधन तथा मारणादिकी विधिको कहताहूँ, तुम सुनो । यदि लोह या लोहभस्म न मिले तो अनेक रोगोंकी निवृत्तिके लिये इस मंडूरका उपयोग करना चाहिये ॥ १ ॥

किट्टोत्पत्तिः ।

ध्मायमानमयो वह्नौ परित्यजति यन्मलम् ।
तत्किट्टसंज्ञां लभते तदनेकविधं मतम् ॥ २ ॥

अग्निमें माराहुआ लोहा जिस मलको त्यागता है उसको किट्ट वा मंडूर कहते हैं वह अनेक प्रकारका होताहै ॥ २ ॥

मुण्डादिलोहकिट्टानां पृथग्पृथग्लक्षणम् ।

ईषच्छविगुरुस्निग्धं मुण्डकिट्टं जगुर्बुधाः ।
भिन्नाञ्जनाभं यत्किट्टं विशेषाद्गुरु निर्व्रणम् ॥ ३ ॥
निष्कोटरं च विज्ञेयं तीक्ष्णकिट्टं मनीषिभिः ।

पिङ्गं रूक्षं गुरुतरं तदर्धमवकोटरम् ॥
छिन्ने च रजतच्छायं स्यात्किट्टं स्थितकान्तजम् ॥ ४ ॥

जो किट्ट या कीटी स्वल्प रंगवाली हो और भारी तथा चिकनी हो वैद्योंने उसको मुंडलोहकी कीटी कहा है। जो बारीक अञ्जनके सदृश कृष्ण रंगसे युक्त, अतिगुरु, और व्रण, तथा छिद्रोंसे रहित हो उसको तीक्ष्ण (पौलाद) लोहकी कीटी कहते हैं । जो कीटी पीले रंगवाली तथा रूखी और भारी हो, वृक्षके समान जिसमें खोंतर नहो तोडनेपर जिसका रंग चाँदीके सदृश हो उसको कान्तलोहकी कीटी जानना चाहिये ॥ ३ ॥ ४ ॥

ग्राह्यकिट्टनिर्णयः ।

अकोटरं गुरु स्निग्धं दृढं शतसमाधिकम् ।
चिरोत्थितजनस्थाने संस्थितं किट्टमाहरेत् ॥ ५ ॥

जो कीटी छिद्रोंसे रहित, भारी, चिकनी, दृढ तथा सौ वर्षसे भी अधिक समयकी हो और जिस स्थानमें बहुत कालसे जनसमुदाय न निवास करता हो ऐसे स्थानमें स्थित हो उस किट्टको लेवे ॥ ५ ॥

किट्टस्योत्तममध्यमादिनिर्णयः ।

शतोत्थमुत्तमं किट्टं मध्यं चाशीतिवार्षिकम् ।
अधमं षष्टिवर्षीयं ततो हीनं विषोपमम् ॥ ६ ॥

सौ वर्षकी कीटी उत्तम होती है, अस्सी वर्षकी कीटी मध्यम होती है, और साठ वर्षकी कीटी अधम होती है, यदि इससे भी न्यून समयकी हो तो जहरके समान जानना चाहिये ॥ ६ ॥

मण्डूरनिर्माणविधिः ।

अक्षाङ्गारैर्धमेत्किट्टं लोहजं तद्द्रवां जलैः ।
सेचयेत्ततप्तं तत्सप्तवारं पुनः पुनः ॥ ७ ॥
चूर्णयित्वा ततः क्वाथैर्द्विगुणैस्त्रिफलाभवैः ।
आलोड्य भर्जयेद्वह्नौ मण्डूरं जायते वरम् ॥ ८ ॥

मंडूर बनानेकी विधि, बहेड वृक्षके कोयलोंकी अग्निमें पुरानी कीटी अच्छे प्रकार धमावे जब उसका रंग खूब लाल होजावे तब उसे गौके मूत्रमें बुझालेवे इसी प्रकार सात बार अग्निमें तपा तपा कर गोमूत्रमें बुझावे तत्पश्चात् उस किट्टका चूर्ण करे और इस चूर्णका दुगुणा त्रिफलेका क्वाथ एक स्वच्छ मिट्टीकी हंडीमें

भरकर उसमें चूर्णको मिलादेवे, हंडीका मुख शरावेसे बन्दकर कपरमिट्टी करके जङ्गली कंडोंकी आँच देकर गजपुटमें फूँकदेवे, जब स्वांगशीतल होजावे तब हंडीसे अलग निकाललेवे तो श्रेष्ठ मंडूर बनजाता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

हंसमण्डूरविधिः ।

मण्डूरं मर्दयेच्छ्लक्ष्णं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ।
त्र्यूषणं त्रिफला मुस्ता विडङ्गं चव्यचित्रकम् ॥ ९ ॥
दार्वी ग्रन्थीदेवदारु तुल्य तुल्यं विचूर्णयेत् ।
एतन्मण्डूरतुल्यं च पाकान्ते मिश्रयेत्ततः ॥ १० ॥
भक्षयेत्कर्षमात्रन्तु जीर्णान्ते तक्रभोजनम् ।
पाण्डुशोफं हलीमं च ऊरुस्तम्भं च कामलाम् ।
अर्शांसि हन्ति नो चित्रं हंसमण्डूरकाह्वयम् ॥ ११ ॥

हंसमण्डूरके बनानेकी विधि, त्रिफलाके काढेमें मंडूरको खरलकर अठगुने गोमूत्रमें पकावे, जब वह काढा सिद्ध होजाय तब उसमें त्र्यूषण (सोंठ, मिर्च, पीपल,) त्रिफला (हरड, बहेडा, आमला,) मोथा, बायविडंग, चव्य, चित्रक, दारुहलदी, पीपलामूल और देवदारु इन औषधोंको समान भाग लेकर बारीक पीसकर मिलादेवे, और प्रतिदिन एक कर्ष (अस्सी रत्ती) प्रमाण मात्रासे सेवन करे, इसके पचजानेपर छाँछका पान करे तो पांडु, शोफ, सूजन, हलीमक, उरुस्तम्भ, कामला और बवासीरको नष्ट करताहै, इसमें आश्चर्य नहीं है ॥९-११॥

वत्स चाष्टादशाध्याये मण्डूरोऽपि प्रकीर्तितः ।
लोहवच्चानुपानादि ज्ञेयश्चस्यापि वत्सक ॥ १२ ॥

हे वत्स ! इस अठारहवें अध्यायमें मंडूर बनानेकी विधि भी कही गई । अनुपान आदि पूर्वोक्त लोहभस्मके समान ही इसके भी जानना चाहिय ॥१२॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
मण्डूरवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः ।

अथातो मिश्रकधातुवर्णनं नामैकोनविंशाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम मिश्रक (कांस्य, पित्तल आदि) धातुओंका जिसमें वर्णन है ऐसे उन्नीसवें अध्यायका वर्णन करेंगे ॥

मिश्रकधातुवर्णनहेतुः ।

मिश्रकाणां च धातूनां ह्यौषधादौ विशेषतः ।
दृश्यते न प्रयोगस्तु प्रसंगाच्च तथापि ते ॥
किञ्चिच्च वर्णयिष्यामि वत्स तत्त्वं च श्रूयताम् ॥ १ ॥

हे वत्स ! यद्यपि कांस्य पीतल आदि मिश्रक धातुओंका प्रयोग औषधादिमें विशेषरूपसे नहीं देखाजाता तोभी प्रसंगवश उनके विषयमें भी कुछ तत्त्व बर्णन करताहूँ, तुम सुनो ॥ १ ॥

कांस्यनिर्माणविधिः ।

अष्टभागेन ताम्रेण द्विभागं कुटिलं युतम् ।
एकत्र द्रावितं तत्स्यात्कांस्यं तद्भोजने शुभम् ॥ २ ॥

आठ भाग तांबेमें दो भाग राँगा डालकर किसी पात्रमें रख आंचमें पिघलावे तो कांसा बन जाता है । इस कांसेके पात्रमें भोजन करना गुणकारी होता है ॥ २ ॥

कांस्यनामादिवर्णनम् ।

ताम्रंत्रैपुजमाख्यातं कांस्यं घोषं च कंसकम् ।
उपधातुर्भवेत्कांस्यं द्वयोस्तरणिरंगयोः ॥ ३ ॥

कांसा ताँबा और राँगेकी उपधातु है क्योंकि तांबा और रांगा मिलाकर ही कांसा बनता है ताम्र त्रपुज, घोष तथा कंसक भी इसीका नाम है ॥ ३ ॥

कांस्यभेदास्तल्लक्षणानि च ।

कास्यं च द्विविधं प्रोक्तं पुष्पतैलकभेदतः ।
पुष्पं श्वेततमं तत्र तैलकं तु कफप्रदम् ।
एतयोः प्रथमं श्रेष्ठं सुसेव्यं रोगशान्तये ॥ ४ ॥

कांसा दो प्रकारका होता है पहला पुष्प है जिसको हिन्दी भाषामें फूल कहते है और दूसरा तैलक है । इन दोनोंमेंसे पुष्प जो कि सफेद होता है वही उत्तम है अतः रोगोंकी निवृत्तिके लिये वही सेवन करने योग्य है,और दूसरा तैलक नामक कांसा कफको पैदा करता है इस हेतु श्रेष्ठ नहीं ॥ ४ ॥

श्रेष्ठकांस्यपरीक्षा ।

श्वेतं दीप्तं मृदुज्योतिः शब्दाढ्यं स्निग्धनिर्मलम् ।
घनाङ्गसहसूत्राङ्गं कांस्यमुत्तममीरितम् ॥ ५ ॥

जो कांसा सफेद, चमकदार, नरम, उज्ज्वल, शब्दयुक्त, स्निग्ध, मलरहित, घनकी चोटोंका सहनेवाला और लकीरोंसे युक्त हो वह श्रेष्ठ कहागया है ॥ ५ ॥

पित्तलोत्पत्त्यादिकथनम् ।

रीतिर्हि चोपधातुः स्यात्ताम्रस्य यशदस्य च ।
पित्तलस्य गुणा ज्ञेयाः स्वयोनिसदृशा बुधैः ॥ ६ ॥

पीतल ताँबा और जस्तेकी उपधातु है, (क्योंकि ताँबा और जस्तासे मिलाकर ही पीतल बनाई जाती है) इसके गुण ताँबा और जस्ताके सदृश ही समझना चाहिये ॥ ६ ॥

पित्तलभेदाः ।

रीतिका द्विविधा प्रोक्ता तत्राद्या राजरीतिका ।
काकतुण्डी द्वितीया सा तयोराद्या गुणाधिका ॥ ७ ॥

पीतल दो तरहकी होती है, राजरीतिका और काकतुंडी । इन दोनोंमेंसे राजरीतिका नामक पीतल गुणोंमें अधिक है ॥ ७ ॥

पित्तलपरीक्षा ।

संतप्ता कांजिके क्षिप्ता ताम्रा स्याद्राजरीतिका ।
काकतुण्डी तु कृष्णा स्यान्नासौ सेव्या हि रीतिका ॥ ८ ॥

अग्निकी आँचमें पीतलके तपाकर कांजीमें बुझानेसे यदि तांबेके तुल्य रंग निकले तो उसे राजरीति समझना चाहिये । और यदि काला रंग निकले तो उसको काकतुण्डी जानना चाहिये यह सेवन करने योग्य नहीं है ॥ ८ ॥

श्रेष्ठपित्तललक्षणम् ।

गुर्वी मृद्वी च पीताभा साराङ्गा ताडनक्षमा ।
सुस्निग्धा मसृणाङ्गी च रीतिरेतादृशी शुभा ॥ ९ ॥

जो पीतल, भारी, नरम, पीले रंगवाली, सारांगी घनकी चोट सहनेवाली, चिकनी और मसृणांगी हो वह श्रेष्ठ होती है ॥ ९ ॥

अधमपित्तललक्षणम् ।

पाण्डुपीता खरा रूक्षा बर्बरी ताडनेऽक्षमा ।
पूतिगन्धा तथा लघ्वी रीतिर्नेष्टा रसादिषु ॥ १० ॥

जो पीतल कुछेक पीली, खरदरी, रूखी, बर्बरी, घनकी चोटोंको न सहसकनेवाली, दुर्गन्धित और हलकी हो वह रसादिकोमें इष्ट नहीं है ॥ १० ॥

पित्तलशोधनप्रकारः ।

त्रिक्षारैः पञ्चलवणैः सप्तधाम्लेन भावयेत् ।
रीतिकाशुद्धपत्राणि तेन कल्केन लेपयेत् ॥
रुद्ध्वा गजपुटे पक्त्वा शुद्धिमायाति नान्यथा ॥ ११ ॥

सज्जीखार, जवाखार, सुहागा, पाँचों नमक इनको अम्लद्रव्यकी सात २ भावना देकर पीतलके शुद्ध पत्रोंपर लेपकरे और शराबसंपुटमें रख गजपुटमें पकावे तौ पीतल शुद्ध होजाती है ॥ ११ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

रीतिकाशुद्धपत्राणि सिन्दुवाररसेऽथवा ।
निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि पथ्याचूर्णयुते भिषक् ॥ १२ ॥

दूसरा प्रकार,-अथवा पीतलके शुद्ध तथा तपाये हुए पत्रोंको छोटी हरडके चूर्णसे युक्त सम्हालूके रसमें बुझावे तो वह शुद्ध होजाते हैं ॥ १२ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

अम्लवर्गोक्तक्वाथे च पाचयेद्विधिवद्भिषक् ।
पत्तलीकृतपत्राणि शुद्धिमायान्ति निश्चितम् ॥ १३ ॥

तीसरा प्रकार,-पीतलके बारीक पत्रोंको अम्लवर्गोक्त औषधियोंके काढेमें वैद्य पकावे तो निस्सन्देह वे शुद्ध होजाते हैं ॥ १३ ॥

कांस्यरीत्योः शोधनविधिः ।

कांस्यरीत्योश्च पत्राणि वह्नौ संतापयेन्मुहुः ।
निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च कांजिके ॥
गोमूत्रे च कुलत्थानां क्वाथे वै सप्तधा पुनः ॥ १४ ॥

कांसी और पीतलके बारीक पत्रोंको अग्निमें तपाके और उन तप्त पत्रोंको सात सात वार तैल, छाँछ, कांजी, गोमूत्र और कुलत्थीके काढेमें बुझावे तो शुद्ध होजाते हैं ॥ १४ ॥

कांस्यशोधनप्रकारः ।

गोमूत्रेण पचेद्यामं कांस्यपत्राणि बुद्धिमान् ।
दृढाग्निना विशुध्यन्ति पक्वान्यम्लद्रवेऽपि वा ॥ १५ ॥

बुद्धिमान् वैद्य एक प्रहर तक गोमूत्रमें अथवा अम्लवर्गके काढेमें कांसेके पत्रोंको तेज आँचसे पकावे तो शुद्ध होजाते हैं ॥ १५ ॥

रीतिकांस्यमारणविधिः ।

रीतिकांस्यसमांशं तु ग्राह्यं गन्धकतालकम् ।
अर्कदुग्धे च संमर्द्य तत्पत्रेषु च लेपयेत् ।
शरावसंपुटे कृत्वा पचेद्गजपुटे द्विधा ॥ १६ ॥

कांसे और पीतलकी बराबर गंधक और हरिताल लेकर आकके दूधमें खरल करके कांसे वा पीतलके बारीक पत्रोंपर लेपकरे तत्पश्चात् उन पत्रोंको शरावसंपुटमें रखकर गजपुटमें पकावे । इसी प्रकार सब क्रिया करके एकबार और गजपुटमें पकावे तो वे पत्र शुद्ध होजाते हैं ॥ १६ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

अर्कक्षीरं वटक्षीरं निर्गुण्डीक्षीरकं तथा ।
ताम्ररीतिध्वनिवधे समगन्धकयोगतः ॥ १७ ॥

द्वितीय प्रकार-ताँबा, पीतल, कांसा इनमेंसे जिसकी भस्म बनाना अभीष्ट हो उसीकी बराबर गंधक लेकर आक, बडके दूध तथा सम्हालूके रसमें खरल करे पश्चात् ताँबा आदिके बारीक पत्रोंपर लेपकरके विधिपूर्वक गजपुटमें फूँकदेवे॥१७॥

तृतीयः प्रकारः ।

कांस्यकं राजरीतिं च ताम्रवच्छोधयेद्भिषक् ।
ताम्रवन्मारणं चापि तयोर्ज्ञेयं भिषग्वरैः ॥ १८ ॥

तीसरा प्रकार,-ताँबाके शोधन तथा मारणकी जो विधि पहले कहचुके हैं उसी विधिसे कांसा और पीतलका भी शोधन तथा समझना चाहिये ॥ १८ ॥

कांस्यपित्तलविद्धभस्मविधिः ।

आरं तारं समं कृत्वा मृतवंगं नियोजयेत् ।
एषा राजवती विद्या पिता पुत्र न भाषते ॥ १९ ॥

यदि कांसा और पीतलकी वेधी भस्म बनाना हो तो पीतल और चाँदीको समान भाग लेकर पिघलावे तत्पश्चात् उसीमें वंगभस्म मिलादेवे तो चाँदी होजाती है। यह चाँदी बनानेकी विद्या पिता पुत्रसे नहीं कहता ॥ १९ ॥

पित्तलभस्मगुणाः ।

सकलमेहमरुद्गुदजांकुरं ग्रहणिकाकफपाण्डुभवं तथा ।
श्वसनकामलशूलभवां रुजं हरति भस्म तदाकरसंभवम् ॥ २० ॥

विधि पूर्वक बनाई हुई पीतलकी भस्म समस्त प्रमेह, वातरोग, बवासीर, संग्रहणी कफरोग, पाण्डुरोग, श्वास, खाँसी, कामला और शूलरोगको दूर करती है ॥२० ॥

कांस्यभस्मगुणाः ।

कांस्यं कषायं तिक्तोष्णं लेखनं विशदं खरम् ।
गुरु नेत्रहितं रूक्षं कफपित्तहरं परम् ॥ २१ ॥

कांसेकी भस्म स्वादमें कसेली और कडवी है, गरम है, लेखन तथा निर्मल है, खर और भारी है, नेत्रोंके लिय हित करती है, रूखी है, कफ और पित्तको नाश करनेवाली है ॥ २१ ॥

पित्तलदोषाः ।

विविधरोगचयं कुरुते भ्रमं गुदरुजं ह्यतिमेहरुजां गणम् ।
विविधतापकमातनुते तनावमृतमारकमाशु हि मृत्युदम् ॥ २२ ॥

पीतलकी भस्म यदि ठीक २ न पकी हो अर्थात् कची रहगई हो तो वह बहुत तरहके रोग, भ्रम, बवासीर, प्रमेह और देहमें अनेक प्रकारके ताप उत्पन्न करती है। यदि पीतलका मारण ही न किया गया हो तो वह तत्काल ही प्राणोंको हरती है ॥ २२ ॥

भर्ताख्यधातूत्पत्तिः ।

कास्यं रीतिस्तथा ताम्रं नागं वंगं च पञ्चमम् ।
एकत्र द्रावितैरेतैः पञ्चलोहः प्रजायते ॥ २३ ॥

कांसा, पीतल, ताँबा, सीसा, राँगा इन पांच प्रकारके धातुओंको किसी पात्रमें रख पिघलानेसे जो एक प्रकारका मिश्रित धातु बनाता है उसीको पंच-लोह, भर्त और उपरस भी कहते हैं ॥ २३ ॥

पञ्चलोहशोधनम् ।

आदौ तैलादिके शोध्यं पश्चात्तप्तं च मूत्रके ।
निषिक्तं शुद्धिमायाति पञ्चलोहं न संशयः ॥ २४ ॥

पंचलोहके बारीक पत्रोंको अग्निमें अच्छे प्रकार तपाय पहले तैलादिकमें शुद्ध करै और फिर मूत्रवर्गमें शुद्ध करै तो वे निस्सन्देह शुद्ध होजाते हैं ॥ २४ ॥

पञ्चलोहमारणम् ।

अर्कक्षीरेण संपिष्टं गन्धितालविलेपितम् ।
पञ्चकुम्भीपुटे भर्तं म्रियते योगवाहकम् ॥ २५ ॥

गंधक और हरिताल दोनोंको समान भाग लेकर आकके दूधमें अच्छे प्रकार घोटे पश्चात् पंचलोहके बारीक पत्रोंपर लेपकर शरावसंपुटमें रख गजपुटकी आँचमें फूँक देवे तो योगवाहक भर्तकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ २५ ॥

वर्ताख्यलोहोत्पत्तिः ।

यत्कांस्यरीतिलोहादिजातं तद्वर्तलोहकम् ॥ २६ ॥

कांसा, पीतल, लोहा इनको एकमें मिलाकर गलानेसे जो एक प्रकारकी धातु बनती है उसको वर्त कहते हैं (वर्तका शोधन और मारण पूर्वोक्त भर्तके समान ही जानना चाहिये) ॥ २६ ॥

मित्रपंचकयोगस्तत्प्रयोजनं च ।

घृतमधुगुग्गुलगुञ्जाटंकणमेतत्तु पञ्चकं मित्रम् ।
जीवयति सप्तधातूनङ्गाराग्नौ तु धमनेन ॥ २७ ॥

घी, शहद, गूगल, घूँघची, सुहागा इनकी मित्रपञ्चक संज्ञा है । धातुभस्म कच्ची है वा पक्की है, इसका निर्णय इसी मित्रपञ्चकसे होजाता है । विधि यह है कि-मित्रपंचकोक्त औषधियोंको धातुभस्ममें मिलाकर घरियामें रख कोयलोंकी अग्निमें धरे और धोंकनीसे धोंके यदि वह भस्म कच्ची होगी तो जी उठेगी ॥२७॥

धातुभस्मनो निरुत्थीकरणम् ।

गन्धकं चोत्थितं भस्म तुल्यं खल्वे विमर्दयेत् ।
दिनैकं कन्यकाद्रावै रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ।
इत्येवं सर्वलोहानां कर्तव्यं तु निरुत्थितम् ॥ २८ ॥

जो धातु भस्म कच्ची होनेके कारण पूर्वोक्त मित्रपंचकयोगसे फिर जी उठे, उस धातुभस्ममें उसीकी बराबर गंधक मिलाकर एक दिन ग्वारपाठेके रसमें खरल करके शरावसंपुटमें रख कपरमिट्टी कर गजपुटमें फूँक देवें तो निरुत्थ भस्म होती है । इसी प्रकार सोने, चाँदी आदि सब लोहोंकी निरुत्थ भस्म करनी चाहिये ॥ २८ ॥

अपक्वधातुजारणम् ।

हयनखगजदन्तं माहिषं शृङ्गमूलं
अजशशकनखं वै मेषशृङ्गं वदन्ति ।
मधुघृतगुडजातं टंकणं भेदतैलं
खलु पटुसमकांगं सर्वलोहस्य मृत्यै ॥ २९ ॥

घोडेके नख, हाथीके दाँत, भैंसके सींगकी जड, बकरी और शशाके नख, मेंढेके सींग, शहत, घृत, गुड, सुहागा, तेल और नमक इन सबको समान भाग लेकर कच्ची भस्ममें मिलावे पश्चात् खरलमें डालकर घोटे और शरावसंपुटमें रख गजपुटमें पकावे तो सम्पूर्ण लोहोंकी कच्ची भस्म मृत्युको प्राप्त होती है ॥ २९ ॥

सप्तधातुभस्मपरीक्षा ।

स्वर्णं कपोतकंठाभमारमेवं सदा भवेत् ।
शुल्वं मयूरकंठाभं तारवंगौ समुज्ज्वलौ ॥ ३० ॥
कृष्णसर्पनिभं नागं तीक्ष्णं कज्जलसन्निभम् ।
तदा शुद्धं विजानीयाद्वान्तिभ्रान्तिविवर्जितम् ॥ ३१ ॥

सुवर्ण और पीतलकी भस्म कबूतरके कंठके तुल्य रंगसे होती है, ताँबेकी भस्म मोरकंठके तुल्य नीले रंगसे युक्त होती है, चाँदी और राँगेकी भस्म सफेद रंगकी होती है, सीसेकी भस्म काले सर्पके तुल्य रंगवाली होती है, लोहेकी भस्म काजलके तुल्य काले रंगसे युक्त होती है यदि सब भस्म पूर्वोक्त अपने २ रंगसे युक्त हों तो शुद्ध जानना चाहिये अन्यथा नहीं यह शुद्ध भस्म वांति और भ्रांतिदोषसे रहित होती हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥

भस्मसेवनमात्राकथनप्रतिज्ञा ।

सेवनस्य प्रमाणं तु कथयिष्यामि साम्प्रतम् ।
स्वर्णादिसर्वधातूनां यथावच्छृणु वत्स भोः॥ ३२ ॥

हे वत्स ! अब मैं सुवर्ण आदि सब धातुओंके भस्म सेवन करनेकी मात्रा यथायोग्य कहताहूँ तुम सुनो ॥ ३२ ॥

भस्मसेवनमात्रा ।

वल्लार्द्धं कनकं हि सुप्रकथितं रूप्यं च शुल्वं तथा
तीक्ष्णं वंगभुजंगमारनिचयो वल्लार्द्धवल्लोन्मितः॥

तत्तुल्या शुभपिप्पली निगदिता क्षौद्रं च कर्षोन्मितं
सेव्यं संपरिहृत्य ग्रीष्मशरदौ ताम्रं सुसेव्यं नरैः ॥ ३३ ॥

सोने, चाँदी और ताँबेकी भस्म डेढ रत्ती सेवन करना चाहिये । तथा लोहा, राँगा, सीसा और पीतल इनकी भस्म तीन वा डेढ रत्ती सेवन करे, पूर्वोक्त भस्मोंमेंसे जिस भस्मका सेवन करे उसीके बराबर पीपल मिलावे और एक तोला शहदके साथ नित्य सेवन करे । परन्तु ताँबेकी भस्मका सेवन ग्रीष्म तथा शरद ऋतुको छोडकर अन्यऋतुओंमें करना चाहिये ॥ ३३ ॥

धातुभिरेव धातुमारणम् ।

तालेन वंगं दरदेन तीक्ष्णं नागेन हेमं शिलया च नागम् ।
शुल्वं तथा गन्धवरेण नित्यं तारं च माक्षीकवरेण हन्यात् ॥ ३४ ॥

धातुओंसेही धातुओंका मारण कहते हैं । वंगको हारितालसे, लोहेको शिंगरफसे, सुवर्णको सीसेसे, सीसेको मनशिलसे, ताँबेको गंधकसे, चांदीको रूपामक्खीसे मारना चाहिये, धातुसे मारेहुए धातु श्रेष्ठ होते हैं ॥ ३४ ॥

सप्तधातुद्रावणोपायः ।

पीतमण्डूकगर्भे तु चूर्णितं टंकणं क्षिपेत् ।
रुद्ध्वा भाण्डे क्षिपेद्भूमौ त्रिसप्ताहात्समुद्धरेत् ॥ ३५ ॥
तत्समस्तं विचूर्ण्याथ द्रुते लोहे प्रवापयेत् ।
तिष्ठन्ति रसरूपाणि सर्वलोहानि नान्यथा ॥ ३६ ॥

अब सप्तधातुओंके द्रावण उपाय कहते हैं । पीले मेंढकके पेटमें यत्नसे सुहागेका चूर्ण भरकर किसी मिट्टीके पात्रमें उसको रक्खे और पात्रका मुख बंदकर कपरमिट्टी करके जमीनमें गाड देवे, इक्कीस दिनके अनन्तर निकालकर चूर्ण करलेवे, और गलायेहुए किसी लोहेमें इसको छोडे तो वह लोहरसके तुल्य पतले होकर स्थित रहते हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

तीक्ष्णचूर्णन्तु सप्ताहं पक्वधात्रीफलद्रवैः ।
लोलितं भावयेद्धर्मे क्षीरकन्दद्रवैः पुनः ॥ ३७ ॥
सप्ताहं भावितं सम्यक् स्रावसंपुटके ततः ।
धमितं द्रवतां याति चिरं तिष्ठति सूतवत् ॥ ३८ ॥

दूसरा प्रकार,--पके हुए आमलोंके रसमें सात दिन तक लोहचूर्णको भिगोकर धूपमें रक्खे तत्पश्चात् सात दिन क्षीरकंदके रसमें भिगोकर धूपमें रक्खे और इसको मूसेमें रखकर अग्निमें धमावे तो लोह द्रवताको प्राप्त होताहै और वह पारेके तुल्य बहुत दिन तक उसी रूपसे स्थित रहता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अशुद्धस्वर्णादिधातुदोषाः ।

स्वर्णं सम्यगशोधितं श्रमकरं स्वेदावहं दुःसहं
रौप्यं जाठरजाड्यमांद्यजननं ताम्रं वमिभ्रान्तिदम् ।
नागं च त्रपु चाङ्गदोषदमथो गुल्मादिदोषप्रदं
तीक्ष्णं शूलकरं तु कान्तमुदितं कार्श्यामयस्फोटदम् ॥ ३९ ॥

अच्छे प्रकार शुद्ध नहीं किया हुआ सोना श्रम, स्वेद और दुःखका करनेवाला होताहै, अशुद्ध चांदी उदरको जकडती और जठराग्निको मन्द करती है, अशुद्ध ताँबा वमन तथा भ्रांतिको पैदा करता है अशुद्ध सीसा और राँगा अङ्गोंमें दोषोंको उत्पन्न करता है तथा गुल्म आदि दोषोंकोभी पैदा करता है, अशुद्ध पौलाद लोहा शूलको उत्पन्न करता है, अशुद्ध कांत लोहा कृशताका रोग और विस्फोटकको उत्पन्न करता है ॥ ३९ ॥

अशुद्धमुण्डादिलोहदोषाः ।

शुद्धौ न तौ स्याद्यदि मुण्डतीक्ष्णौ क्षुधापहौ गौरवगुल्मदायकौ ।
कान्तायसं क्लेदकतापकारकं रीत्यौ च संमोहनक्लेशदायिके ॥ ४० ॥

यदि मुंड और तीक्ष्ण लोहा शुद्ध न किये गये हों तो क्षुधाको नष्ट करते हैं, जडता और गुल्मरोगको उत्पन्न करते हैं, अशुद्ध कांतलोह क्लेद और तापको पैदा करता है, यदि पीतल और कांसे अशुद्ध हों तो मोह तथा दुःखको पैदा करते हैं ॥ ४० ॥

यथावदुपचारयुक्तसद्वैद्यप्रशंसा ।

इति कथितपथे यो मारयेदष्टलोहं प्रकृतिपुरुषभेदं देशकालौ विदित्वा ।
उपचरति रुजार्तं धर्ममूर्तिर्यशोर्थी स भवति नृपगेहे देववत्पूजनीयः॥ ४१ ॥

जो धर्ममूर्ति और यशकी अभिलाषा करनेवाले श्रेष्ठ वैद्य प्रकृति और पुरुषोंके भेद तथा देश कालकी व्यवस्थाको अच्छे प्रकार जानकर पहले जिस प्रकार लोहोंके मारनेकी रीतियाँ कही गई हैं उसी रीतिसे आठ प्रकारके लोहोंकी मारण करता और रोगोंसे दुःखित मनुष्यकी चिकित्सा करता है वह राजसभामें देवताओंके समान पूजनीय होताहै ॥ ४१ ॥

सोऽयं ते ह्यष्टलोहानां प्रकारः क्रमशोऽनघ ।
वर्णितश्चाष्टभिस्तात ह्यध्यायैः शास्त्रसंमतैः ॥ ४२ ॥
अथ चैकोनविंशे तु वाणता मिश्रका ह्यपि ।

हे अनघ तात! मैंने शास्त्रसंमत आठ अध्यायोंमें आठ प्रकारके लोहोंके शोधन तथा मारणादिका प्रकार तुमसे क्रमपूर्वक वर्णन किया तत्पश्चात् इस उन्नीसवें अध्यायमें मिश्रक धातु भी वर्णन किये गये ॥ ४२ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
मिश्रकधातुवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः ।

अथातः स्वर्णमाक्षिकाद्युपधातुवर्णनं नाम विंशाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम सोनामक्खी आदि उपधातुओंके वर्णनसे युक्त बीसवें अध्यायको कहेंगे ॥

शिष्य उवाच ।

धातूनां वर्णनं नाथ यथावद्धि श्रुतं मया ।
अधुना कृपया ब्रूहि ह्यथ के चोपधातवः ।
कस्मिन्कर्मणि ते योज्याः कथं तेषां च संस्कृतिः ॥ १ ॥

शिष्यने कहा कि, हे गुरो ! स्वर्णादि धातुओंका वर्णन तो यथायोग्य मैंने सुना अब आप कृपा करके उपधातु कौनस हैं तथा किस काममें उनको उपयोग किया जाता है और उनके संस्कार आदि किस प्रकार किये जाते हैं यह सब वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

सप्तोपधातुवर्णनम् ।

माक्षिकं तुत्थकाभ्रौ च नीलांजनशिलालका ।
रसकश्चेति विज्ञेया एते सप्तोपधातवः ।
विमला अष्टमं चात्र केचिद्रसविदो विदुः ॥ २ ॥

सोनामक्खी, नीलाथोथा, अभ्रक, सुरमा, मनशिल, हरताल, खपरिया यह सात उपधातु कहाते हैं कोई रसशास्त्रके ज्ञाता वैद्य आठवीं उपधातु रूपामाखी बतलाते हैं ॥ २ ॥

अन्यच्च ।

सुवर्णमाक्षिकं तद्वत्तारमाक्षिकमेव च ।
तुत्थं कांस्यं च रीतिश्च सिन्दूरं च शिलाजतु ।
एते सप्त समाख्याता विद्वद्भिरुपधातवः ॥ ३ ॥

श्रेष्ठ वैद्योंने सुवर्णमाक्षिक, तारमाक्षिक, नीलाथोथा, कांस्य, पित्तल, सिंदूर, शिलाजीत ये सात उपधातु कही हैं ॥ ३ ॥

स्वर्णमाक्षिकाद्युत्पत्तिः ।

स्वर्णजं स्वर्णमाक्षीकं तारजं तारमाक्षिकम् ।
तुत्थं ताम्रभवं ज्ञेयं कंकुष्ठं वंगसंभवम् ॥ ४ ॥
रसको यशदाज्जाता नागात्सिन्दूरसंभवः ।
लोहाज्जातं लोहकिट्टमेते सप्तोपधातवः ॥ ५ ॥

सोनामक्खी सुवर्णसे उत्पन्न होती है, रूपामक्खी चाँदीसे, नीलाथोथा ताँबेसे, कुंकुष्ठ वंगसे, खपरिया जस्तेसे, सिन्दूर सीसेसे और लोहकिट्ट लोहेसे पैदा होती है ॥ ४ ॥ ५ ॥

मुख्यधात्वभावे तदुपधातुग्रहणाज्ञा ।

अभावे मुख्यधातूनां प्रयोज्यास्तूपधातवः ।
कुर्वन्ति तद्गुणा लोके बहुयत्नेन शोधिताः ॥ ६ ॥

मुख्य सुवर्ण आदि धातुओंके अभावमें उनके उपधातुओंका उपयोग करना चाहिये क्योंकि बडे यत्नेस शुद्ध किये हुए सोनामक्खी आदि उपधातु भी मुख्य सुवर्णादि धातुओंके समान ही गुण करते हैं ॥ ६ ॥

अन्यच्च ।

स्वर्णाभावे मृतं ताप्यं ततोऽपि स्वर्णगैरिकम् ।
रूप्यादीनामलाभे तु प्रक्षिपेद्विमलादिकम् ॥ ७ ॥

सोनेके न मिलने पर मृत सोनामक्खी लेनी चाहिये और यदि सोनामक्खी भी न मिले तो सोनागेरू लेना योग्य है तथा चाँदी आदिके न प्राप्त होनेपर रूपामक्खी आदिका प्रक्षेप करे ॥ ७ ॥

उपधातुशोधनम् ।

त्रिकट्वर्के वरार्के च क्रमेण रविभावनाः ।
कर्तव्याश्चोपधातूनां पूर्वं दोषापनुत्तये ॥ ८ ॥

सोनामक्खी आदि सब उपधातुओंके दोषोंके दूर करनेके लिये त्रिकुटु अर्थात् सोंठ, मिर्च, पीपल और त्रिफलाके रसकी बारह बारह भावना देवे तो वे शुद्ध होजाते हैं ॥ ८ ॥

उपधातुमारणम् ।

पादांशं सैन्धवं दत्त्वा तूपधातन्विमर्दयेत् ।
दशधा चाम्लवर्गेण कटाहे लोहसंभवे ॥ ९ ॥
घर्षयेल्लोहदण्डेन प्रत्येकं च मुहूर्तकम् ।
यथा सिन्दूरवर्णत्वं धातूनां जायते ध्रुवम् ॥ १० ॥

सोनामक्खी आदि उपधातुओंका चौथाई भाग उसमें सेंधानमक मिलाकर खरल करे तत्पश्चात् लोहकी कडाहीमें डालकर अम्लवर्गोक्त औषधियोंकी दश भावना देवे और लोहेके मूसलेसे घोटता जाय, प्रत्येक औषधको दो २ घडी घोटे । यदि इस उक्त क्रियासे उपधातुओंकी भस्म बनावे तो सिन्दूरके तुल्य रंगवाली होती है ॥ ९ ॥ १० ॥

स्वर्णमाक्षिकोत्पत्तिः ।

कृष्णस्तु भारतं कृत्वा योगनिद्रामुपागतः ।
तस्य पादतलं विद्धं व्याधेन मृगशङ्कया ॥ ११ ॥
ये तत्र पतिता भूमौ क्षताद्रुधिरबिन्दवः ।
तेभ्यो निम्बफलाकारा जाता माक्षिकगोलकाः ॥ १२ ॥

जिस समय श्रीकृष्ण भगवान् भारत युद्ध कराकर योगकी नींदमें प्राप्त हुए उस समय किसी व्याधने मृगकी शंकासे श्रीकृष्ण भगवान्का पादतल बाणसे बेधा और उस चरणके घावसे जो पृथ्वीमें रक्तकी बूँदे गिरीं उन बूंदोंसे निम्बफलके समान आकृतिवाली गोल सोनामक्खी धातु उत्पन्न हुई ॥ ११-१२ ॥

अन्यच्च ।

सुवर्णशैलप्रभवो विष्णुना कांचनो रसः ।
तापीकिरातचीनेषु यवनेषु च निर्मितः ॥ १३ ॥
ताप्यः सूर्यांशुसंतप्तो माधवे मासि दृश्यते ।
मधुरः कांचनाभासः साम्लो रजतसन्निभः ॥ १४ ॥

किञ्चित्कषाय उभयः शीतपाको कटुर्लघुः ।
तत्सेवनाज्जराव्याधिविषैर्न परिभूयते ॥ १५ ॥

विष्णु भगवान्ने सोनेके पहाडसे पैदा हुए कांचनरसको तापी, किरातदेश, चीनदेश और यवनोंके देशमें निर्माण किया, वैशाख मासमें सूर्यकी किरणोंसे तप्त होकर वह तापी देशमें होनेवाला ताप्यमाक्षिक दिखलाई देता है, यह ताप्यमाक्षिक स्वादमें मधुर है, सोनेकीसी कान्तिसे युक्त है। रूपामक्खी स्वादमें खट्टी है और चांदीके सदृश कान्तिवाली है पूर्वोक्त सोनामाखी और रूपामाखी दोनों कुछ कषेली, शीतल, कटु और हलकी हैं, यदि विधिपूर्वक इनका सेवन करे तो वृद्धावस्था, व्याधि तथा विषदोषसे मनुष्य पीडित नहीं होता ॥ १३-१५॥

स्वर्णमाक्षिकनामानि तन्निरुक्तिश्च ।

स्वणमाक्षिकमाख्यातं तापीजं मधुमाक्षिकम् ।
ताप्यं माक्षिकधातुश्च माक्षिकं चापि तन्मतम् ॥ १६ ॥
किञ्चित्सुवर्णसाहित्यात्स्वर्णमाक्षिकमीरितम् ।
उपधातुः सुवर्णस्य किञ्चित्स्वर्णगुणैः समम् ॥ १७ ॥

स्वर्णमाक्षिक, तापीज, मधुमाक्षिक, ताप्य, माक्षिकधातु और माक्षिक यह सब सोनामाखीहीके नाम हैं यह कुछेक सोनेके तुल्य होनेसे सोनामाखी कही जाती है और सुवर्णकी उपधातु है, इसी कारण कुछ सुवर्णके समान गुणोंसे युक्त है ॥ १६ ॥ १७ ॥

माक्षिके न तन्मुख्यधातुगुणा एव किन्त्वन्येपीत्यादि वर्णयति ।

न केवल स्वर्णगुणा वर्तन्ते स्वर्णमाक्षिके ।
द्रव्यान्तरस्य संसर्गात्सन्त्यन्येऽपि गुणा यतः ॥ १८ ॥
किन्तु तस्यानुकल्पत्वात्केचिदूना गुणाः स्मृताः ।
तथापि कांचनाभावे दीयते स्वर्णमाक्षिकम् ॥ १९ ॥
तपतीतीरजातत्वादित्येवं तद्द्वितीयकम् ।
कान्यकुब्जोद्भवं ताप्यं विज्ञेयं स्वर्णवर्णकम् ।
तपतीतीरगं तत्तु पञ्चवर्णमुदाहृतम् ॥ २० ॥

सोनामाखीमें केवल सोनेकेही सदृश गुण नहीं हैं किन्तु अन्य द्रव्योंके संबंधसे उसमें सुवर्णसे इतर गुणभी विद्यमान हैं यद्यपि सोनेके अनुकल्प होनेसे

सोनामाखीमें कुछ गुण कम हैं, तथापि सुवर्णके न मिलनेपर स्वर्णमाक्षिकही दी जाती है। यह स्वर्णमाक्षिक तपती नदीके किनारे उत्पन्न होताहै और दूसरा कन्याकुमारीके निकट पैदा होताहै इसका रंग सोनेके रंगके समान होता है और तापी नदीके तीरका माक्षिक पंचवर्ण होता है ॥ १८-२० ॥

माक्षिकभेदौ तदुत्पत्त्यादिवर्णनं च।

माक्षिकं द्विविधं हेममाक्षिकं तारमाक्षिकम्।
तत्राद्यं माक्षिकं कान्यकुब्जोत्थं स्वर्णसन्निभम्।
तपतीतीरसंभूतं पञ्चवर्णं सुवर्णवत् ॥ २१ ॥

माक्षिकके दो भेद हैं, पहला स्वर्णमाक्षिक और दूसरा तारमाक्षिक इन दोनों-मेंसे स्वर्णमाक्षिक कान्यकुब्जमें उत्पन्न होता है और वह सोनेके तुल्य होता है तथा तपतीनदीके किनारे उत्पन्न होनेवाला स्वर्णमाक्षिक पांच वर्णका सुवर्णके समान होताहै ॥ २१ ॥

स्वर्णमाक्षिकलक्षणम्।

स्वर्णाभं स्वर्णमाक्षीकं निष्कोणं गुरुतायुतम्।
कृष्णतां विकिरेत्तत्तु करे घृष्टं न संशयः ॥ २२ ॥

सोनामाखी सुवर्णके तुल्य कान्तिवाली होती है, उसमें कोने नहीं होते, भारी होती है और हाथमें घिसी हुई निस्संदेह स्याही देती है ॥ २२ ॥

मारणार्हहेममाक्षिकलक्षणम्।

स्वर्णवर्णं गुरु स्निग्धमीषन्नीलच्छविच्छटम्।
कषे कनकवद्धृष्टं तद्धितं हेममाक्षिकम् ॥
पाषाणबहुलं प्रोक्तं ताराख्यं च गुणाल्पकम् ॥ २३ ॥

जो सुवर्णके समान रंगसे युक्त हो, भारी हो, चिकना हो, नीलछविवाला हो और कसौटीपर घिसनेसे सुवर्णके तुल्य झलक देवे उसको हेममाक्षिक कहते हैं जिस रूपामाखीमें बहुतसे पत्थरके टुकडे हों उसको श्रेष्ठ वैद्योंने अल्पगुण-वाला कहा है ॥ २३ ॥

अन्यच्च।

माक्षिकं द्विविधं तत्र पीतशुक्लविभागतः।
चतुर्द्धाकरसंस्थानाद्विज्ञेयं क्षेत्रभेदतः ॥ २४ ॥

कदम्बगोलकाकारं शुक्तिकापुटसन्निभम् ।
तथाङ्गुलीयकाकारं भस्मकर्तरिका समम् ॥ २५ ॥
तारमाक्षीकविमले सुपीतं च सुलोहितम् ।
सुवर्णमाक्षिकं तेषु प्रवरं सप्तवर्णकम् ॥ २६ ॥
तद्वद्रजतवर्णं च हीनं शुक्तिपुटादिकम् ।
गुणतश्च सुवर्णेन प्रवरं परिकीर्तितम् ॥ २७ ॥

माक्षिक दो प्रकारका होता है एक पीले रंगका और दूसरा सफेद रंगका, और वही आकर अर्थात् खान और क्षेत्रके भेदसे चार प्रकारका होता है, इनमेंसे पहला कदम्बपुष्पके तुल्य गोल होता है, दूसरा मोतीकी सीपीके सदृश होताहै, तीसरा अँगूठीके आकार और चौथा भस्म तथा कतरनीके तुल्य होता है, इन पूर्वोक्त भेदोंके सुवर्णमाक्षिक, विमल, सुपीत, सुलोहित ये चार नाम हैं, उनमेंसे सुवर्ण-माक्षिक सात वर्णका श्रेष्ठ होता है, और चाँदीके समान वर्णवाला भी माक्षिक उत्तम है, जो सीपीके समान है उसको अधम जानना चाहिये, गुणमें तथा सोनेसे उत्पन्न होनेसे सोनामाखी उत्तम होती है ॥ २४-२७ ॥

माक्षिकशोधनम् ।

काञ्जिके निम्बुगोमूत्रे जयन्त्याः स्वरसे भिषक् ।
सुवर्णमाक्षिकं चैव तारमाक्षिकमेव च ॥ २८ ॥
बद्ध्वा गाढाम्बरे सम्यग्दोलायन्त्रे त्र्यहं पचेत् ।
शुध्यते नात्र सन्देहः सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ २९ ॥

सोनामाखी वा रूपामाखी इन दोनोंमेंसे जिसको शुद्ध करना हो उसको किसी स्वच्छ गाढे कपडेमें बाँधकर पोटली बनालेवे, तत्पश्चात् कांजी, निंबू, गोमूत्र और अरणीके रसमें दोलायन्त्रके द्वारा विधिपूर्वक तीन दिन तक स्वेदन करे तो निस्सन्देह शुद्ध होजाती है । इस शुद्ध की हुई माक्षिकका सब योगोंमें योग करे ॥ २८ ॥ २९ ॥

माक्षिकमारणविधिः ।

तैलेनैरण्डजेनादौ याममात्रं विमर्दयेत् ।
सच्छिद्रे संपुटे धृत्वा पचेत्त्रिंशद्वनोपलैः ॥ ३० ॥

देवदाली हंसपदी वटार्कं च स्नुहीपयः ।
पुनर्मर्द्यं पुनः पाच्यं भूधरे च त्रिधात्रिधा ॥
म्रियते नात्र सन्देहः सत्यं गुरुवचा यथा ॥ ३१ ॥

पूर्वोक्त रीतिसे शुद्ध की हुई सोनामाखीको बारीक पीसलेवे और उसमें थोडासा अंडीका तेल मिलाकर एक प्रहर तक घोटे तत्पश्चात् उसकी टिकिया बनाकर शरावसंपुटमें रक्खे, और शरावसंपुटके ऊपरके ढक्कनमें एक छोटासा छिद्र करदेवे । पीछे तीस जङ्गली उपलोंकी आँच देकर पकावे जब स्वांगशीतल होजावे तब अलग निकाल लेवे और देवदाली (बंदाल), हंसपदी, वडकी जटा इसके रस तथा आक और थूहरके दूधकी अलग २ सातसात[1] भावना देवे परन्तु प्रत्येक औषधकी भावना देनेके अनन्तर टिकिया बना शरावसंपुट अथवा भूधरयन्त्रमें दो सेर आरने उपलोंकी आँचमें पकालिया करे तदनन्तर अन्य भावना दियाकरे इस प्रकार सम्पूर्ण क्रिया करनेसे निस्सन्देह माक्षिकका मारण होजाता है, जैसे गुरुवचन सत्य होता है वैसे यह भी सत्य है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

एरण्डतैललुङ्गाम्बुसिद्धं शुद्ध्यति माक्षिकम् ।
सिद्धं वा कदलीकन्दतोयेन घटिकाद्वयम् ॥
तप्तं क्षिप्तं वराक्वाथे शुद्धिमायाति माक्षिकम् ॥ ३२ ॥

शुद्ध करनेका दूसरा प्रकार । सोनामाखीको अंडीके तेल और बिजौरानिम्बूके रसमें दो घडी तक पकावे तो शुद्ध हो जाती है, अथवा केलाकी जडके रसमें दो घडी पर्यन्त पकावे तो भी शुद्ध होजाती है, तथा सोनामाखीको आँचमें तपाकर त्रिफलाके काढेमें बुझानेसेभी शुद्धि होती है ॥ ३२ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

माक्षिकस्य त्रयो भागा भागैकः सैन्धवस्य च ।
मातुलुङ्गद्रवैर्वाथ जम्बीरोत्थद्रवैः पचेत् ॥ ३३ ॥
चालयेल्लोहजे पात्रे यावत्पात्रं सलोहितम् ।
भवेत्ततस्तु संशुद्धिं स्वर्णमाक्षिकमृच्छति ॥ ३४ ॥

---

१ मूलमें तीन तीन भावना देनेकी विधि है उसके विरुद्ध जो सात २ भावना लिखीगई वह वृद्धवैद्योंकी सम्मति है मेरी नहीं ॥

सोनामक्खी तीन भाग और सेंधानमक एक भाग लेकर बारीक पीसलेवे, पीछे बिजौरा अथवा जंभीरी नींबूके रसके साथ लोहेकी कडाहीमें पकावे और कलछीसे चलाताजाय, पकाते २ जब सोनामक्खी और कडाही दोनों लाल रंगसे युक्त होजावें तब स्वर्णमाक्षिकको शुद्धि हुई समझना ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

अगस्त्यपत्रनिर्यासैः शिग्रुमूलं सुपेषितम् ।
तन्मध्ये पुटितं शुद्धं निम्बुजाम्लेन पाचितम् ॥ ३५ ॥

सहिंजनेकी जडको अगस्त वृक्षके पत्तोंके रसमें पीसकर शरावसंपुटमें रक्खे और उसी पीसी औषधके बीचमें सोनामक्खीको रखकर गजपुटकी आँचमें पकावे, स्वांगशीतल होनेपर निकाललेवे और फिर नीम्बूके रसमें पकावे तो शुद्ध होजाती है ॥ ३५ ॥

अशुद्धस्वर्णमाक्षिकदोषाः ।

अशुद्धं माक्षिकं कुर्यादान्ध्यं कुष्ठं क्षयं कृमीन् ।
शोधनीयं प्रयत्नेन तस्मात्कनकमाक्षिकम् ॥ ३६ ॥

सोनामाखीको प्रयत्नसे शुद्ध करना चाहिये क्योंकि अशुद्ध माक्षिके अंधापना, कुष्ठरोग, क्षयी और कृमिरोगको उत्पन्न करती है ॥ ३६ ॥

अन्यच्च ।

मन्दानलत्वं बलहानिमुग्रां विष्टम्भतां नेत्रगदान्सकुष्ठान् ।
करोति मालां व्रणपूर्वकं च शुद्ध्यादिहीनं खलु माक्षिकं च ॥ ३७ ॥

शोधनादिकोंसे रहित माक्षिक, अग्निमान्द्य, बलकी हानि, अफरा, नेत्ररोग, कुष्ठरोग, कंठमाला और व्रणको पैदा करता है ॥ ३७ ॥

स्वर्णमाक्षिकमारणविधिः ।

पिष्ट्वा कुलत्थस्य कषायकेण तक्रेण वाजस्य हि मूत्रकेण ।
संचालयेद्वैद्यपतिः क्रमात्तन्मृतिं व्रजेद्वत्स सुहेममाक्षिकम् ॥ ३८ ॥

हे वत्स ! सोनामक्खीको बारीक पीसकर कुलथीके काढे, छाँछ और बकरीके मूत्रके साथ क्रमसे कडाहीमें पकावे और कलछीसे घोटता जाय तो उसकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ३८ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

मातुलुङ्गाम्बुगन्धाभ्यां पिष्टं मूषोदरे स्थितम् ।
पञ्चक्रोडपुटैर्दग्धं म्रियते माक्षिकं खलु ॥ ३९ ॥

एरण्डस्नेहगव्याद्यैर्मातुलुङ्गरसेन च ।
खर्परस्थं दृढं पक्वं जायते धातुसन्निभम् ॥ ४० ॥

दूसरा प्रकार,--बिजोरा निंबूके रस, और गंधकके साथ सोनामाखीको पीस-कर मूषामें रख पाँच वार वाराहपुटोंसे पकावे तो भस्म सिद्ध होजाती है। इस रीतिसे मृत माक्षिकको अंडीके तेल, गौके घृत और बिजौरानींबूके रसके साथ किसी स्वच्छ बडे खपडेमें अच्छे प्रकार पकावे तो वह धातुके तुल्य होजाती है, इस विधिसे मारण किये हुए माक्षिकको रस और रसायनविधिमें देना चाहिये३९-४०

तृतीयः प्रकारः ।

माक्षिकस्य चतुर्थांशं गन्धं दत्त्वा विमर्दयेत् ।
उरुबूकस्य तैलेन ततः कार्या सुचक्रिका ॥ ४१ ॥
शरावसंपुटे कृत्वा पुटेद्गजपुटेन च ।
धान्यस्य तुषमर्द्धाधो दत्त्वा शीतं समुद्धरेत् ।
सिन्दूराभं भवेद्भस्म माक्षिकस्य न संशयः ॥ ४२ ॥

तीसरा–जितनी सोनामाखी हो उसका चौथा हिस्सा गंधक मिलाकर घोटे तत्पश्चात् अंडीका तल छोडकर टिकिया बनालेवे और उसको शरावसंपुटमें रख गजपुटकी आँचमें पकावे परन्तु अन्नकी भूषी ऊपर तथा नीचे बिछायदेवे, जब स्वांगशीतल होजावे तब अलग निकाललेवे तो सिन्दूरके समान लाल स्वर्णमाक्षिककी भस्म सिद्ध होजाती है इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

तैले तक्रे गवां मूत्रे आरनाले कुलत्थके ।
शोधयेत्त्रिफलाक्षारे माक्षिकं वह्नितापितम् ॥ ४३ ॥
ततःपरं पुटे देयं कुमारीरसमर्दितम् ।
कृत्वा सुचक्रिकां शुष्कां कुक्कुटाख्ये पुटे पचेत् ।
सप्तविंशतिसंख्यास्ति ततः स्यादमृतोपमम् ॥ ४४ ॥

---

(१) अरत्निमात्रगर्ते यद्दीयते पूर्ववत्पुटम् ।
करीषाग्नौ तु तत्प्रोक्तं पुटं वाराहसंज्ञितम् ॥ १ ॥

अरत्नि (बद्धमुष्टि हाथ) प्रमाणसे गड्ढा खोदकर गजपुटादिके समान जिसमें आरने उपले भरकर अग्नि देवे उसको वाराहपुट कहते हैं ॥ १ ॥

चौथा प्रकार-, सोनामक्खीको अग्निमें तपा तपाकर तेल, छाँछ गोमूत्र, कांजी, कुलथीके क्काथमें और त्रिफलाके काढेमें बुझावे तो शुद्ध होजाती है, इस प्रकार शुद्ध की हुई सोनामक्खीको ग्वारपाठेके रसके साथ घोटकर टिकिया बना धूपमें सुखालेवे और कुक्कुटपुटमें सत्ताईस आँच देकर पकावे तो सोनामाखीकी अमृततुल्य भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

पञ्चमः प्रकारः ।

किमत्र चित्रं कदलीरसेन सुपाचितं सूरणकन्दसंपुटे ।
वातारितैलेन पुटेन ताप्यं पुटेन दग्धं वरपुष्टिमेति ॥ ४५ ॥

शुद्ध सोनामाखीका चूर्णकर सूरण (जमीकन्द) के संपुटमें रक्खे और किसी स्वच्छ खपडेमें अंडीका तेल डालकर उसको पकावे, पकाते समय लोहेकी कलछीसे चलाता जाय, इस प्रकार दो प्रहर पर्यन्त पकावे जब खूब लाल होजाय तब उतार लेवे और स्वांगशीतल होनेपर स्वर्णमाक्षिकको अलग निकाललेवे और प्रतिदिन मात्रासे, शहत और पीपलके साथ सेवन करे तो पांडु, तथा कामलादिरोग नष्ट होते हैं ॥ ४५ ॥

मृतमाक्षिकगुणाः ।

स्यान्माक्षिकं तिक्तसुदीपनं कटु दुर्नामकुष्ठामयभूतनाशनम् ।
पाण्डुप्रमेहक्षयनाशनं लघु सत्त्वं मृतं तस्य सुवर्णवद्गुणैः ॥ ४६ ॥

मरी हुई सोनामक्खी स्वादमें तीखी है, अग्निको दीपन करती है, कडवी है, और बवासीर, कुष्ठरोग, भूतव्याधि, पाण्डु, प्रमेह तथा क्षयी रोगको दूर करती है। यह हलकी है, इसका मृतसत्त्व सुवर्णके तुल्य गुण करताहै ॥ ४६ ॥

अन्यच्च ।

सुवर्णमाक्षिकं स्वादु तिक्तं वृष्यं रसायनम् ।
चक्षुष्यं वान्तिहृत्कण्ठ्यं पाण्डुमेहविषोदरम् ॥
अर्शशोफविषं कण्डूं त्रिदोषमपि नाशयेत् ॥ ४७ ॥

मरी हुई सोनामक्खी स्वादिष्ठ, कडवी, वृष्य और रसायन है, नेत्रोंके रोग, वमन, कंठरोग, पाण्डु, प्रमेह, उदररोग, बवासीर, सूजन, विषदोष, खुजली और त्रिदोषज रोगोंको दूर करती है ॥ ४७ ॥

---

(१) वितस्तिमात्रगर्ते यत्पुटयेत्तत्त कौक्कुटम् ।
एक बालिस्त प्रमाण गहरे गड्ढेमें जो पुट दी जाती है उसको कुक्कटपुट कहते हैं॥

स्वर्णमाक्षिकसत्त्वपातनविधिः ।

त्रिंशांशनागसंयुक्तं क्षारैरम्लैश्च वर्तितम् ।
ध्मातं प्रकटमूषायां सत्त्वं मुञ्चति माक्षिकम् ॥ ४८ ॥

जितना माक्षिक हो उसका तीसवाँ हिस्सा उसमें सीसा मिलावे और क्षारवर्ग तथा अम्लवर्गके सहित मूषामें रख पकावे और बंकनाल धोंकनीसे खूब धोंके तो माक्षिक सत्त्वको छोडता है ॥ ४८ ॥

माक्षिकसत्त्वमिश्रनागनाशनविधिः ।

सप्तवारं परिद्राव्यं क्षिप्तं निर्गुण्डिकारसे ।
माक्षीकसत्त्वसंमिश्रं नागं नश्यति निश्चितम् ॥ ४९ ॥

सीसा मिले हुए सोनामाखीके सत्त्वको सात बार आँचमें तपातपाकर सम्हालूके रसमें बुझावे तो सत्त्वमें मिला हुआ सीसा अवश्य नष्ट होजाता है ॥ ४९ ॥

माक्षिकसत्त्वपातनस्य द्वितीयः प्रकारः ।

क्षौद्रगन्धर्वतैलाभ्यां गोमूत्रेण घृतेन च ।
कदलीकन्दनीरेण भावितं माक्षिकं खलु ॥
मूषायां मुञ्चति ध्मातं सत्त्वं शुल्बनिभं मृदु ॥ ५० ॥

सोनामाखीमें शहद, अंडीका तेल, गोमूत्र, घृत और कदलीकंदके रसकी वारंवार भावना देवे तत्पश्चात् मूषामें रखकर बंकनाल धोंकनीसे धोंके तो ताँबेके समान लाल रंगका नरम सत्त्व निकलता है ॥ ५० ॥

माक्षिकसत्त्वस्य शुद्धाशुद्धपरीक्षा ।

गुञ्जाबीजसमच्छायं द्रुतिद्रावे च शीशवत् ।
ताप्यसत्त्वं विशुद्धं तद्देहलोहकरं परम् ॥ ५१ ॥

जिसका रंग घूँघचीके समान लाल होवे और द्रुति तथा द्रावमें सीसेके तुल्य नरम होवे ऐसे माक्षिकसत्त्वको शुद्ध समझना, यह सत्त्व शरीरको लोहेके समान दृढ करता है ॥ ५१ ॥

सत्त्वसंस्कारस्तत्सेवनविधिश्च ।

माक्षीकसत्त्वेन रसस्य पिष्टिं कृत्वा विलीने च बलिं निधाय ।
संमिश्र्य संमर्द्य च खल्वमध्ये निक्षिप्य सत्त्वद्रुतिमभ्रकस्य ॥ ५२ ॥

विधाय गोलं लवणाख्ययन्त्रे पचेद्दिनार्द्धं मृदुवह्निना च ।
स्वतः सुशीते परिचूर्ण्य सम्यग्वल्लोन्मितं व्योषविडङ्गयुक्तम् ॥ ५३ ॥
संसेवितं क्षौद्रयुतं निहन्ति जरां सरोगं त्वपमृत्युमेव ।
दुस्साध्यरोगानपि सप्तवासरैर्न तेन तुल्योस्ति सुधारसोपि ॥ ५४ ॥

माक्षिक सत्त्वके साथ पारा मिलाकर पिट्ठी बनालेवे और जब पारा अच्छे प्रकार मिलजावे तब उसमें गन्धक डालकर खरलमें घोटे और पीछे इसमें अभ्रक सत्त्वकी द्रुति डालकर फिर घोटे, और उसका गोला बनालेवे तदन्तर एक हांडीमें नमक भरकर चूल्हेपर चढाय मन्द आँचमें दो प्रहर पर्यन्त पकावे जब स्वयं शीतल होजावे तब गोलेको अलग निकाल बारीक पीसलेवे और प्रतिदिन तीन रत्तीकी मात्रासे सोंठ, मिर्च, पीपल वायविडंग और शहदके साथ सेवन करे तो बुढापा, अपमृत्यु और कष्टसाध्य रोगोंको भी सात दिनमें नाश करता है, गुणोंमें इसके समान अमृत भी नहीं है ॥ ५२-५४ ॥

माक्षिकसत्त्वद्रावणविधिः ।

एरण्डोत्थेन तैलेन गुञ्जाक्षौद्रं च टंकणम् ।
मर्दितं तस्य वापेन सत्त्वं माक्षिकजं द्रवेत् ॥ ५५ ॥

अंडीका तेल, घूंघची, गुड, शहद, सुहागा इन सबको खरल कर माक्षिक सत्त्वमें डालनेसे वह द्रवरूप होजाता है ॥ ५५ ॥

माक्षिकानुपानानि ।

अनुपानं वरा व्योषं वेल्लं साज्यं हि माक्षिकम् ॥ ५६ ॥

त्रिफला, व्योष अर्थात् सोंठ, मिर्च, पीपल, काली मिर्च मक्खन और शहद यह सब माक्षिकके अनुपान हैं ॥ ५६ ॥

अपक्वमाक्षिकदोषाः ।

अपक्वमाक्षिकेणाशु देहे संक्रमते रुजा ।
तद्दोषविनिवृत्त्यर्थमनुपानं ब्रवीम्यहम् ॥ ५७ ॥

कच्चे माक्षिकके सेवन करनेसे शरीरमें अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं इस कारण उसके दोषोंकी निवृत्तिके लिये मैं अनुपान कहता हूँ ॥ ५७ ॥

माक्षिकदोषशान्त्युपायः ।

कुलत्थस्य कषायेण माक्षीकविकृतिं जयेत् ।
दाडिमस्य त्वचा वापि प्रोक्ता विकृतिनाशिनी ॥ ५८ ॥

यदि कच्चे माक्षिकके सेवनसे शरीरमें किसी प्रकारका विकार होगया हो तो कुलथी वा अनारके वक्कलके काढेसे उस माक्षिकविकारको दूर करे ॥ ५८ ॥

अध्याये विंशतितमे प्रोक्ता माक्षिकसत्क्रियाः ।
वत्स सम्यग्विदित्वा ता रोगी रोगात्प्रमुच्यते ॥ ५९ ॥

हे वत्स ! मैंने इस बीसवें अध्यायमें सोनामाखीके शोधन तथा मारणादिकी श्रेष्ठ क्रियाओंको कहा उनको अच्छे प्रकार जानकर रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है ॥ ५९ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
स्वर्णमाक्षिकवर्णनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः ॥

गुरुरुवाच ।

अधुना श्रूयतां तात रौप्यमाक्षिकवर्णनम् ।
यत्र तारो न लभ्येत तत्रास्य योजनं मतम् ॥ १ ॥

गुरुने कहा कि, हे पुत्र ! अब तुम रूपामक्खीके शोधन तथा मारण आदिका वर्णन सुनो, जहाँ चाँदी न मिले वहां इसकी योजना करना कहा है ॥ १ ॥

तत्रादौ तारमाक्षिकोत्पत्तिः ।

तारमाक्षिकमन्यत्तु भवेत्तद्रजतोपमम् ।
किञ्चिद्रजतसाहित्यात्तारमाक्षिकमीरितम् ॥ २ ॥
अनुकल्पतया तस्य ततो हीनगुणं स्मृतम् ।
न केवलं रौप्यगुणा वर्तन्ते तारमाक्षिके ।
द्रव्यान्तरस्य संसर्गात्सन्त्यन्येपि गुणा मताः ॥ ३ ॥

पिछले बीसवें अध्यायमें वर्णन कियेहुए स्वर्णमाक्षिकसे तारमाक्षिक अन्य है, यह चाँदीके तुल्य होताहै, इसमें कुछ चाँदीका भी मेल है इससे इसको तारमाक्षिक कहा है, यह चाँदी नहीं है किन्तु चाँदीके समान है इसी हेतु इसमें चाँदीसे कुछ न्यून गुण हैं इस तारमाक्षिकमें केवल चाँदीके ही गुण नहीं है किन्तु अन्य द्रव्योंके सम्बन्धसे और भी गुण विद्यमान हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

तारमाक्षिकशोधनम् ।

कर्कोटीमेषशृङ्ग्युत्थैर्द्रवैर्जम्बीरजैर्दिनम् ।
भावयेदातपे तीव्रे विमला शुद्धयति ध्रुवम् ॥ ४ ॥

रूपामक्खीको ककोडा, मेंढासिंगी और जंभीरी नींबू इन प्रत्येकके रसमें एक एक दिन धूपमें खरल रखकर घोटे तो निस्सन्देह वह शुद्ध होजाती है ॥ ४ ॥

तारमाक्षिकमारणविधिः ।

कुलत्थस्य कषायेण घृष्ट्वा तैलेन वा पुटेत् ।
तैलेन वाजमूत्रेण म्रियते तारमाक्षिकम् ॥ ५ ॥

शुद्ध की हुई रूपामक्खीको कुलथीके काढे या तिलके तेलमें एक दिन घोटे अथवा बकराके मूत्रमें एक दिन घोटकर शरावसंपुटमें रख गजपुटमें पकावे तो उसकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ५ ॥

स्वर्णमाक्षिकवज्ज्ञेयं तारमाक्षिकमारणम् ।
विमलाया गुणाः किञ्चिन्न्यूनाः कनकमाक्षिकात् ॥ ६ ॥

रूपामक्खीके मारणकी विधि भी सोनामक्खीके समान ही समझना चाहिये, और इस रूपामक्खीके गुण सोनामक्खीसे कुछ न्यून हैं (श्लोकमें मारण यह शब्द उपलक्षणमात्र है अतः शोधन तथा अन्य सत्त्वपातनादि कर्म भी पूर्वोक्त स्वर्णमाक्षिकके तुल्य ही जानना चाहिये ॥ ६ ॥

माक्षिकगुणाः ।

माक्षिको रजतहाटकप्रभः शोधितोऽतिगुणदः सुसेवितः ।
मेहकुष्ठकृमिशोफपाण्डुतापस्मृतीर्हरति चाश्मरीं जयेत् ॥ ७ ॥

माक्षिक चाँदी और सोनेके समान कान्तिवाला विधिपूर्वक शोधा हुआ यह अत्यन्त गुणदायक होताहै, अच्छे प्रकार सेवन कियाहुआ प्रमेह, कुष्ठ, कृमिरोग, सूजन, पांडु, अपस्मार तथा पथरी आदि रोगोंको दूर करता है ॥ ७ ॥

तापीजभेदादिवर्णनम् ।

तापीजं द्विविधं वदन्ति विमलामाक्षीकभेदादिह
त्रेधा स्यात्तु सुवर्णकांस्यरजतच्छायानुकारादिदम् ।
त्रिस्रोप्यस्त्रयुताश्चतुस्त्रिफलिका वृत्ताः स्वनामश्रियो
मध्ये तु त्रिफलाम्बु शुद्धयति दिनं वासाजशृङ्गीरसे ॥ ८ ॥

स्विन्ना जम्भरसेपि तालवलिनावस्वंशकेनाम्भसा
जंभस्यैव परिप्लुता दशपुटैर्जीवेन्न योगानुगा ॥ ९ ॥

विमला और माक्षिकके भेदसे ताप्यमाक्षिक दो प्रकारका होताहै और वह सोना, कांसा तथा चाँदीके समान कान्तिवाला होनेसे तीन प्रकारका होताहै जैसे सुवर्णविमला, कांस्यविमला, रौप्यविमला, इनमेंसे जो जिस धातुके समान है उसके पूर्व उसी धातुका योग किया गया है । सुवर्ण विमलादि तीनों माक्षिक कोनोंसे युक्त तीन या चार फहलवाले, गोल और अपनी २ शोभासे युक्त होते हैं इन सबोंमें कांस्यविमला उत्तम है । इनका चूर्ण बना वस्त्रमें बाँधकर त्रिफलाके काढे तथा अडूसे और मेढासिंगीके रस, और जंभीरी नींबूके रसमें दोलायन्त्रमें पकावे जब पकजाँय तब पोटलीसे विमलाचूर्णको अलग निकाललेवे और विमलाका आठवाँ भाग शुद्ध हरिताल और शुद्ध गंधक डालकर सबको जंभीरीनींबूके रसमें खरल करके गजपुटमें पकावे इसी प्रकार दश पुट देवे तो विमलाकी भस्म सिद्ध होजाती है । यह भस्म किसी योगके संयोगसे फिर नहीं जीती है ॥ ८ ॥ ९ ॥

मयात्र रौप्यमाक्षिकविधिः सम्यग्विवर्णितः ।
अध्याये ह्येकविंशे तु ज्ञात्वा तं तु सुखी भव ॥ १० ॥

हे वत्स ! मैंने इस इक्कीसवें अध्यायमें रौप्यमाक्षिकके शोधन तथा मारण आदिका विधान मैंने तुमसे वर्णन किया उसको जानकर तुम सुखयुक्त हो॥१०॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
रौप्यमाक्षिकवर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः ॥

गुरुरुवाच ।

अथ वत्स प्रवक्ष्यामि विमलायाश्च सत्क्रियाः ।
यासां प्रयोगमात्रेण मनुष्यो भद्रमश्नुते ॥ १ ॥

हे वत्स ! अब मैं तुमसे विमलाकी श्रेष्ठ क्रियाओंको कहूँगा जिनके प्रयोग मात्रसे मनुष्य सुखको प्राप्त होताहै ॥ १ ॥

विमलाभेदादिवर्णनम् ।

विमलस्त्रिविधः प्रोक्तो हेमाद्यस्तारपूर्वकः ।
तृतीयः कांस्यविमलस्तत्तत्कान्त्या स लक्ष्यते ॥ २ ॥
वर्तुलः कोणसंयुक्तः स्निग्धश्च फलकान्वितः ।
मरुत्पित्तहरो वृष्यो विमलोतिरसायनः ॥ ३ ॥
पूर्वो हेमक्रियासूक्तो द्वितीयो रूप्यकृन्मतः ।
तृतीयो भेषजे तेषु पूर्वः पूर्वो गुणोत्तरः ॥ ४ ॥

विमला तीन प्रकारका होता है उनमेंसे पहला सुवर्ण विमला, दूसरा रौप्यविमला और तीसरा कांस्यविमला है । ये सुवर्ण आदिकी कान्तिसे पहिचाने जाते हैं, ये सब गोल कोणयुक्त, चिकने और फहलदार होते हैं । बादी तथा पित्तको नष्ट करते हैं, वृष्य हैं, रसायन हैं । सोनेके कार्यमें सुवर्णविमला, चाँदीके कार्यमें रौप्यविमला और औषधके कार्यमें कांस्यविमलाका उपयोग करना चाहिये, इनमेंसे पूर्वपूर्वका विमला गुणोंमें श्रेष्ठ है ॥ २–४ ॥

अन्यच्च ।

माक्षीको द्विविधादिमः कनकरुग्दुर्वर्णवर्णोऽपरः
कांस्यश्रीकमुशन्ति केचन परं सर्वेऽपि पूर्वत्विषः ।
निष्कोणा गुरवः किरन्ति निभृतं घृष्टाः करे श्यामताम् ॥ ५ ॥

माक्षिक दो प्रकारका होताहै उनमेंसे पहला सुवर्णमाक्षिक है, दूसरा दुर्वर्ण अर्थात् रौप्यमाक्षिक है और कोई २ वैद्यवर तीसरा कांस्यमाक्षिक भी कहते हैं, ये तीनों सुवर्ण, रौप्य, और कांस्यकी कान्तिके समान कान्तिसे युक्त, कोणरहित, भारी और हथेलीपर घिसनेसे श्यामरंगके देनेवाले होते हैं ॥ ५ ॥

विमलाशोधनविधिः ।

स्विन्नास्ते रुबुतैललुङ्गसलिलैर्यामेन शुद्ध्यन्ति च ।
पक्वा वा घटिकाद्वयेन कदलीकर्कोटिकाकन्दयोः ॥ ६ ॥

पूर्वोक्त तीन प्रकारके माक्षिकोंको एक प्रहर पर्यन्त अंडीके तेलमें पकावे और पीछे बिजौरा नींबूके रसमें घोटे तो वे शुद्ध होजाते हैं अथवा केलाकी जडके और ककोडाके रसमें दो घडी पर्यन्त पकावे तो भी शुद्ध होजाते हैं ॥६॥

विमलामारणविधिः ।

रुद्ध्वा कूर्मपुटैस्त्रिभिः पटुतरं लुङ्गाम्बुगन्धप्लुताः ।
स्युर्भस्मानि जघन्यमध्यसुभगास्ते व्युत्क्रमेणोदिताः ।
वृष्याः पाण्डुपटीयसो बलकरा योगोपयोगाः पुनः ॥ ७ ॥

पहले कहीहुई रीतिसे शुद्ध कियेहुए विमलाके चूर्णमें बिजौरा नींबूका रस और गंधक मिलाकर घोटे तदनन्तर शरावसंपुटमें रख कूर्मयन्त्रमें तीन आँच देवे तो स्वर्णमाक्षिकादिकी भस्म सिद्ध होजाती है इनमेंसे कांस्यमाक्षिक अधम रौप्यमाक्षिक मध्यम और सुवर्णमाक्षिक उत्तम है इनकी भस्म वृष्य है, पांडुरोगको हरती है बलको उत्पन्न करती है, योगके साथ अनेक गुण करती है ॥७॥

पुनर्विमलाशोधनविधिः ।

आटरूषजले स्विन्नो विमलो विमलो भवेत् ।
जम्बीरस्वरसे स्विन्नो मेषशृङ्गीरसेऽथवा ॥
आयाति शुद्धिं विमलो धातवश्च तथापरे ॥ ८ ॥

विमलाको अडूसेके रसमें औटावे तो शुद्ध होजाता है । अथवा जंभीरी नींबूके या मेंढासिंगीके रसमें पकावे तो भी शुद्ध होता है अन्य धातु भी शुद्ध होते हैं॥८॥

मारणस्य द्वितीयः प्रकारः ।

गन्धाश्मलकुचाम्लैश्च म्रियते दशभिः पुटैः ॥ ९ ॥

गन्धक बडहल और अम्ल द्रव्योंके रसकी दश पुट देनेसे तीनों प्रकारकी विमला भस्म होजाती है ॥ ९ ॥

विमलासत्त्वपातनविधिः ।

सटंकलकुचद्रावैर्मेषशृङ्ग्याश्च भस्मना ।
पिष्टो मूषोदरे लिप्तः संशोष्य च निरुध्य च ॥ १० ॥

षट्प्रस्थं कौकिलैर्ध्मातो विमलः श्वेतसन्निभः ।
सत्त्वं मुञ्चति तद्युक्तो रसः स्यात्स रसायनः ॥ ११ ॥

सुहागा, बडहलका रस, मेढासिंगी, विमलाकी भस्म इन चारोंको एकमें घोटकर मूषेके अंदर लेप करके धूममें सुखालेवे और ऊपरसे ढक्कन बन्द कर छः सेर कोयलोंकी आँचमें रख बंकनाल धोंकनीसे धोंके तो विमला सफेद सत्त्वको छोडती है, इस सत्त्वसे युक्त रस रसायन होता है ॥ १०–११ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

विमलं शिग्रुतोयेन कांक्षीकासीसटङ्कणम् ।
वज्रकन्दसमायुक्तं भावितं कदलीरसैः ॥ १२ ॥
मोक्षकक्षारसंयुक्तं ध्मापितं मकमूषगम् ।
सत्त्वं चन्द्रार्कसंकाशं प्रपतेन्नात्र संशयः ॥ १३ ॥

विमलाको सहिंजनेके रस, फिटकरी, कसीस, सुहागा और वज्रकन्द (शकरकन्द) के रसमें घोटे तत्पश्चात् केलाके रसकी भावना दे और पीछे मोखावृक्षका खार मिलाकर मूषामें रक्खे और कोयलोंकी आँचमें रख बंकनाल धोंकनीसे धोंके तो चन्द्र और सूर्यके तुल्य कान्तिसे युक्त सत्त्व निकलता है ॥ १२-१३ ॥

सत्त्वसंस्कारः ।

तत्सत्त्वं सूतसंयुक्तं पिष्टं कृत्वा सुमर्दितम् ।
विलीने गन्धके क्षिप्त्वा जारयेत्त्रिगुणालकम् ॥ १४ ॥
शिलां पञ्चगुणां चापि वालुकायन्त्रके खलु ।
तारभस्मदशांशेन तावद्वैक्रांतकं मृतम् ॥ १५ ॥
सर्वमेकत्र संचूर्ण्य पटेन परिगाल्य च ।
निक्षिप्य कूपिकामध्ये परिपूर्य प्रयत्नतः ॥ १६ ॥

पूर्वोक्त विधिसे निकाले हुए विमलाके सत्त्वके पारा मिलावे और घोटकर पिट्ठी बनालेवे, जब सत्त्व अच्छे प्रकारसे मिलजावे तब शुद्ध गंधक, तिगुना हरिताल और पंचगुना मनाशिल डालकर वालुकायन्त्रमें जारण करे इस प्रकार जब विमलाके सत्त्वमें संस्कार होजाय तब उसमें उसीका दशवाँ भाग रूपरस और इतनी ही वैक्रान्तमणिकी भस्म मिलाकर घोटे और किसी स्वच्छवस्त्रमें छानकर सावधानीसे काँच आदिकी कूपीमें भरकर रखदेवे ॥ १४--१६ ॥

भस्मगुणाः ।

लीढो व्योमवरान्वितो विमलको युक्तो घृतैः सेवितो
हन्याद्दुर्भगकृज्जरां श्वयथुकं पाण्डुप्रमेहारुचीः ।
मूलार्तिं ग्रहणीं च शूलमतुलं यक्ष्मामयं कामलां
सर्वान्पित्तमरुद्भवान्किमपरैर्योगैरशेषामयान् ॥ १७ ॥

अभ्रक, त्रिफला, तथा गौके मक्खनके साथ सेवन की हुई यह विमलाभस्म स्वरूप बिगाडनेवाले बुढापा, सूजन, पांडुरोग, प्रमेह, अरुचि, बवासीर, संग्रहणी, भयंकर शूल, क्षयीरोग, कामला, तथा पित्त और वातसे उत्पन्न सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करती है तो फिर अशेष रोगोंके नाशके लिये अन्य योगोंसे क्या प्रयोजन है ? ॥ १७ ॥

अनुपानानि ।

विषव्योषवराज्येन विमलः सेवितो यदि ।
भगंदरादिका रोगा नृणां गच्छन्ति दुस्तराः ॥ १८ ॥

सिंगिया विष, सोंठ, मिरच, पीपल, त्रिफला और घृत इनके साथ विमला-भस्मके सेवन करनेसे मनुष्योंके कष्ट साध्य भगंदरादि रोग नष्ट होते हैं ॥ १८ ॥

विमलादोषशान्त्युपायः ।

विकारो यदि जायेत विमलाया निषेवणात् ।
शर्करासहिता भक्ष्या मेषशृङ्गी दिनत्रयम् ॥ १९ ॥

कच्ची विमलाभस्मके सेवन करनेसे शरीरमें यदि किसी प्रकारका विकार उत्पन्न हो जावे तो मेंढासिंगीके चूर्णको मिश्रीके साथ तीन दिन पर्यन्त सेवन करना चाहिये ॥ १९ ॥

द्वाविंशतितमेऽध्याये विमलाशोधनादिकम् ।
तत्सेवनविधिश्चापि यथावद्वर्णितो मया ॥ २० ॥

हे वत्स ! मैंने इस बाइसवें अध्यायमें विमलाके शोधन तथा मारण आदिका प्रकार और उसके सेवन करनेकी विधि यथायोग्य वर्णन किया ॥ २० ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
विमलावर्णनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः ॥

अथातस्तुत्थवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम तुत्थवर्णन नामक तेइसवें अध्यायका वर्णन करते हैं ॥

गुरुरुवाच ।

अथ तुत्थविधानं तु श्रूयतां शिष्यसत्तम ।
यस्य विज्ञानमात्रेण रोगान्वै जयते भिषक् ॥ १ ॥

गुरुने कहा कि, हे शिष्यसत्तम ! अब तुम नीलाथोथेके शोधन तथा मारण आदिका विधान सुनो जिसके विज्ञानमात्रसे वैद्य रोगोंको जीत लेता है ॥ १ ॥

तुत्थोत्पत्तिः ।

पीत्वा हालाहलं वान्तं पीतामृतगरुत्मता ।
विषेणामृतयुक्तेन गिरौ मरकताह्वये ॥ २ ॥
तद्वांतं हि घनीभूतं संजातं सस्यकं खलु ।
एकधा सस्यकस्तुत्थः शिखिकण्ठसमाकृतिः ॥ ३ ॥
तुत्थस्यैव भवेद्भेदः खर्परं तद्गुणं भवेत् ।
शिखिकण्ठसदृक्छायं भाराढ्यमतिशस्यते ॥ ४ ॥
द्रव्यं विषयुतं यत्तद्द्रव्याधिकगुणं भवेत् ।
हालाहलं सुधायुक्तं सुधाधिकगुणं तथा ।
सस्यकं तुत्थकं चैव नामभेदात्प्रकीर्तितम् ॥ ५ ॥

नीलाथोथेकी उत्पत्ति,--गरुडने पहले हालाहल विषको पान किया परन्तु उनका चित्त जब मचलाया तब उन्होंने अमृतका पान किया तदनन्तर मर्कत नामक पर्वतपर अमृतसंयुक्त विषकी वमन किया, वही वमन घनीभूत होकर लोकमें सस्यक नामसे विख्यात हुआ इसीका दूसरा नाम तुत्थभी है जिसको हिन्दीभाषामें तूतिया या नीलाथोथा कहते हैं, रंग इसका मोर पक्षीकी गर्दनके तुल्य होताहै । इसी तुत्थका दूसरा भेद खर्पर (खपरिया) भी है उसके गुण नीलाथोथेके समानही होते हैं । इनमेंसे जो मोरकी गर्दनके तुल्य रंगसे युक्त और भारी हो वह तुत्थक अति श्रेष्ठ होताहै । विष जिस द्रव्यसे युक्त होता है उस द्रव्यसे अधिक गुण करता है, इसी हेतु अमृत संयुक्त हालाहल विष अमृ-

तसे अधिक गुणकारी है । सस्यक और तुत्थकमें केवल नाममात्रका भेद है वस्तुतः यह दोनों एकही द्रव्य हैं ॥ २–५ ॥

सस्यकशुद्धिः ।

सस्यकं शुद्धिमाप्नोति रक्तवर्गेण भावितम् ।
स्नेहवर्गेण संसिक्तं सप्तवारमदूषितम् ॥ ६ ॥

पहले रक्तवर्गोक्त औषधोंकी भावना देकर पीछे स्नेहवर्गमें सात बार औटावे तो नीलाथोथा शुद्ध होजाता है रक्तवर्ग और स्नेहवर्ग दोनों मध्यभागमें कहेंगे ॥ ६ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

दोलायन्त्रेण सुस्विन्नं सस्यकं प्रहरत्रयम् ।
गोमहिष्यजमूत्रेण शुद्ध्यतेऽयं च निश्चितम् ॥ ७ ॥

दूसरा प्रकार,–गौ, भैंसा और बकरा इन तीनोंके मूत्रमें तीन प्रहर तक दोलायन्त्रमें नीलाथोथेका स्वेदन करे तो वह निश्चय शुद्ध होजाता है ॥ ७ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

ओतोर्विष्ठासमं तुत्थं सक्षौद्रं टंकणान्वितम् ।
त्रिविधं पुटितं शुद्धं वान्तिभ्रान्तिविवर्जितम् ॥ ८ ॥

तीसरा प्रकार,–जितना नीलाथोथा हो उसीके बराबर बिल्लीकी बिष्ठा लेकर उसमें शहद् और सुहागा मिलाकर खरल करे तदनन्तर शरावसंपुटमें रख कपर-मिट्टी करके फूँक देवे यह एक पुट हुई इसी रीतिसे दो पुट और देवे तो नीला-थोथा शुद्ध होजाता है और वह वान्ति तथा भ्रान्ति दोषसे रहित होताहै ॥ ८ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

अम्लवर्गेण लुलितं स्नेहसिक्तं हि तुत्थकम् ।
दोलायां वाजिगोमूत्रे दिनं पक्कं विशुध्यति ॥ ९ ॥

चौथा प्रकार,–तुत्थकको अम्लवर्गोक्त औषधोंके रसमें घोटकर स्नेहवर्गमें स्वेदन करे तत्पश्चात् दोलायन्त्रके द्वारा घोडा और गौके मूत्रमें औटावे तो शुद्ध होजाता है ॥ ९ ॥

पञ्चमः प्रकारः ।

विष्ठया मर्दयेत्तुत्थं मार्जारककपोतयोः ।
दशांशं टकणं दत्त्वा पचेन्मृदुपुटे ततः ॥

पुटं दध्नः क्षौद्रपुटं देयं तुत्थविशुद्धये ॥ १० ॥

पांचवाँ प्रकार,-बिल्ली और कबूतरकी विष्ठामें तुत्थकको घोटे और उसका दशवाँ भाग सुहागा मिलाकर शरावसंपुटमें रख कपरमिट्टी करके जङ्गली उपलोंकी हलकी आँचमें पकावे, स्वांगशीतल होनेपर निकाल लेवे और दहीकी पुट देकर अग्नि देवे तत्पश्चात् सहतकी पुट देवे तो वह शुद्ध होजाता है ॥ १० ॥

तुत्थकमारणविधिः ।

लकुचद्रावगन्धाश्मटंकणेन समन्वितम् ।
अंधमूषागतं द्वित्रिकुक्कुटैर्मृत्युमाप्नुयात् ॥ ११ ॥

बडहरके रसमें गंधक, सुहागा और नीलाथोथेको घोटकर अंधमूषामें रख कुक्कुटपुटमें पकावे इसी प्रकार दो या तीन पुट देवे तो नीलाथोथेकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ११ ॥

तुत्थकसत्त्वपातनविधिः ।

सस्यकस्य तु चूर्णं तु पादसौभाग्यसंयुतम् ।
करञ्जतैलमध्ये तु दिनमेकं निधापयेत् ॥ १२ ॥
अंधमूषासुमध्यस्थं ध्मापयेत्कोकिलाग्निगम् ।
इन्द्रगोपाकृति त्वेवं सत्त्वं पतति शोभनम् ॥ १३ ॥

जितना नीलाथोथेका चूर्ण हो उसमें उसका चौथाई भाग सुहागा मिलाकर एकदिन कंजके तेलमें भिगोवे तत्पश्चात् अंधमूषामें रख कोयलोंकी अग्निमें पकावे और बंकनाल धोंकनीसे धोंके तो बीरबहूटीके रंगके समान सुन्दर लाल सत्त्व निकलता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

निम्बुद्रवाल्पटंकाभ्यां मूषामध्ये निरुध्य च ।
ताम्ररूपं परिध्मातं सत्त्वं मुञ्चति सस्यकम् ॥ १४ ॥

दूसरा प्रकार,-नीलाथोथेमें थोडासा सुहागा मिलाकर नींबूके रसमें मिलावे और उसे मूषामें रख बंकनाल धोंकनीसे धोंके तो ताँबेके समान लाल रंगका सत्त्व निकलता है ॥ १४ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

गुग्गुलुष्टंकणं लाक्षास्वर्जिःसर्जिरसः पटुः ।
ऊर्णागुञ्जाक्षुद्रमीना अस्थीनि शशकस्य च ॥ १५ ॥

गुञ्जामध्वाज्यसंयुक्तं पिण्याकं च ह्यजापयः ।
तुत्थस्य च दशांशेन प्रक्षिप्तं वटकीकृतम् ॥
ध्मातं च अंधमूषायां सत्त्वं पतति शोभनम् ॥ १६ ॥

गूगल, सुहागा, लाख, राल, सज्जी, नमक, ऊन, घूंघची, छोटी मछली, शशेकी हड्डी, घूंघची, शहत, घृत, खल अर्थात् स्नेहरहित तिलचूर्ण और बकरीका दूध इन सबको नीलाथोथेका दशवाँ भाग लेकर उसीमें मिलाकर वटक बनालेवे और मूषामें रख बंकनाल धोंकनीसे धोंके तो उत्तम सत्त्व निकलता है ॥१५॥१६॥

अग्निपुटं विनैव सत्त्वपातनविधिः ।

अथवा तुत्थकं चूर्णं निंबुनीरे विनिक्षिपेत् ।
धारयेल्लोहपात्रे च यावत्सप्तदिनानि वै ॥ १७ ॥
लोहपात्रात्समुद्धृत्य सत्त्वं ग्राह्यं सुशोभनम् ।
सिद्धयोगोयमाख्यातो हुताशनपुटं विना ॥ १८ ॥

अथवा लोहेके पात्रमें नींबूका रस भरे और उसमें नीलाथोथेके चूर्णको डालकर सात दिन पर्यन्त रक्खा रहने देवे, आठवें दिन पात्रकी पेंदीमें बैठे हुए नीलाथोथेके उत्तम सत्त्वको अलग निकाल लेवे । यह सिद्ध योग है, अग्निकी पुट दिये विना ही इस विधिसे सत्त्व निकल आता है ॥ १७ ॥ १८ ॥

शूलादिनाशिनीमुद्रिकानिर्माणादिविधिः ।

तुत्थसत्त्वं नागताम्रं हेमं चैव समांशकम् ।
मुद्रिकेयं विधातव्या शूलघ्ना तत्क्षणाद्भवेत् ॥ १९ ॥
चराचरविषं भूतं डाकिनीं च गदं जयेत् ।
कनिष्ठायां धार्यमाणा विषघ्नी सर्वदा भवेत् ॥ २० ॥
" रामवत्सोमसेनानीर्मुद्रितेयं तदक्षरैः ।
हिमालयोत्तरे तीरे अश्वकर्णो महाद्रुमः ॥ २१ ॥
तत्र शूलं समुत्पन्नं तत्रैव निधनं गतम् । "
मन्त्रेणानेन मुद्राम्बु निपीतं सप्तमन्त्रितम् ॥ २२ ॥
सद्यः शूलहरं प्रोक्तं सत्यं भाल्लुकिभाषितम् ।
अनया मुद्रया तप्तं तैलमग्नौ सुनिश्चितम् ॥ २३ ॥

लेपितं हन्ति वेगेन शूलं यत्र क्वचिद्भवेत् ।
सद्यः सूतिकरं नार्याः सद्यो नेत्ररुजापहम् ॥ २४ ॥

नीलाथोथेका सत्त्व, नागताम्र और इन दोनोंकी बराबर सोना लेकर सबोंको एकमें मिलाकर अँगूठी बनाना चाहिये । क्योंकि यह तत्काल ही शूलको नाश करती है, स्थावर और जङ्गम विष, भूतोंकी बाधा, डाकिनी आदिके उपद्रव, तथा अन्य रोगोंको भी दूर करती है, इसको दाहिने हाथकी कनिष्ठिका नामक अङ्गुलीमें नित्य धारण किये रहे तो जहरको नाश करती है, अथवा " रामवत्सो मसेनानीर्मुद्रितेयं तदक्षरैः । हिमालयोत्तरे तीरे अश्वकर्णो महाद्रुमः ॥ तत्र शूलं समुत्पन्नं तत्रैव निधनं गतम्" इस मन्त्रको सात वार पढकर जलको अभिमन्त्रित करे और इसी जलमें अँगूठीको धोकर पिलावे तो तत्काल ही शूल नष्ट होताहै यह सब भालुकि आचार्यका कथन है। अथवा इस अँगूठीको तिलोंके तेलमें डाल अग्निमें चढाकर पकालेवे और जिस स्थानमें शूल हो वहाँ इस तेलकी अच्छे प्रकार मालिश करे तो शूल नष्ट होजाताहै, यदि इस अँगूठीके धुले हुए जलको कष्टित स्त्री पीवे तो बहुत शीघ्र प्रसूतिको करती है, और नेत्रोंके रोगोंको भी हरती है ॥ १९--२४ ॥

तुत्थकसत्त्वपातनयुक्तिः ।

शुद्धं सस्यं शिलाक्रान्तं पूर्वभेषजसंयुतम् ।
नानाविधानयोगेन सत्त्वं मुञ्चति निश्चितम् ॥ २५ ॥

शुद्ध नीलाथोथेमें मैनशिल और पहले कहेहुए सत्त्वके उत्पन्न करनेवाले औषधोंको मिलावे, इस प्रकार अनेक तरहके विधान तथा योगोंसे निस्सन्देह तुत्थ सत्त्वको छोडताहै ॥ २५ ॥

तुत्थसत्त्वमारणविधिः ।

पाषाणभेदिमत्स्याक्षीद्रवैर्द्विगुणगन्धकम् ।
सत्त्वस्य लेपयेत्पिष्टं रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ॥ २६ ॥
समांशेन पुनर्गन्धं दत्वा द्रावैश्च लोलयेत् ।
एवं सप्तपुटैः पक्वं सत्त्वभस्म भवेद्ध्रुवम् ॥ २७ ॥

जितना तुत्थका सत्त्व हो उससे दूना गंधक लेकर पाषाणभेदी और मछेछीके रसमें सबको घोटे तत्पश्चात् उस पिट्ठीको मूषामें रख आच्छादित कर गजपुटमें पकावे (यह एक पुट हुई), इसी प्रकार फिर भी तुत्थसत्त्वके समान गंधक

मिलाकर पाषाणभेदी और मछेछीके रसमें घोटकर पूर्ववत् गजपुटमें पकावे इसी रीतिसे सब मिलाकर सात पुट देवे तो निस्सन्देह सत्त्वकी भस्म सिद्ध हो जाती है ॥ २६ ॥ २७ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

सत्त्वस्य द्विगुणं सूतं गन्धं देयं चतुर्गुणम् ।
जम्बीराम्लेन तत्सर्वं मर्दयेत्प्रहरत्रयम् ॥ २८ ॥
आदौ मूषान्तरे क्षिप्त्वा धत्तूरस्य तु पत्रकम् ।
आच्छाद्य धूर्तपत्रैश्च रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ॥ २९ ॥
स्वाङ्गशीतं तु संचूर्ण्य मृतं भवति निश्चितम् ।
एवं सप्तविधं कृत्वा निरुत्थं च मृतं भवेत् ॥ ३० ॥

दूसरा प्रकार,--नीलाथोथेका जितना सत्त्व हो उसका दूना पारा और चौगुना गंधक मिलाकर जंबीरी नींबूके रसमें तीन प्रहर पर्यन्त घोटे तत्पश्चात् मूषामें रख धतूरेके पत्रोंसे ढाँककर गजपुटमें पकावे, जब स्वाङ्गशीतल होजावे तब पीसलेवे तो निस्सन्देह तुत्थसत्त्व मृत होजाताहै, इसी प्रकार सब मिलाकर सात पुट देवे तो निरुत्थ भस्म सिद्ध होजाती है ॥ २८--३० ॥

तुत्थसत्त्वभस्मगुणाः ।

निश्शेषदोषविषहृद्गुदशूलमूलकुष्ठाम्लपैत्तिकविबंधहरं परं च ।
रासायनं वमनरेचकरं गरघ्नं चित्रापहं गदितमत्र मयूरतुत्थम् ॥ ३१ ॥

नीलाथोथेका सत्त्व सम्पूर्ण दोष, विष, गुदाका शूल, बवासीर, कुष्ठ, अम्लपित्त, और अफराको नष्ट करताहै, श्रेष्ठ रसायन है, वमन और रेचनको करनेवाला तथा चित्रकुष्ठको नाश करनेवाला है ॥ ३१ ॥

अपक्वतुत्थदोषशान्त्युपायः ।

जम्बीररसमादाय पिबेच्च दिवसत्रयम् ।
तस्य तुत्थकशान्तिः स्यात्तद्वल्लाजेन वारिणा ॥ ३२ ॥

तीन दिन पर्यन्त जंबीरी नींबूका रस अथवा धानकी खीलोंका पानी पीवे तो कच्चे नीलेथोथेके सेवनसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण विकार नष्ट होवें ॥ ३२ ॥

एवं तुत्थविधानं ते त्रयोविंशे हि वर्णितम् ।
यस्य सर्वाः क्रियास्तात ज्ञातव्या भिषजां वरैः ॥ ३३ ॥

हे तात ! इस तेइसवें अध्यायमें नीलाथोथेके शोधन तथा मारणादिकी सम्पूर्ण विधि मैंने वर्णन किया, जिस तुत्थकी समस्त क्रियायें श्रेष्ठ वैद्योंको अवश्य जाननी चाहिये ॥ ३३ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
तुत्थवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः ।

अथातश्चपलकंकुष्ठवर्णनं नाम चतुर्विंशाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब चपल और कंकुष्ठके वर्णनसे युक्त चौबीसवें अध्यायका वर्णन करते हैं ॥

गुरुरुवाच ।

श्रूयतां चपलस्यैव कंकुष्ठस्य च वर्णनम् ।
ययोर्विज्ञानमात्रेण सिद्धवैद्यो भवेद्ध्रुवम् ॥ १ ॥

हे वत्स ! तुम अब चपल और कंकुष्ठके वर्णनको सुनो जिनके जान लेनेमात्रसे निस्सन्देह सिद्धवैद्य होताहै ॥ १ ॥

चपलोत्पत्त्यादिवर्णनम् ।

यत्र जातौ नागवंगौ चपलस्तत्र जायते ।
गौरः श्वेतोऽरुणः कृष्णश्चपलस्तु चतुर्विधः ॥ २ ॥
हेमाभश्चैव ताराभो विशेषाद्रसबन्धकौ ।
शेषा तु मध्यौ लाक्षावच्छीघ्रद्रावौ तु निष्फलौ ॥
वंगवद्द्रवते वह्नौ चपलस्तेन कीर्तितः ॥ ३ ॥

सीसा और राँगा यह दोनों जिस खानसे निकलते हैं उसी खानसे चपल जो कि सीसेका भेद है वह भी निकलताहै । और वह चपल गौर, सफेद, लाल, काला इन भेदोंसे चार प्रकारका होता है । इन चपलोंमेंसे जो सुवर्ण और चाँदीके तुल्य कान्तिसे युक्त हों वे विशेषसे पारेको बाँधते हैं, और शेष लाल तथा काले रंगवाले चपल मध्यम होते हैं, और अग्निमें छोडनेसे शीघ्र ही लाखके समान पिघल जाते हैं, इनको निष्फल समझना । अग्निमें छोडनेसे राँगेकी भाँति यह भी पिघलता है इसीहेतु इसका नाम चपल रक्खागया है ॥ २ ॥ ३ ॥

ग्राह्यचपलवर्णनम् ।

क्षीयते नापि वह्निस्थः सत्त्वरूपो महाबलः ।
ईदृशश्चपलो वा स्याद्वादिनां वादसिद्धये ॥ ४ ॥

जो अग्निमें रखनेसे भी नष्ट नहीं होता और सत्त्वरूप तथा महाबलसे युक्त हो ऐसा चपल धातुवादियोंकी वादसिद्धिके लिये ग्रहण करना चाहिये ॥ ४ ॥

चपलस्वरूपादिवर्णनम् ।

चपलः स्फटिकच्छायः षडस्रः स्निग्धको गुरुः ।
महारसेषु कैश्चिद्धि चपलः परिकीर्तितः ॥
अयं तूपरसः कैश्चित्पठितोऽन्य रसेषु च ॥ ५ ॥

यह चपल स्फटिकमणिक समान कान्तिसे युक्त छः कोनेवाला, चिकना और गुरु होताहै किन्हीं २ वैद्योंने इसकी महारसोंमें गणना की है और किन्ही किन्हीने उपरसोंमें पढा है ॥ ५ ॥

नागसंभवचपलनिर्माणविधिः ।

त्रिंशत्पलमितं नागं भानुदुग्धेन मर्दितम् ।
विलिप्य पुटयेत्तावद्यावत्कर्षावशेषितम् ॥ ६ ॥
न तत्पुटसहस्रेण क्षयमाप्नोति सर्वथा ।
चपलोयं समुद्दिष्टो वार्तिकैर्नागसम्भवः ॥ ७ ॥
तत्स्पृष्टहस्तसस्पृष्टः केवलो बध्यते रसः ॥ ८ ॥

तीस पल पर्यंत एक सौ बीस तोले सीसेको आकके दूधमें घोटकर संपुटमें रख फूँकदे, जब तक एक तोला शेष रहे तब तक इसी प्रकार बारबार फूँकता रहे इस प्रकारसे शेष रहा वह एक तोला सीसा सहस्र पुट देनेपर भी किसी प्रकार नष्ट नहीं होता, वैद्योंने इसको नागसम्भव चपल कहा है यदि इसे हथेलीमें रखकर पारेके साथ मर्दन करे तो पारा बँध होजाता है ॥ ६-८ ॥

चपलशोधनविधिः ।

विषोपविषधान्याम्लैर्मर्दितश्चपलस्तथा ।
जंबीरकर्कोटकशृंगवेरैर्विभावनाभिश्चपलस्य शुद्धिः ॥ ९ ॥

चपलको पहले विष उपविष और कांजीमें खरल करे तत्पश्चात् जंबीरी नींबू, ककोडा और अदरखके रसकी भावना देवे तो शुद्ध होजाता है ॥ ९ ॥

चपलमारणविधिः ।

मारयेत्पुटपाकेन चपलं गिरिमस्तके ।
ताम्रवन्मारणं चापि चपलस्य प्रशस्यते ॥ १० ॥

चपलको त्रायमाणा वा मौलसिरीके रसमें घोटकर पुटपाकविधिसे पकावे तो उसकी भस्म सिद्ध होजाती है अथवा ताँबेकी भस्म बनानेकी जो विधि कही है उसी विधिसे चपलकी भी भस्म बनाना श्रेष्ठ है ॥ १० ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

शैलं सुचूर्णयित्वा तु धान्याम्लोपविषैर्विषैः ।
पिण्डं बद्धा तु विधिवत्पाचयेच्चपलं तथा ॥ ११ ॥

पहिले शिलाजीतका चूर्ण करलेवे और पीछे उसमें चपल मिलाकर कांजी, विष और उपविषमें खरल करके गोला बनालेवे और उस गोलेको संपुटमें रख विधिपूर्वक गजपुटमें पकावे तो चपलकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ११ ॥

चपलसत्त्वपातनविधिः ।

सत्त्वमम्बरवद्ग्राह्यं सूतबन्धकरं परम् ॥ १२ ॥

जिस विधि अभ्रकका सत्त्व निकालाजाताहै उसी विधिसे चपलका भी सत्त्व निकालना चाहिये। यह चपलसत्त्व पारेको बाँधता है ॥ १२ ॥

चपलगुणः ।

चपलो लेखनः स्निग्धो देहलोहकरो मतः ।
रसराजसहायः स्यात्तिक्तोष्णो मधुरो मतः ॥
त्रिदोषघ्नोऽतिवृष्यश्च रसबन्धविधायकः ॥ १३ ॥

चपल लेखन और चिकना है, शरीरको लोहेके तुल्य दृढ करनेवाला है, पारेका सहायक है, तिक्त, गरम और मधुर है त्रिदोषको नष्ट करता है, अतिवृष्य है, पारेको बाँधता है ॥ १३ ॥

गुल्मादिषु चपलोपयोगित्ववर्णनम् ।

गुल्मामशूलशोषेषु प्रमेहेषु ज्वरेषु च ।
प्रदरेषु प्रयोक्तव्यः चपलस्त्वमृतोपमः ॥ १४ ॥

गुल्मरोग, आमवात, शूलरोग, शोषरोग, प्रमेह, ज्वर और प्रदर व्याधिमें इस अमृततुल्य चपलभस्मका उपयोग करना चाहिये ॥ १४ ॥

कंकुष्ठस्य चोत्पत्त्यादिशोधनादिविधिः शुभः ।
वक्ष्येऽधुना ह्यहं वत्स तच्छृणुष्व समाहितः ॥ १५ ॥

हे वत्स ! अब मैं कुंकुष्ठ (मुरदाशंख) के लक्षण तथा शोधन और मारणकी विधि कहता हूँ, तुम सावधान चित्तहोकर सुनो ॥ ॥ १५ ॥

कङ्कुष्ठस्योत्पत्तिः भेदौ च ।

हिमवत्पादाशिखरे कंकुष्ठमुपजायते ।
तत्रैकं नलिकाख्यं च तदन्यद्रेणुकं मतम् ॥ १६ ॥

कङ्कुष्ठ अर्थात् मुरदाशंख हिमालय पर्वतके शिखरोंमें उत्पन्न होता है उसके दो भेद हैं नालिका और रेणुक ॥ १६ ॥

नलिकाकंकुष्ठलक्षणम् ।

पीतप्रभं गुरु स्निग्धं कंकुष्ठं शिलया समम् ।
मृद्वतीव शलाकाभं सच्छिद्रं नलिकाभिधम् ॥ १७ ॥

जो पीली कान्तिसे युक्त, भारी, चिकना, शिलाके समान बहुत नरम, तथा शलाकाके समान कान्तियुक्त और छिद्रोंसे युक्त हो उसको नलिका कंकुष्ठ कहते हैं ॥ १७ ॥

रेणुकाकंकुष्ठलक्षणम् ।

रेणुकाख्यं तु कंकुष्ठं श्यामं पीतरजोन्वितम् ।
त्यक्तसत्त्वलघुप्रायः पूर्वस्माद्धीनसत्त्वकम् ॥ १८ ॥

जो श्याम, वर्ण, पीली धूलसे युक्त, सत्त्वरहित और हलका हो उसको रेणुका कंकुष्ठ कहते हैं, यह नलिका कंकुष्ठसे गुणोंमें हीन है ॥ १८ ॥

कंकुष्ठनामानि ।

कंकुष्ठं काककुष्ठं च वरांगं कोलवालुकम् ।
उपधातुस्तु वंगस्य इति भालुकिभाषितम् ॥ १९ ॥

कंकुष्ठ, काककुष्ठ, वरांग, कोलवालुक ये सब मुरदाशंखके नाम हैं और यह रांगेकी उपधातु है, यह भालुकि आचार्यका कथन है ॥ १९ ॥

वाग्भटसम्मतिस्त्वत्रेत्थम् ।

सद्योजातस्य करिणः शकृत्कंकुष्ठमुच्यते ।
यद्वा सद्यः प्रसूतस्य वाजिबालस्य विट् स्मृतम् ॥ २० ॥

नालं वा वाजिबालस्येत्येवं नानाविधं मतम् ।
आप्तवाक्यात्प्रमाणं तु सर्वेषां वचनं जगुः ॥ २१ ॥

कंकुष्ठके विषयमें वाग्भटकी सम्मति इस प्रकार है कि, तत्काल पैदा हुए हाथी अथवा घोडेके बच्चेकी लीदको कंकुष्ठ कहा है । कोई २ कहते हैं । इस प्रकार इस विषयमें अनेक प्रकारके मत हैं । आप्तोंके वाक्य होनेसे वह सब वचन प्रमाणके योग्य हैं ॥ २० ॥ २१ ॥

कंकुष्ठशोधनम् ।

कंकुष्ठं शुद्धतां याति त्रेधा शुंठ्यंबुभावितम् ॥ २२ ॥

सोंठके जलकी तीन भावना देनेसे मुरदाशंख शुद्ध होजाता है ॥ २२ ॥

कंकुष्ठस्य रसादौ श्रेष्ठत्वं सत्त्वोत्कर्षनिषेधश्च ।

रसे रसायने श्रेष्ठं निस्सत्त्वं बहुवैकृतम् ।
सत्त्वोत्कर्षोऽस्य न प्रोक्तो यस्मात्सत्त्वमयं हि तत् ॥ २३ ॥

पूर्वोक्त प्रकारसे शुद्ध किया हुआ कंकुष्ठ रस और रसायनमें श्रेष्ठ है और जो सत्त्वसे रहित रेणुकानामक कंकुष्ठ है वह अत्यन्त विकार युक्त है । कंकुष्ठ स्वयं सत्त्वरूप है इस कारण इसके सत्त्व निकालनेकी विधि नहीं कही ॥ २३ ॥

कंकुष्ठगुणाः ।

कंकुष्ठं तिक्तकटुकं वीर्योष्णं चातिरेचनम् ।
नाशयेदामवातं च रेचयेत्क्षणमात्रतः ॥ २४ ॥
व्रणोदावर्तशूलार्तिगुल्मप्लीहगुदार्तिनुत् ।
कंकुष्ठं नाशयेच्छीघ्रं कठोदरजलोदरम् ॥ २५ ॥

मुरदाशंख स्वादमें तीखा और कडवा है, उष्णवीर्य है, अत्यन्त दस्तावर है, आमवातको नष्ट करता है, क्षणमात्रमेंही दस्त लानेवाला है, व्रण, उदावर्त, शूल, गोला, तापतिल्ली, बवासीर, कठोदर और जलोदरको शीघ्रही नाश करता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

विरेचनेकंकुष्ठमात्रा ।

भजेदेनं विरेकार्थं ग्राहिभिर्यवमात्रया ॥ २६ ॥

यदि विरेचन (जुल्लाब) लेना हो तो इस मुरदाशंखको यवमात्रा अर्थात् छः सरसों प्रमाण मात्रासे सेवन करे ॥ २६ ॥

विषनाशकंकुष्ठयोगः ।

बब्बूरीमूलिकाक्वाथजीरसौभाग्यटंकणैः ।
कंकुष्ठं विषनाशाय भूयोभूयः पिबेन्नरः ॥ २७ ॥

विषनाश करनेके लिये मुरदाशंखको बबूल, मूलीके काढा, जीरा, सिन्दूर और सुहागेके साथ बारंबार पीवे ॥ २७ ॥

वर्णितस्तु चतुर्विंशे द्वयोरपि विधिः शुभः ।
विज्ञाय तं कृतार्थः स्याः पुनः प्रष्टुमथार्हसि ॥ २८ ॥

हे वत्स ! इस चौबीसवें अध्यायमें चपल और कंकुष्ठ इन दोनोंके शोधनादिकी उत्तम विधि कही उसको जानकर तुम कृतार्थ हो और अब फिरभी जो कुछ पूछना हो वह पूछो ॥ २८ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे चपलकंकुष्ठवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः ।

अथातो रसकवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमाध्यायं व्याख्यास्यामः॥

अब हम खपरिये वर्णनसे युक्त पचीसवें अध्यायका कथन करते हैं ॥

शिष्य उवाच ।

किमस्ति रसको भगवन्कथं कस्माच्च लभ्यते ।
बहूनि च मतान्यत्र तस्मात्तत्त्वं न ज्ञायते ॥ १ ॥
यशदस्य च भेदो वै प्रोक्तं तुत्थस्य केनचित् ।
खनिजोयं क्वचित्प्रोक्तः कश्चिदन्या हि वै क्वचित् ॥ २ ॥
शास्त्रेषु कश्चिदन्योस्ति लोके त्वन्यो हि लभ्यते ।
संशयोस्ति महानत्र यदस्ति तद्धि वर्णय ॥ ३ ॥

शिष्यने कहा कि, रसक (खपरिया) क्या वस्तु है, और किस प्रकार कहाँसे मिलती है, हे गुरो ! इस विषयमें अनेक भिन्न २ मत हैं इस कारण इनमेंसे यथार्थ क्या है यह नहीं जानाजाता । किसीने इसको जस्तेका भेद माना है किसीने तूतियेका भेद बताया और किसीने खानिज कहा है इत्यादि कहाँतक कहें, कहीं कुछ और कहीं कुछ मिलता है । शास्त्रोंमें कुछ और ही है और

लोकमें सूरत बंबइकी कांसी पीतल ढालनेकी कढालियोंकी मट्टी मिलती है, कहीं २ कांसेके मैलको ही खपरिया कहते हैं । इत्यादि अनेक मत सुनेजाते हैं इस हेतु मुझे इस विषयमें बडा सन्देह है अतः कृपाकरके " खपरिया क्या वस्तु है" यह सब आप वर्णन कीजिये ॥ १--३ ॥

गुरुरुवाच ।

नष्टास्मिन्समये विद्या प्रपञ्चच्छादितो जगत् ।
न गुरुर्नच शिष्योस्ति न ज्ञाता नच ग्राहकः ॥ ४ ॥
अतो यद्यस्य तुण्डाग्रे यज्जातं तद्धि कीर्तितम् ।
विद्यानुद्धारिराजानः धूर्तैरावेष्टितास्तथा ॥ ५ ॥
समयेऽस्मिन्दाम्भिकैश्च सुज्ञा मूकसमाः कृताः ।
निर्णयव्यग्रविद्वांसो लभन्ते शरणं न हि ॥ ६ ॥
छलैर्हि वर्वरा लोके दीनानार्तान्प्रपीड्य वै ।
धनाढ्याश्चाधुना वत्स गण्यन्ते सुचिकित्सकाः ॥
यस्य प्रसादाद्वैचित्र्यं तं कलिं प्रणमाम्यहम् ॥ ७ ॥

हे पुत्र ! इस समय बिद्या तो नष्ट ही होतीजाती है, और संसारमात्र प्रपञ्चसे आच्छादित होगया । अब न तो कोई योग्य गुरु ही रहा और न योग्य शिष्य हा है । न कोई विद्याका जाननेवाला है और न विद्वानोंका ग्राहक ही है । इसी कारण जिसके मुखमें जो आया उसने विना विचारे वही कथन किया । क्योंकि राजालोग तो प्रायः विद्याके उद्धारमें रुचि नहीं रखते तिस पर भी इन विचारोंको धूर्तोंने अपनी धूर्ततासे वञ्चित कररक्खा है, अहो ! इस विषम समयमें विद्वान् मनुष्य धूर्तोंकी चपलतासे मूकसमान किये गये निर्णय करनेमें व्यग्रचित्त विद्वान् जन कहीं शरणको नहीं प्राप्त होते । बकवादी झूठ बोलनेवाले दुःखी और पीडितोंको ठगतेहुए संसारमें घूमते फिरते हैं । इस समय धनाढ्य मनुष्य ही अच्छे वैद्य गिनेजाते हैं । यह सब विचित्रता जिस कलिके होनेसे होरही है उस कलिको मैं प्रणाम करताहूँ ॥ ४--७ ॥

खर्परवस्तुविवेचनम् ।

खर्परस्यापि विषये ह्यधुना तात श्रूयताम् ।
कांस्यजारणकोष्ठ्यादि कपालोपि तथैव च ॥ ८ ॥

खर्परेति च नाम्ना वै गृहेप्याच्छाद्यते जनैः ।
संगवस्त्री क्वचिन्मूर्खैः खर्परे हि प्रकीर्त्तितः ॥ ९ ॥
परं रसादिकार्येषु खनिजः खर्परः स्मृतः ।
शास्त्रे तु तुत्थभेदो वा भेदो वा यशदस्य च ॥ १० ॥

हे वत्स ! अब तुम खपरियेके विषयमें सुनो । यद्यपि कांसी, पीतल तथा ढालनेकी कठाली आदिको भी खपरिया कहते हैं, और मट्टीके कपाल तथा ठीकडीको भी खर्पर कह सकते हैं, इसी प्रकार घरोंमें जो खपडे छाये जाते हैं उनको भी खर्पर कहते हैं कही संगवस्त्रीही खपरिया होता है मूर्खलोग ऐसा कहते हैं परन्तु रसादिकार्योंमें खानसे पैदा हुए खपरियेको लेना चाहिये । इस खपरियेके विषयमें शास्त्रोंमें दो प्रकारके लेख मिलते हैं कोई इसको जसदका भेद मानते हैं कोई नीलेथोथेका भेद मानते हैं ॥ ८–१० ॥

शुल्बखर्परसंयोगे जायते पित्तलं शुभम् ।
सत्त्वं च खर्परस्यैतन्नागरूपं पतत्यधः ॥ ११ ॥
इत्यादिबहुवाक्यैश्च यशदोयं प्रकीर्तितः ।
परं त्वग्निगतोऽत्यर्थं दह्यते क्षणमात्रतः ॥ ॥ १२ ॥
रसश्च रसकश्चोभौ येनाग्निसहनौ कृतौ ।
इत्यादिबहुवाक्यैश्च तुत्थभेदो हि दृश्यते ॥ १३ ॥
मन्मते खनिजश्चात्र तुत्थभेदो हि वै शुभः ।
पीताभो मृत्तिकाकारः श्रेष्ठः स्यात्स तु पत्तलः ॥ १४ ॥
तदभावे गुडाभो यत्तदभावेऽचाश्मसन्निभः ।
यत्राभावो त्रयाणां हि यशदस्तत्र योजयेत् ॥ १५ ॥

अब रहा यह विवाद कि इन दोनोंमें कौनसा खर्पर लेना चाहिये अथवा खर्पर निर्णीत रूपसे कौनसा है । कहीं तो लिखा है " कि तांबे और खपरियेके संयोगसे सुंदर पीतल बनजाता है " और खपरियेका सत्त्व नाग (सिक्के, सीसे) के समान नीचे गिरजाता है । ऐसे ऐसे अनेक वाक्योंसे तो यशदही खपरिया है ऐसा सिद्ध होता है । परंतु " अग्निमें रखनेसे शीघ्रही जलजाता है या उडजाता है " पारद और खपरिया जिसने अग्नि सहन बना लिये वह योग्य वैद्य है । इत्यादि बहुतसे वाक्योंसे खपरिया तुत्थका भेदही प्रतीत होता है । सो जहांतक

मैं समझता हूँ खानिज (खानसे पैदा हुवा खपरिया जिसको तुत्थका भेद माना है वही) श्रेष्ठ है क्योंकि शास्त्रोंमें लिखा है कि जो खपरिया पीले वर्णका पपडी दार मट्टीके समान होता है वह श्रेष्ठ होता है । यदि यह न मिले तो गुडके समान जो खपरिया निकलता वह ले इसके अभावमें पत्थरके समान वर्णवाला लेवे । यदि यह तीनों न मिलें तो यशदको शोधित कर भस्म बनाकर डालना चाहिये ॥ ११-१५ ॥

रसकभेदादिवर्णनम् ।

रसको द्विविधः प्रोक्तो दर्दुरः कारवेल्लकः ।
सदलो दर्दुरः प्रोक्तो निर्दलः कारवेल्लकः ॥
सत्त्वपाते शुभः पूर्वो द्वितीयश्चौषधादिषु ॥ १६ ॥

खपरिया दो प्रकारका होता है पहला दर्दुर और दूसरा कारवेल्लक इन दोनोंमेंसे जो दलदार होताहै वह दर्दुर कहाता है और जो विना दलका होता है वह कारवेल्लक कहाता है । सत्त्व निकालनेके लिये दर्दुर श्रेष्ठ है और औषध आदिके कार्यमें निर्दल उत्तम माना गया है ॥ १६ ॥

अन्यच्च ।

पीतः कृष्णस्तथा रक्तः क्वचित्संदृश्यते भुवि ।
नागार्जुनेन संदिष्टौ रसश्च रसकावुभौ ॥ १७ ॥

पृथ्वीमें कहीं २ पीला, काला और लाल रंगका खपरिया देख पडता है, नागार्जुन आचार्यने खपरियाके दो भेद कहे हैं पहला रसक और दूसरा कलंबुक ॥ १७ ॥

रसकविषये रसदर्पणकारमतम् ।

मृत्पाषाणगुडैस्तुल्यास्त्रिविधो रसको मतः ।
पीतस्तु मृत्तिकाकारः श्रेष्ठः स्यात्स तु पत्तलः ।
गुडाभो मध्यमः स्थूलः पाषाणाभः कनिष्ठकः ॥ १८ ॥

खपरिया मिट्टी, पत्थर और गुडके समान होनेसे तीन प्रकारकी होती है इनमेंसे मिट्टीके आकार पीली और पत्रयुक्त खपरिया उत्तम है, जो गुडके समान है वह मध्यम है और जो पत्थरके तुल्य स्थूल है वह अधम है ॥ १८ ॥

रसपद्धतिकारस्तु ।

रसकं तुत्थभेदः स्यात्खर्परं चापि तत्स्मृतम् ।
ये गुणास्तुत्थके प्रोक्तास्ते गुणा रसके स्मृताः ॥ १९ ॥

रसक नीलाथोथेका ही एक भेद है इसे खर्पर भी कहते हैं । जो गुण नीला-थोथेमें हैं वही गुण रसक अर्थात् खपरियामें भी हैं ॥ १९ ॥

रसकगुणाः ।

रसकः सर्वमेहघ्नः कफपित्तविनाशनः ।
नेत्ररोगक्षयघ्नश्च लोहपारदरंजनः ॥ २० ॥

खपरिया सम्पूर्ण प्रमेह, कफरोग, पित्तरोग, नेत्ररोग और क्षयीरोगको नष्ट करता है तथा लोह और पारदका रंजन करनेवाला है ॥ २० ॥

रसकशोधनम् ।

कटुकालाबुनिर्यासैरालोड्य रसकं पचेत् ।
शुद्धं दोषविनिर्मुक्तं पीतवर्णं तु जायते ॥ २१ ॥

खपरियाको कडवी तूँबीके रसमें मिलाकर पकानेसे दोष रहित शुद्ध पीले रंगकी होजाती है ॥ २१ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

पुंसां च मूत्रे रसकस्य चण गोमूत्रके सप्त पचेद्दिनानि ।
एवं हि दोलावरयन्त्रशुद्धः संयोजनीयः सकले तु कार्ये ॥ २२ ॥

दूसरा प्रकार–मनुष्य अथवा गौके मूत्रमें सात दिन पर्यन्त खपरियाको दोला-यन्त्रके द्वारा पकावे तो शुद्ध होजाती है। इस शुद्ध खपरियाको समस्त कार्योंमें युक्त करे ॥ २२ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

खर्परः परिसंतप्तः सप्तवारं निमज्जितः ।
बीजपूररसस्यान्तर्निर्मलत्वं समश्नुते ॥ २३ ॥

तीसरा प्रकार–खपरियाको अग्निमें तपा तपाकर बिजौरा नींबूके रसमें सात वार बुझावे तो शुद्ध होजाती है ॥ २३ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

नृमूत्रे वाश्वमूत्रे वा तक्रे वा कांजिकेऽथवा ।
वृन्ताकमूषिकामध्ये निरुध्य गुटिकाकृतिम् ॥ २४ ॥
ध्मातांध्मातां समाकृष्य प्राक्षिप्य च शिलातले ।
प्रताप्य मज्जितः सम्यक्खर्परः परिशुद्ध्यति ॥ २५ ॥

चौथा प्रकार,--मनुष्य वा घोडेके मूत्रमें अथवा छाँछ तथा कांजीमें खपरियाको पीसकर गोला बनालेवे और बैंगनके आकारके सदृश मूषा बना उसमें इस गोलेको रख कपरमिट्टी करके बंद करदेवे, फिर अग्निमें पकावे तत्पश्चात् मूषासे अलग निकाल कर पत्थरपर डालदेवे और अग्निमें तपातपाकर फिर पूर्ववत् मूत्र, छाँछ और कांजीमें डुबावे इसी रातिस कई वार इस क्रियाको करे तो खपरिया शुद्ध होजाती है ॥ २४ ॥ २५ ॥

रसरसकस्थैर्यकृतः प्रशंसा ।

रसश्च रसकश्चोभौ येनाग्निसहनौ कृतौ ।
देहलोहमयी सिद्धिर्दासी तस्य न संशयः ॥ २६ ॥

जिस वैद्यने पारा और खपरिया इन दोनोंको अग्निस्थायी करालिया उसका शरीर लोहेके तुल्य दृढ होजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥

ताम्रादिषु स्वर्णतुल्यवर्णानयनार्थं रसकसंस्कारः ।

नरमूत्रे स्थिता मासं रसको रंजयेद्ध्रुवम् ।
शुद्धताम्रं रसं तारं शुद्धस्वर्णप्रभं यथा ॥ २७ ॥

एक मास पर्यन्त मनुष्यके मूत्रमें खपरियेको डुबाय रक्खे तो शुद्ध ताँबा, पारा और चाँदीको शुद्ध सानेक तुल्य रंगसे युक्त करता है ॥ २७ ॥

टोडरानन्दसम्मतिः ।

अस्थिरोऽग्निगतोऽत्यर्थं दह्यते क्षणमात्रतः ।
तस्य स्थैर्यकरं द्रव्यं नान्यदस्तीति भूतले ॥ २८ ॥

खपरियाके विषयमें टोडरानन्दकी यह सम्मति है कि, अग्निमें स्थिर न रहना तथा क्षणमात्रमें ही फुँकजाना यह सब खपरियाके गुण हैं । पृथ्वीमें इसको अग्निस्थायी करनेवाली अन्य औषध नहीं है ॥ २८ ॥

तदुक्तरसकस्थैर्यकरणविधिः ।

शुद्धं किंचुलजं सत्त्वं तद्रसर्वापि मर्दितम् ।
स्थैर्यं भजेत्सरसको नान्यैः कोटिशतैरपि ॥ २९ ॥

शुद्ध केंचुएके सत्त्वको केंचुएके रसमें घोटे और खपरिया सहित इसको अग्निमें रक्खे तो खपरिया अग्निस्थायी होवे इसके अतिरिक्त यदि अन्य कोटिशः उपाय किये जावें तो भी खपरिया अग्निस्थायी नहीं होती ॥ २९ ॥

रसकसत्त्वपातनविधिः ।

हरिद्रात्रिफलारालसिन्धुधूमैः सटंकणैः ।
भल्लातयुक्तैः पादांशैः साम्लैः संमर्द्य खर्परम् ॥ ३० ॥
लिप्तं वृन्ताकमूषायां शोषयित्वा निरुध्य च ।
मूषामुखोपरि न्यस्य खर्परं प्रधमेत्ततः ॥ ३१ ॥
खर्परे भवति ज्वाला सा नीलाभा सिता यदि ।
तदा संदंशतो मषां नीत्वा कृत्वा ह्यधोमुखीम् ॥ ३२ ॥
शनैरास्फालयेद्भूमौ यथा नालं न भज्यति ।
वंगाभं पतितं सत्त्वं समादाय नियोजयेत् ॥
एवं द्वित्रिचतुर्वारैः सर्वसत्त्वं विनिस्सरेत् ॥ ३३ ॥

जितनी खपरिया हो उसका चौथाई भाग हल्दी, हरड, बहेडा, आँवला, राल, सेंधानोन, मनशिल, सुहागा और भिलावाँ इन सबोंको लेकर नींबूके रसमें अच्छे प्रकार घोटकर पिट्ठी बनालेवे और उस पिट्ठीको वृन्ताकमूषामें रख धूपमें सुखालेवे, तत्पश्चात् मूषाके मुखको बंद करके आँचमें रख बंकनालसे धोंके और जब खपरियामें सफेद नीली तथा पीले रंगकी ज्वाला निकलें तब सावधानीसे मूषाको सँडासीसे पकडकर पृथिवीपर इस प्रकार धीरेसे उलटे कि, जिसमें सत्त्वकी नली न टूटे तदनन्तर राँगेके तुल्य निकलेहुए उस सत्त्वको लेकर कार्यमें उपयोग करे। इसी रीतिसे दो तीन या चार वारमें सब सत्त्व निकाल लेवे॥३०-३३॥

द्वितीयः प्रकारः ।

यद्वा जलयुतां स्थालीं निखनेत्कोष्ठिकोदरे ।
सच्छिद्रं तन्मुखे मल्लं तन्मुखेऽधोमुखीं क्षिपेत् ॥ ३४ ॥
मूषोपरि शिखिश्चात्र प्राक्षिप्य प्रधमेद्दृढम् ।
पतितं स्थालिकानीरे सत्त्वमादाय योजयेत् ॥ ३५ ॥

दूसरा प्रकार,-किसी शुद्ध स्थालीमें जल भरकर कोष्ठिकाके बीचमें गढा करके अच्छे प्रकार गाडदेवे और स्थालीक मुखको छिद्रयुक्त शरवासे ढाँक सन्धियोंको बन्द करदेवे तत्पश्चात् पूर्वोक्त हरिद्रा, त्रिफला आदि औषधोंसे संयुक्त खपरियाके गोलेको मूषामें रक्खे और मूषाका मुख नीचेकी ओर करके मुख बन्द की हुई उसी

स्थालीके मुखमें रखदेवे, पीछे मूषाके ऊपर अग्नि रख खूब धमें तो सत्त्व टपक-टपककर स्थालीके पानीमें गिरेगा इस सत्त्वको लेकर काममें लावे ॥ ३४ ॥३५ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

लाक्षागुडासुरीपथ्या हरिद्रासर्जटंकणैः ।
सम्यक्संचूर्ण्य तत्पक्कं गोदुग्धेन घृतेन च ।
सत्त्वं वंगाकृति ग्राह्यं रसकस्य मनोहरम् ॥ ३६ ॥

तीसरा प्रकार,-लाख, गुड, राई, हरड, हल्दी, राल, सुहागा इन सबको पीसकर खपरिया मिलावे तत्पश्चात् गौके दूध और घृतके साथ पकाकर अग्निमें फूँके तो राँगेके सदृश खपरियेका मनोहर सत्त्व निकलताहै ॥ ३६ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

साभयाजतुभूनागनिशाधूमजटंकणम् ।
मूकमूषागतं ध्मातं शुद्धं सत्त्वं विमुञ्चति ॥ ३७ ॥

हरड, लाख, केंचुए, हल्दी, धूमसा, सुहागा इन सब औषधोंको खपरियाके साथ मिलाकर अंधमूषामें रख अग्निमें पकावे तो खपरिया शुद्ध सत्त्वको छोडती है ॥ ३७ ॥

रसकभस्मविधिः ।

तत्सत्त्वं तालकोपेतं निक्षिप्य खलु खर्परे ।
मर्दयेल्लोहदण्डेन भस्मीभवति निश्चितम् ॥ ३८ ॥

पूर्वोक्त रीतिसे बनायेहुए खपरियाके सत्त्वमें हरिताल डालकर किसी दृढ खपरेमें लोहेके मूसलसे घोटे तो निस्सन्देह वह भस्म होजाता है ॥ ३८ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

खर्परं पारदेनैव चूर्णयित्वा दिनं पचेत् ।
वालुकायन्त्रमध्यस्थं शोभनं भस्म जायते ॥ ३९ ॥

पारेके साथ खपरियाको घोटकर बालुकायन्त्रमें एक दिन पकावे तो उत्तम भस्म सिद्ध होती है ॥ ३९ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

खर्परं पत्रकं कृत्वा लवणान्तर्गतं पचेत् ।
जायते शोभनं भस्म सर्वरोगापहं स्मृतम् ॥ ४० ॥

खपरियाके पत्र बनाकर नमकके बीचमें रखकर पकावे तो सब रोगोंको दूर करनेवाली उत्तम सिद्ध होजाती है ॥ ४० ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

वंदाले हंसपद्यं च वटार्कवज्रिदुग्धके ।
विमर्दयेत्खर्परं च सुवैद्यस्तु पृथक्पृथक् ॥ ४१ ॥
प्रत्येकमर्दनान्ते तु रचयित्वा सुचक्रिकाम् ।
शरावसंपुटे कृत्वा त्रित्रिवारं विपाचयेत् ॥ ४२ ॥

वंदाल, हंसपदीक रस तथा वड आक और थूहरके दूधमें अलग २ खपरियाको घोटे परन्तु प्रत्येक रस तथा दुग्धको घोटनेके अनन्तर टिकिया बना धूपमें सुखा शरावसंपुटमें रख तीन तीन बार पकालिया करे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

रसकस्याग्निस्थायित्वविधिः ।

कन्यकादलमादाय तद्दलं कारयेद् द्विधा ।
एकस्मिंस्तद्दले धृत्वा खर्परं माषवत्कृतम् ॥ ४३ ॥
द्वितीयमपरं दत्त्वोपरिष्टात्कन्यकादलम् ।
द्वितीयमपरं चास्ते यद्द्विधाकृतमस्तु तत् ॥ ४४ ॥
निरुध्य च दलं तत्तु खरमूत्रस्य मध्यगम् ।
क्रियत स्वेदनं तावद्यावन्मूत्रक्षयो भवेत् ॥ ४५ ॥
एवं दिनत्रयं शोधः क्रियते तद्दलस्य च ।
त्रिवारं क्रियतेप्येवं तद्दले खपरस्य च ॥ ४६ ॥
अक्लेशं जायते नूनमाग्निस्थायी च खर्परः ।
यदि वह्नौ विनिक्षिप्तः खर्परो धूमवान्भवेत् ॥ ४७ ॥
तदा पुनर्दले देयः खर्परो दृढतां व्रजत् ।
क्षारिकालवणे पश्चात्खर्परः पाच्यते पुनः ॥ ४८ ॥
दिनद्वयं भवेदेवं पातः खर्परकस्य च ।
पुनरग्नौ परीक्षेत खर्परं दृढमुत्तमम् ॥ ४९ ॥
यदि धमोद्गमो भूयात्खर्परः पाच्यते तदा ।

पुनरादीयते तत्र भूनागतनुजद्रवः ॥
भावयेत्पुटयेत्सप्तभावनाभिश्च खर्परम् ॥ ५० ॥

घीकुवारको लेकर उसकी दो फाँकें करे एकमें खपरियाके छोटे टुकडे करके रक्खे और दूसरेसे आच्छादित कर बाँध देवे पश्चात् गदहाके मूत्रमें स्वेदनयन्त्रके द्वारा जबतक मूत्र न सूखजावे तबतक स्वेदन करे इस प्रकार तीन दिन पर्यन्त स्वेदन करे और फिर खपरियाको घीकुवारके दलोंसे अलग निकाल घीकुवारके नये दलोंमें पूर्ववत् रखकर स्वेदन करना चाहिये । इसी प्रकार तीन बार अर्थात् नव दिन तक स्वेदन करे तो सुखपूर्वक खपरिया अग्निस्थायी होजाता है । इस सिद्ध किये हुए खपरियेको अग्निमें छोडे यदि धुआँ निकले तो फिर भी पूर्ववत् घीकु-वारके दलोंमें रख गदहाके मूत्रमें स्वेदन करे तो वह दृढ होजाताहै और यदि धुआँ न निकले तो उसको शुद्ध हुआ समझे अर्थात् उसको फिर स्वेदन करनेकी आवश्यकता नहीं है तत्पश्चात् दो दिन खारी नमकमें पकावे तो खपरिया मृत्युको प्राप्त होती है । इसको अग्निमें छोडकर परीक्षा करे यदि धुआँ निकले तो फिर खारी नमकमें पकावे तत्पश्चात् केंचुएकी अर्ककी सात भावना देवे और पकावे तो निस्सन्देह खपरिया अग्निस्थायी हो जाता है ॥ ४३–५० ॥

रसकगुणाः ।

त्रिदोषजित्पित्तकफातिसारक्षयज्वरघ्नो रसकोऽतिरूक्षः ।
नेत्रामयानां प्रकरोति नाशं स्याद्रंजकाकामलनाशनश्च॥५१॥

खपरिया त्रिदोष, पित्त, कफ, आतिसार, क्षयी और ज्वरको नाश करती है । यह अतिरूखी है, नेत्रोंके सम्पूर्ण रोगोंको दूर करती है, शरीरमें रंगको उत्पन्न करती है और कामलारोगको नाश करती है ॥ ५१ ॥

रसकसेवनविधिस्तद्गुणाश्च ।

तद्भस्ममृतकान्तेन समेन सह योजयेत् ।
अष्टगुंजामितं चूर्णं त्रिफलाक्काथसंयुतम् ॥ ५२ ॥
कांतपात्रस्थितं रात्रौ तिलजप्रतिवापकम् ।
निषेवितं निहन्त्याशु मधुमेहमपि ध्रुवम् ॥ ५३ ॥
पित्तक्षयं च पांडुं च श्वयथुं गुल्ममेव च ।
रक्तगुल्मं च नारीणां प्रदरं सोमरोगकम् ॥ ५४ ॥

योनिरोगानशेषांश्च विषमांश्च ज्वरानपि ।
रक्तशूलं च श्वासं च हिक्किनां च विशेषतः ॥ ५५ ॥

जितनी खपरियाकी भस्म हो उसमें उतनीही कान्त लोहकी भस्म मिलावे और आठ रत्ती इस मिश्रित चूर्णको त्रिफलाके काढे तथा तिलके तेलमें मिलाकर एक रात्रिभर कान्त लोहके पात्रमें रख छोडे तत्पश्चात् विधिपूर्वक इसका सेवन करनेसे मधुमेह, पित्तरोग, क्षयी, पांडु, शोफ, बायगोला, रक्त गुल्म, प्रदररोग, सोमरोग, समस्त योनिरोग, विषमज्वर, रजःशूल और श्वास रोगको शीघ्र नष्ट करती है। हिक्का रोगवालोंके लिये यह भस्म विशेषसे लाभ करती है॥५२--५५॥

अशुद्धखर्परदोषाः ।

अशुद्धः खर्परः कुर्याद्वान्तिं भ्रान्तिं विशेषतः ।
तस्माच्छोध्यः प्रयत्नेन यावद्वान्तिविवर्जितः ॥ ५६ ॥

विना शुद्ध की हुई खपरिया विशेषसे वमन और भ्रान्तिको उत्पन्न करती है इस कारण यह तबतक यत्नपूर्वक शोधने योग्य है जबतक कि, वान्तिदोषसे रहित न होवे ॥ ५६ ॥

खर्परदोषशान्त्युपायः ।

रसकनिषेवणतो यदि रोगाः प्रादुर्भवन्ति मनुजानाम् ।
ते नाशमाप्नुवन्ति सप्ताहात्पीतगोमत्रात् ॥ ५७ ॥

अशुद्ध खपरियाके सेवन करनेसे मनुष्योंके यदि रोग उत्पन्न होजायँ तो सात दिन पर्यन्त गौके मूत्रका पान करें वे सब रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ५७ ॥

एवं खर्परसंशुद्धिस्तथा तस्य विवेचनम् ।
अध्याये पञ्चविंशे तु विधिवत्तात वर्णितम् ॥ ५८ ॥

हे तात! इस प्रकार खपरियेकी शुद्धि और खपरिया क्या वस्तु है इसका समाधान इस पचीसवें अध्यायमें वर्णन करदिया है ॥ ५८ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
रसकवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः ।

अथातो शिलाजतुवर्णनं नाम षड्विंशाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब हम शिलाजतु वर्णन नामक छब्बीसवें अध्यायका कथन करते हैं ॥

गुरुरुवाच ।

अथ ते संप्रवक्ष्यामि वर्णनं वै शिलाजतोः ।
यस्य प्रयोगमात्राच्च दुष्टमेहोऽपि नश्यति ॥ १ ॥
नातः परतरं तात लोके कश्चिद्रसायनम् ।
हरते सर्वरोगांश्च दीर्घायुः प्रददाति च ॥ २ ॥

गुरुने कहा कि, अब हम शिलाजीतका वर्णन करते हैं, जिसके प्रयोगमात्रसे दुष्ट प्रमेह रोग भी नष्ट होजाता है । हे तात ! इससे बढकर लोकमें अन्य कोई रसायन नहीं है, ' यह सम्पूर्ण रोगोंको नाश करताहै और दीर्घायुको देनेवाला है ॥ १ ॥ २ ॥

शिलाजतूत्पत्तिः ।

महार्णवाम्भोऽमृतमंथनोत्थः स्वेदो गिरेर्योवगलत्ततः प्राक् ।
समन्दरस्यामृतमन्थनाच्च सोमेन संपर्कमियाय दिव्यम् ॥ ३ ॥
ब्रह्माणमिन्द्रं प्रतिपूज्य सम्यग्घिताय पुंसां प्रददौ नगेभ्यः ।
सोमोऽमृतं कल्पगुणं तु भूमौ शिलाजतु स्यादिति निर्विचिन्त्य ॥ ४ ॥
हितं प्रजानां सुखदं निदाघे नगात्स्रवेद्भास्करतापनाच्च ।
प्रभावतश्चोत्कटभारभावात्संसृज्यते येन च धातुना तत् ॥
तदात्मकं तं प्रवदन्ति तज्ज्ञास्तस्मात्परीक्षेत अनन्तवीर्यम् ॥ ५ ॥
सुवर्णरूप्यत्रपुसीसताम्रलोहात्खनेनैव मताः शिलाजः ।
समुद्भवं चास्य वदन्ति वैद्याः सर्वोत्तमं विंध्यनगोद्भवं च ॥ ६ ॥

देवता और दैत्योंने जब अमृत निकालनेके लिये मन्दरपर्वतकी मथानी बनाकर समुद्रको मथा तब उस मन्दराचलमें पसीना उत्पन्न हुआ और वह समुद्रमें गिरा फिर वही स्वेद जब समुद्रमथनेसे चन्द्रमाके समान दिव्य रूप प्रकट हुआ तब देवताओंने मनुष्योंके हितके लिये ब्रह्मा और इन्द्रका पूजन करके यह सोम पर्वतोंके लिये यह विचारकर देदिया कि, पृथिवीमें अमृतके समान

गुणकारक यह सोम शिलाजतु नामसे प्रसिद्ध हो, यह प्रजाका हित करनेवाला तथा सुखका देनेवाला है ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यकी प्रबल गरमीसे संतप्त होकर पर्वतोंसे बहताहै, यह पर्वतस्थ सोना, चाँदी, ताँबा आदि धातुओंसे स्रवता है इसी कारण इसमें भारी गुण है । सुवर्णादि धातुओंमेंसे जिससे इसकी उत्पत्ति हो तज्ज्ञ वैद्य तदात्मक इसके नाम भी कहते हैं अतः वैद्यको चाहिये कि, इस शिलाजीतकी परीक्षा करे क्यों कि, यह अनन्तवीर्यसे युक्त होता है वैद्यजन इसकी उत्पत्ति सोना, चाँदी, राँगा, सीसा, ताँबा और लोहेसे कहते हैं। विंध्याचल पर्वतसे उत्पन्न हुआ शिलाजीत अन्य पर्वतोंमें उत्पन्न हुए शिलाजीतोंसे श्रेष्ठ होता है ॥३--६ ॥

शिलाजतुभेदौ ।

शिलाजतु द्विधा प्रोक्तं गोमूत्राद्यं रसायनम् ।
कर्पूरपूर्वकं चान्यत्तत्राद्यं द्विविधं पुनः ॥
ससत्त्वं चाथ निःसत्त्वं तयोः पूर्व गुणाधिकम् ॥ ७ ॥

शिलाजतुके दो भेद हैं, पहला गोमूत्र शिलाजीत और दूसरा कपूर शिलाजीत इन दोनोंमेंसे आदिका गोमूत्र शिलाजीत रसायन है और वह दो प्रकारका होता है पहला सत्त्वसहित, दूसरा सत्त्वरहित इनमेंसे सत्त्वसहित श्रेष्ठ होता है ॥ ७ ॥

अन्येतु-

शिलाजतु द्विधा ज्ञेयं तत्राद्यं गिरिसंभवम् ।
द्वितीयं स्यादूषरायां मृत्तिकाजलयोगतः ॥ ८ ॥

शिलाजतु दो प्रकारका होता है, पहला पहाडोंसे उत्पन्न होता है और दूसरा ऊषर भूमिमें मिट्टी और जलके संयोगसे बनता है ॥ ८ ॥

अन्यच्च ।

ग्रीष्मे तीव्रार्कतप्तेभ्यो गर्तेभ्यः किल भूभृताम् ।
स्वर्णरूप्यार्कगर्भेभ्यो शिलाधातुर्विनिस्सरेत् ॥ ९ ॥

ग्रीष्म ऋतुमें तीव्र सूर्यकी किरणोंसे संतप्त सोना, चाँदी और तांबेकी खान-वाले पहाडोंसे शिलाजीत निकलता है ॥ ९ ॥

अन्यच्च ।

निदाघे घर्मसंतप्ता धातुसारं धराधराः ।
निर्यासवत्प्रमुञ्चन्ति शिलाजतुसमीरितम् ॥ १० ॥

ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यकी गरमीसे तप्त हुए पर्वत धातुओंके साररूप तथा गोंदके समान जिस पतले पदार्थको छोडते हैं उसको शिलाजीत कहते हैं ॥ १० ॥

शिलाजतुनश्चतुर्विधत्ववर्णनम् ।

सौवर्णं राजतं ताम्रमायसं च चतुर्विधम् ।
शिलाजतु हि विज्ञेयं तत्तल्लक्षणलक्षितम् ॥ ११ ॥

शिलाजीत चार प्रकारका होता है, सौवर्ण, राजत, ताम्र और आयस । यह क्रमसे सोना, चाँदी, ताँबा और लोहेकी खानवाले पर्वतोंसे उत्पन्न होते हैं । इन सबोंमें जिसमें जिस धातुके लक्षण मिलें उसे उसी धातुका सार अर्थात् शिलाजीत समझना चाहिये ॥ ११ ॥

कांचनशिलाजतुलक्षणम् ।

स्वर्णगर्भगिरेर्जातं जपापुष्पनिभं गुरु ।
मधुरं कटुतिक्तं च शीतलं च रसायनम् ॥ १२ ॥

सुवर्णकी खानसे उत्पन्न शिलाजीत गुडहरके फूलके सदृश लाल और भारी होता है स्वादमें मधुर कडवा और तीखा है शीतल है, रसायन है ॥ १२ ॥

अन्यच्च ।

मधुरं च सतिक्तं च जपापुष्पनिभं च यत् ।
स्निग्धं घनं गैरिकाभं सुशीतं कांचनात्स्रुतम् ॥ १३ ॥

सोनेके खानसे उत्पन्न शिलाजीत स्वादमें मधुर तथा कडवा है, रंग इसका गुडहरके फूलके समान लाल है, स्निग्ध है, घन है, गेरूकीसी कान्तिसे युक्त और शीत गुणवाला है ॥ १३ ॥

रौप्यशिलाजतुलक्षणम् ।

रूप्यगर्भगिरेर्जातं मधुरं पाण्डुरं गुरु ।
शिलाजं कफवातघ्नं तिक्तोष्णं क्षयरोगजित् ॥ १४ ॥

चांदीकी खानवाले पहाडसे पैदा हुआ शिलाजीत मधुर है, पीले रंगसे युक्त तथा भारी है, कफ और वातको नष्ट करता है, तीखा और गरम है, क्षयीरोगको दूर करता है ॥ १४ ॥

अन्यच्च ।

रौप्याकरादिन्दुमृणालवर्णं सक्षारकट्वम्लरसं विदाहि ।
मेहामजीर्णज्वरपाण्डुशोषप्लीहाढ्यवातं शमयेद्धि सद्यः ॥ १५ ॥

चांदीकी खानवाले पर्वतसे उत्पन्न हुआ शिलाजीत चन्द्रमा और कमलनालके सदृश स्वच्छ तथा सफेद रंगवाला होता है, खारी, तीखा और खट्टा है, विदाही है, प्रमेह अजीर्ण ज्वर, पाण्डुरोग, शोषरोग पिलही और बादीको शीघ्रही नाश करता है ॥ १५ ॥

ताम्रशिलाजतुलक्षणम् ।

ताम्रगर्भगिरेर्जातं नीलवर्णं घनं गुरु ।
मयूरकंठसदृशं तीक्ष्णमुष्णं च जायते ॥ १६ ॥

तांबेकी खानवाले पर्वतसे पैदा हुआ शिलाजीत नीलेरंगवाला तथा घन और भारी होता है, मयूरकंठके सदृश कान्तिसे युक्त, तीखा और गरम होताहै ॥१६॥

अन्यच्च ।

मयूरकंठोपमचाषपक्षवर्णं सतिक्तं कटु चापि ताम्रम् ।
तिक्तं ह्यनुष्णं च सुलेखनं च मेहाम्लपित्तज्वरशोषहारि ॥ १७ ॥

जिसका रंग मोरके कंठ वा पपैयाके पंखोंके तुल्य हो, तीखा तथा कडवा हो, अनुष्ण और लेखन हो प्रमेह अम्लपित्त, ज्वर और शोषरोगका नाशक हो वह ताम्रशिलाजतु कहाता है ॥ १७ ॥

लौहशिलाजतुलक्षणम् ।

लौहं जटायुपक्षाभं तिक्तकं लवणं भवेत् ।
विपाके कटुकं शीतं सर्वश्रेष्ठमुदाहृतम् ॥ १८ ॥

लोहकी खानवाले पर्वतसे उत्पन्न हुआ शिलाजीत गीध पक्षीके पंखके सदृश रंगवाला होता है, तीखा है, नमकीन है, विपाकमें कटु है, शीत है और सबोंमें श्रेष्ठ है ॥ १८ ॥

अन्यच्च ।

गोमूत्रगंधि कृष्णं गुग्गुल्वाभं विशर्करं मृत्स्नम् ।
सिद्धमनल्पकषायं कृष्णायसजं शिलाजतु वरम् ॥ १९ ॥

जो गौके मूत्रके समान गंधवाला तथा कालेरंगसे युक्त हो, गूगलके तुल्य कान्तिवाला हो, कंकड रहित मिट्टीके समान शुद्ध और थोडा कषैला हो वह लोहशिलाजतु कहाता है यह श्रेष्ठ होता है ॥ १९ ॥

वंगशिलाजतुलक्षणम् ।

किञ्चित्सतिक्तं कटुसान्द्रमृत्स्नं त्रपुप्रसूतं त्रपुवर्णगन्धम् ।
शोथप्रमेहज्वरशोषहारि शीताम्लपित्तं विनिहन्ति सद्यः ॥ २० ॥

जो कुछ कटु और तीखा हो, सान्द्र जिसकी मिट्टी हो, रांगेके समान वर्णसे युक्त और गंधवाला हो उस शिलाजीतको वंगकी खानवाले पर्वतोंसे उत्पन्न हुआ जानना चाहिये । यह शोफरोग, प्रमेह, ज्वर, शोषरोग, शीत और अम्लपित्तको शीघ्रही नष्ट करता है ॥ २० ॥

नागशिलाजतुलक्षणम् ।

नागात्सतिक्तं मृदु चोष्णवीर्यं वर्णादतः स्यात्कुसुमेन तुल्यम् ।
रसेन स्यात्कटुकप्रधानं वर्णौजतेजः प्रबलं ददाति ॥ २१ ॥

सीसेकी खानवाले पर्वतोंसे उत्पन्न शिलाजीत तीखा, नरम, उष्णवीर्य, कुसुम पुष्पके समान रंगसे युक्त होता है, इसमें कडवा रस मुख्य है, यह वर्ण, ओज और तेजको देता है ॥ २१ ॥

वातपित्तादिभेदेन शिलाजस्योपयोगवर्णनम् ।

वातपित्ते तु सौवर्णं श्लेष्मपित्ते तु राजतम् ।
ताम्रजं कफरोगेषु लोहजं तत्रिदोषनुत् ॥ २२ ॥

वातपित्त जनित रोगोंमें सौवर्णशिलाजीत, कफपित्त जनित रोगोंमें राजत शिलाजीत, कफज रोगोंमें ताम्रज शिलाजीत, और त्रिदोषमें लोहज शिलाजीत सेवन करना चाहिये ॥ २२ ॥

शिलाजतुशोधनविधिः ।

तच्छोधनमृते व्यर्थमनेकमललेपनात् ।
शिलाजतु समानीय लोहजं लक्षणान्वितम् ॥
बहिर्मलमपाकर्तुं क्षालयेत्केवलाम्बुना ॥ २३ ॥
लौहे स्थितं निम्बगुडूचिसर्पिषा पुटैर्यथावत्परिभावयेत्तत् ।
संतानिकाकीटपतंगदंशदुष्टौषधीदोषनिवारणाय ॥ २४ ॥

अनेक मलोंके मेल होनेसे विना शोधन किया हुआ शिलाजीत व्यर्थ है इस कारण लोहेकी खानवाले पर्वतसे उत्पन्न सर्वलक्षणोंसे युक्त शिलाजीतको लाकर बाहरके मल दूर करनेके लिये केवल जलसे धोडाले जब यह शिलाजीत गरमीमें पहाडोंसे निकलता है उस समय मकडी, कीट, पतंग, मच्छर और दुष्ट औषध आदिका मेल होजानेसे वह दोषयुक्त होजाता है अतः उन दोषोंकी निवृत्तिके लिये शिलाजीतको लोहेके पात्रमें रखकर नीम, गिलोय और घीकी भावना देवे तो शुद्ध होजाता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

द्वितीयः प्रकारः।

उष्णे च काले रवितापयुक्ते व्यभ्रे निवाते समभूमिभागे।
चत्वारि पात्राण्यपि चायसानि न्यस्तानि तत्रापि कृतावधानः॥ २५॥
शिलाजतु श्रेष्ठमवाप्य पात्रे प्रक्षिप्य तस्माद्द्विगुणं च तोयम्।
उष्णं तदर्द्धं कथितं च दत्त्वा विशोषयेत्तन्मृदितं यथावत्॥ २६॥
सुवस्त्रपूतं प्रविधाय तत्तु संस्थापनीयं पुनरेव तत्र।
ततस्तु यत्कृष्णमतीव चोर्ध्वं संतानिकावद्रविरश्मितप्तम्॥ २७॥
पात्रात्तदन्यत्र ततो निदध्यात्तस्यान्तरे चोष्णजलं निधाय।
ततश्च तस्मादपरत्र पात्रे तस्माच्च पात्रादपरत्र भूयः॥ २८॥
पुनस्ततोऽन्यत्र निधाय कृत्स्नं यत्संहृतं तत्पुनराहरेच्च।
यदा विशुद्धं जलमच्छमूर्द्धं प्रसन्नभावान्मलमेत्यधस्तात्॥ २९॥
तदा तु त्याज्यं सलिलं मलं हि शिलाजतु स्याज्जलशुद्धमेव।
चतुर्थपात्राद्गलितं हि सर्वं परीक्षणीयं खलु वैद्यवर्यैः॥ ३०॥

ग्रीष्म ऋतुमें जिस दिन तेज धूप हो और आकाश मेघोंसे आच्छादित न हो, वायु न चलता हो उस दिन सम पृथिवीमें लोहेके चार पात्र रक्खे तो भी सावधान रहे। चारों पात्रोंमेंसे किसी एक पात्रमें उत्तम शिलाजीतके टुकडे २ करके छोड देवे और उसीमें शिलाजीतका दुगुना जल डाले और उससे आधा गरम पानी डाल हाथसे धीरे धीरे मलकर कपडेमें छानलेवे, इस छनेहुए जलको उसी लोहेके पात्रमें भरकर धूपमें रखदेवे तत्पश्चात् सूर्यकी तेज धूपसे संतप्त होकर उस पात्रस्थित शिलाजतु मिश्रित जलके ऊपर जब अत्यन्त काले रंगकी मलाई पडजावे तब उसको उतारकर दूसरे लोहेके पात्रमें रखता जाय, जब तक मलाई उसमें पडती रहे तब तक इसी प्रकार उस मलाईको उतार उतार कर दूसरे पात्रमें रखतारहे जब मलाई जमना बंद होजावे तब दूसरे पात्रमें अब तक नितार २ कर जो मलाई जमा की है उसमें गरम पानी छोडकर तेज धूपमें रखदेवे और इसमें भी जब तक मलाई जमती जाय तब तक तीसरे लोहपात्रमें रखताजाय तदनन्तर इसमें पात्रस्थित मलाईमें गरम जल छोडकर तेज धूपमें रखदेवे और पहलेकी तरह मलाई उतार २ कर लोहेके चौथे पात्रमें रखताजाय जब मलाई जमना बंद होजाय तब चौथे पात्रमें रक्खी हुई मलाईमें भी गरम जल छोडकर तेज धूपमें रखदेवे और पूर्ववत् मलाई उतार २ पहले लोहपात्रमें

रक्खे । इसी प्रकार चार पाँच बार करे जब पात्रमें जल स्वच्छ रहे तब जाने कि शिलाजीत शुद्ध होगया, उस पानीको बाहर फेंकदेवे और पात्रसे शिलाजीतको निकालकर आगे कही हुई रीतिसे श्रेष्ठ वैद्य उसकी परीक्षा करे ॥ २९-३० ॥

तृतीयः प्रकारः ।

शिलाजतु समानीय ग्रीष्मे तप्तं शिलाच्युतम् ।
गोदुग्धैस्त्रिफलाक्काथैर्भृंगद्रावैश्च मर्दयेत् ॥ ३१ ॥
आतपे दिनमेकैकं तच्छुष्कं शुद्धतां व्रजेत् ।
अयं तु सुगमोपायो दुष्करा इतरे भुवि ॥ ३२ ॥

ग्रीष्म ऋतुमें जब बहुत गरमी पडती है उस समय पहाडोंसे जो शिलाजीत स्रवता है उसको लाकर गौके दूधमें घोटकर धूपमें एक दिन सुखालेवे तदनन्तर त्रिफलाके काढे और भाँगरेके रसमें अलग २ घोटकर एक एक दिन धूपमें सुखावे तो वह शुद्ध होजाता है इसके शुद्ध करनेका सुगम उपाय तो यही है और कठिन उपाय तो पृथ्वीमें बहुत हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

मुख्यां शिलाजतुशिलां सूक्ष्मखण्डप्रकल्पिताम् ।
निःक्षिप्यात्युष्णपानीये यामैकं स्थापयेत्सुधीः ॥ ३३ ॥
मर्दयित्वा ततो नीरं गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् ।
स्थापयित्वा च मृत्पात्रे धारयेदातपे बुधः ॥ ३४ ॥
उपरिस्थितं घनं चास्य तत्क्षिपेदन्यपात्रके ।
धारयेदातपे धीमानुपरिस्थं घनं नयेत् ॥ ३५ ॥
एवं पुनः पुनर्नीत्वा द्विमासाभ्यां शिलाजतु ।
भूयात्कार्यक्षमं वह्नौ क्षिप्तं लिङ्गोपमं भवेत् ॥ ३६ ॥
निर्धूमं च ततः शुद्धं सर्वकर्मसु योजयेत् ।
अधःस्थितं च यच्छेषं तस्मिन्नीरं विनिक्षिपेत् ।
विमर्द्य धारयेद्धर्मे पूर्ववच्चैव तन्नयेत् ॥ ३७ ॥

मुख्य शिलाजीतके छोटे२ टुकडे करके लोहपात्रमें स्थित अत्यन्त गरम जलमें डालदेवे और एक प्रहर तक रक्खा रहने देवे तत्पश्चात् उसको हाथसे अच्छे

प्रकार मलकर कपडेमें छानलेवे इस छने हुए जलको किसी शुद्ध मिट्टीके कोरे पात्रमें भरकर तेज धूपमें रखदेवे और इसमें जब मलाई जमजावे तब दूसरे मिट्टीके पात्रमें उस मलाईको उतार कर रक्खे जबतक मलाई जमना बंद न हो तबतक उतार २ रखतारहे जब मलाई इकट्ठी होजावे तब उसमें गरम पानी डालकर हाथसे खूब मलकर कपडेमें छानलेवे और तेज धूपमें रखदेवे और इसमें जो मलाई जमें उसको तीसरे पात्रमें रखताजाय इसी प्रकार दो मास पर्यन्त बार २ करे तो कार्यके योग्य शिलाजीत सिद्ध होजाताहै । इसको अग्निमें छोडे यदि लिङ्गके सदृश ऊँचा होजावे, और धूमरहित हो तो शुद्ध जानना चाहिये । इसे सब कर्मोंमें योजना करे । तत्पश्चात् पात्रमें नीचे जो शिलाजीत शेष रहगया हो उसमें गरम पानी डालकर मले और तेज धूपमें रख पूर्ववत् मलाई उतारलेवे ॥ ३३--३७ ॥

शुद्धशिलाजतुसंस्कारः सेवनविधिश्च ।

त्रिफलावारिगोदुग्धमूत्रैर्भाव्यं शिलाजतु ।
स्वल्पं स्वल्पं विधानेन स्थापयेत्काचभाजने ॥ ३८ ॥
अगुर्वादिशुभैर्धूपैर्धूपयेत्तत्प्रयत्नतः ।
मात्रया सितया पश्चात्स्निग्धं शुद्धं यथाविधि ॥ ३९ ॥
एकत्रिसप्तसप्ताहं कर्षमर्द्धपलं पलम् ।
हीनमध्योत्तमो योगो शिलाजस्य क्रमाद्यतः ॥ ४० ॥
क्षीरेणालोडितं कुर्याच्छीघ्रं रसफलप्रदम् ।
हन्याद्रोगानशेषांश्च जीर्णहानि मिताशनः ॥ ४१ ॥

पूर्वोक्त प्रकारसे शुद्ध किये शिलाजीतमें त्रिफलाके काढे और गौके दूध तथा मूत्रकी अलग २ भावना देवे तत्पश्चात् थोडा २ किसी शुद्ध काचके पात्रमें भरदेवे और प्रयत्नसे अगर आदिकी धूपसे धूपदेवे तदनन्तर स्निग्ध तथा वमन और विरेचनसे शुद्ध किये मनुष्यको मात्रासे दूध और मिश्रीके साथ इस शिलाजीतको एक दिन वा इक्कीस दिन वा सात दिन पर्यन्त सेवन करनेके लिये देवे । इसकी मात्रा एक कर्ष हीन, अर्द्धपल मध्यम और एक पल उत्तम मानी गयी है । इसका विधिपूर्वक सेवन करे तो सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करे और शीघ्र इसका फल देवे । औषध पचजाने पर परिमित भोजन करे ॥ ३८--४१ ॥

शुद्धशिलाजतुपरीक्षा ।

वह्नौ क्षिप्तं तु निर्धूमं पक्कं लिङ्गोपमं भवेत् ।
तृणाग्रेणांभसि क्षिप्तमधोगलति तंतुवत् ॥ ४२ ॥

गोमूत्रगंधं मलिनं शुद्धं ज्ञेयं शिलाजतु ।
एतस्य विपरीतं यत्तदशुद्धं शिलाजतु ॥ ४३ ॥

यदि अग्निमें छोडाहुआ शिलाजीत पककर धूमसे रहित तथा लिङ्गके समान ऊपरको उठे, और उस तृणके अग्रभाग पर रख पानीमें छोडे यदि वह तन्तुओंके सदृश फैलकर नीचे बैठजावे और गौके मूत्रके तुल्य गंधसे युक्त, तथा मलिन हो तो उसे शुद्ध जानना और यदि पूर्वोक्त लक्षणोंसे विपरीत लक्षण हों तो अशुद्ध जानना ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

विशेषपरीक्षा ।

दुग्धो यस्य योगाद्धि विकृतिं चाम्लकैर्भजेत् ।
सर्वयोगेषु योक्तव्यमुत्तमं तच्छिलाजतु ॥
कृत्रिमेपि यतो दृष्टं लिङ्गाकाराश्च तन्तवः ॥ ४४ ॥

एक पाव दूधमें तीन मासे शिलाजीत मिलाकर एक तोला सिर्का डालदेवे यदि दूध न फटे तो उत्तम शुद्ध शिलाजीत समझना । इसीको प्रत्येक योगमें लेना चाहिये क्योंकि अग्निपर छोडनेसे लिङ्गाकार और पानीमें डालनेसे तंतुके तुल्य होना तो हमने कृत्रिम शिलाजीतमें भी देखा है ॥ ४४ ॥

शिलाजतुगुणाः ।

रसोपरससूतेन्द्ररत्नलोहेषु ये गुणाः ।
वसन्ति ते शिलाधातौ जरामृत्युजिगीषया ॥ ४५ ॥
शिलाजं कटुतिक्तोष्णं कटुपाकं रसायनम् ।
छर्दिरोगं तथा हन्ति कम्पमेहाश्मशर्कराः ॥ ४६ ॥
मूत्रकृच्छ्रं क्षयं श्वासं वातमर्शांसि पाण्डुताम् ।
अपस्मारमथोन्मादं शोफकुष्ठोदरकृमीन् ॥ ४७ ॥

वृद्धावस्था और मृत्युको जीतनेवाले जो २ गुण रस, उपरस, पारद, रत्न और सुवर्णादि आठ प्रकारके लोहोंमें विद्यमान हैं वही सब गुण शिलाजीतमें भी रहते हैं । यह शिलाजीत तीखा, कडवा और गरम है पाक समयमें कटु है, रसायन है । विधिपूर्वक सेवन करनेसे छर्दिरोग, कंप, प्रमेह, पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, क्षयी, श्वास, बादी, बवासीर, पांडुरोग, मृगी, उन्माद, सूजन, कुष्ठ-रोग, उदररोग और कृमिरोगको नष्ट करताहै ॥ ४५-४८ ॥

शिलाजतुभस्मप्रशंसा।

असाध्यरोगो न हि कोपि दृश्यते शिलाजभस्म प्रसभं न यं दहेत्।
तत्कालयोगैर्विविधैः प्रयुक्तं स्वास्थ्यं तनौ यद्विपुलं ददाति ॥ ४८ ॥

कोई ऐसा असाध्य रोग देखनेमें नहीं आता कि जिसको शिलाजीतकी भस्म न जला देवे। तत्काल रोगोंको दूर करनेवाले अनेक योगोंके साथ इसको देनेसे शरीरमें अत्यन्त स्वस्थता लाता है ॥ ४८ ॥

शिलाजसेवनानुपानानि।

एलापिप्पलिसंयुक्तं माषमात्रं तु भक्षयेत्।
मूत्रकृच्छ्रं मूत्ररोधं हन्ति मेहं तथा क्षयम् ॥ ४९ ॥
सर्वानुपानैः सर्वत्र रोगेषु विनियोजयेत्।
जयत्यभ्यासतो नूनं ताँस्तान्रोगान्न संशयः ॥ ५० ॥

एक मासे शिलाजीतको छोटी इलायची और पिप्पलीके साथ सेवन करे तो मूत्रकृच्छ्र, मूत्ररोध, प्रमेह और क्षयीरोगको दूर करता है। सब रोगोंमें उचित अनुपानोंके साथ इसको देवे तो नित्यके सेवन करनेसे उन २ रोगोंको निस्सन्देह नष्ट करताहै ॥ ४९ ॥ ५० ॥

शिलाजभस्मविधिः।

शिलायां गंधतालाभ्यां मातुलुंगरसेन च।
पुटितं हि शिलाधातुर्म्रियतेऽष्टोपलेन च ॥ ५१ ॥

शिलाजीतमें शुद्ध गंधक और शुद्ध हरिताल मिलाकर बिजौरे नींबूके रसमें घोटे और फिर आठ आरने उंपलोंकी आँच देकर पकावे तो वह मरजाता है ॥ ५१ ॥

तद्भस्मसेवनविधिः।

भस्मीभूतशिलोद्भवं समतुलं कान्तिं च वैक्रान्तिकं
युक्तं च त्रिफलाकटुत्रयघृतैर्वल्लेन तुल्यं भवेत् ॥
पाण्डौ यक्ष्मगदे तथाग्निसदने मेहे च मूलामये
गुल्मप्लीहमदोदरे बहुविधे शूले च योन्यामये ॥ ५२ ॥

जितनी शिलाजीतकी भस्म हो उतनी ही उसमें कान्तलोह और वैक्रान्तमणिकी भस्मको मिलावे तत्पश्चात् त्रिफला और तीनों कटु अर्थात् सोंठ, मिर्च और पीपलके साथ तीन रत्तीकी मात्रासे सेवन करे तो पाण्डुरोग, राजयक्ष्मा,

मन्दाग्नि, प्रमेह, गुदाके रोग, गुल्मरोग, तापतिल्ली, उदररोग, शूल और योनि-रोगोंको नष्ट करता है ॥ ५२ ॥

शिलाजतुसत्त्वपातनविधिः ।

पिंष्याद्द्रावणवर्गेण साम्लेन गिरिसंभवम् ।
रुद्ध्वा मूषोदरे ध्मातं कोकिलैः सत्त्वमृच्छति ॥
सत्त्वं मुञ्चेच्छिलाधातुश्चोत्तमं लोहसन्निभम् ॥ ५३ ॥

द्रावणवर्ग तथा अम्लवर्गोक्त औषधियोंमें शिलाजीतको घोटकर मूषामें बंदकर भट्टीमें रख कोयलोंकी अग्नि देवे तो लोहेके समान उत्तम सत्त्व निकलता है॥५३॥

द्वितीयसोरकाख्यशिलाजतुवर्णनम् ।

द्वितीयं सोरकाख्यं स्याच्छ्वेतवर्णं शिलाजतु ।
अग्निवर्णप्रदं तद्धि हितं मूत्रामयेषु च ॥ ५४ ॥

पूर्वोक्त शिलाजीतसे भिन्न दूसरा सोरक नामका एक और शिलाजीत होता है। यह रंगमें सफेद तथा शरीरमें अग्निके समान कान्तिका देनेवाला है और मूत्ररोगमें हितकारी है ॥ ५४ ॥

सोरकाख्यशिलाजतुस्वरूपाख्यानम् ।

पाण्डुरं सिकताकारं कर्पूराभं शिलाजतु ।
मूत्रकृच्छ्राश्मरीमेहकामलापाण्डुनाशनम् ॥ ५५ ॥
एलातोयेन संमिश्रं सिद्धं सिद्धिमुपैति तत् ।
न तस्य मारणं सत्त्वपातनं विहितं बुधैः ॥ ५६ ॥

यह सोरक नामक शिलाजीत कुछ २ पीले रंगसे युक्त और कर्पूर तथा बालूके समान होताहै, विधिपूर्वक सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र, पथरी, प्रमेह, कामला और पाण्डुरोगको नाश करता है । इलायचीके जलके साथ मिलादेनेसे इसकी शुद्धि होजाती है । वैद्योंने इसके सत्त्वपातन तथा मारणकी विधिका वर्णन नहीं किया ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

शिलाजतुसेवने पथ्यापथ्यम् ।

व्यायामातपमारुतचेतःसंतापिगुरुविदाहादि ।
उपयोगादपि परितो द्विगुणं परिवर्जयेत्कालम् ॥ ५७ ॥

पिबेन्माहेन्द्रसलिलं कौपं प्रास्त्रावणाम्बु वा ।
कुलत्थान्काकमाचींश्च कापोतांश्च सदा त्यजेत् ॥ ५८ ॥

जो मनुष्य शिलाजीतका सेवन करे वह व्यायाम अर्थात् कसरत, धूप, वायु तथा चित्तको सन्ताप देनेवाले कार्योंको त्याग करे, जो पदार्थ भारी तथा दाह पैदा करनेवाले हों उनका भी त्याग रक्खे और जितने दिन तक इसका सेवन करे उससे दुगुने दिन पर्यन्त त्याज्य पदार्थों तथा कार्योंका त्याग रक्खे बर्षा, कूप और झरना इन तीनोंमेंसे चाहे जिसका जल पीवे क्योंकि यह तीनों ही जल इसमें पथ्य हैं कुलथी, मकोय और कबूतरके मांसका सदा त्याग रक्खे ॥ ५८ ॥

अशुद्धशिलाजतुसेवनोपद्रवाः ।

अशुद्धं दाहमूर्च्छादीन्भ्रमपित्तास्रशोणितम् ।
शिलाजतु प्रकुरुते मांद्यमग्नेश्च विड्ग्रहम् ॥ ५९ ॥

विना शोधा हुवा शिलाजीत जलन, मूर्च्छा, भ्रम, रक्तपित्त, रुधिरविकार, मन्दाग्नि और मलका रुकना आदि उपद्रवोंको उत्पन्न करता है ॥ ५९ ॥

दोषशान्त्युपायः ।

मरिचं घृतसंयुक्तं सेवयेद्दिनसप्तकम् ।
शिलाजतुभवं दोषं शान्तिमाप्नोति निश्चितम् ॥ ६० ॥

यदि सात दिन पर्यन्त घृत सहित काली मिर्चका सेवन करे तो अशुद्ध शिलाजीतके सेवन करनेसे उत्पन्न समस्त विकार निस्सन्देह नष्ट होते हैं ॥ ६० ॥

षड्विंशतितमेऽध्याये वर्णनं वै शिलाजतोः ।
कृतं मया यथा तात धारणीयं तथा त्वया ॥ ६१ ॥

हे पुत्र ! इस छब्बीसवें अध्यायमें मैंने जिस प्रकार शिलाजीतका वर्णन किया तुम्हें उसी प्रकार उसे धारण करना चाहिये ॥ ६१ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणेशिलाजतु-
वर्णनं नाम षड्विंशतितमोध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथातो साधारणरसवर्णनं नाम सप्तविंशतितमाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम साधारण रसवर्णन नामक सत्ताईसवें अध्यायका वर्णन करते हैं ॥

गुरुरुवाच ।

साधारणरसानाञ्च वर्णनञ्चापि श्रूयताम् ॥ १ ॥

गुरुने कहा कि, हे तात ! इस अध्यायमें साधारण कंपिल्ल आदि रसोंका वर्णन किया जाता है वह तुम सुनो ॥ १ ॥

साधारणरसनामानि ।

काम्पिल्लश्चपलो गौरीपाषाणो नरसारकः ।
कपर्दी वह्निजारश्च गिरिसिंदूरहिंगुलौ ॥ २ ॥
केदारशृंगमित्यष्टौ साधारणरसाः स्मृताः ।
केचित्तु कथिताः पूर्वं शेषाँस्त्वत्र प्रकाशये ॥ ३ ॥

कमीला, चपल, गौरीपाषाण, नवसादर, कौडी, वह्निजार, गिरिसिंदूर और केदारशृंग यह आठ प्रकारके साधारण रस कहे जाते हैं इनमेंसे हिंगुल, सिंदूर चपल यह तो पहले कहचुके अब जो शेष हैं उनका यहाँ वर्णन किया जाता है ॥ २ ॥ ३ ॥

साधारणरसानां सामान्यशोधनविधिः ।

साधारणरसाः सर्वे मातुलुङ्गार्द्रकाम्बुना ।
त्रिवारं भाविताः शुष्का भवेयुर्दोषवर्जिताः ॥ ४ ॥

पूर्वोक्त कम्पिल्ल आदि सब साधारण रसोंमें बिजौरानींबू और अदरखके रसकी तीन तीन भावना देकर धूपमें सुखालेवे तो वे शुद्ध होजाते हैं ॥ ४ ॥

काम्पिल्लद्रव्यानिर्णयः ।

काम्पिल्लकस्य वृक्षास्तु पर्वते वै भवन्ति हि ।
तेषां फलानामुपरि लालिमैव हि काम्पिलः ॥ ५ ॥

कमीलेके वृक्ष प्रायः पर्वतोंपर अधिक होते हैं इस वृक्षके फलोंपर ईंटकासा लाल रंगका चूर्ण लगा रहता है । इन फलोंको तोडकर धूपमें सुखानेसे

---

१ कमीलेके वृक्ष शिमलेके जिले और मेरे निवासस्थान टकसालमें बहुत होते हैं । पहाडी लोग इसकी पत्तियां गायें और भैंसोंको खिलाते हैं और वे इसके वृक्षोंको कामिल कहते हैं ॥

वह लालिमा अपने आप झडजाती है इसी चूर्णको कबीला या कमीला कहते हैं ॥ ५ ॥

काम्पिल्लगुणाः ।

काम्पिल्लको विरेची स्यात्कटूष्णो व्रणनाशनः ।
कफकासातिहारी च जन्तुक्रमिहरो लघुः ॥ ६ ॥

यह कमीला दस्तावर, चरपरा, गरम, व्रणनाशक, कफ और खाँसीको नष्ट करनेवाला तथा जुवें और कृमिरोगको दूर करनेवाला है, हलका है (मलाशयके कृमि (छारुवे–चलूंणे) जब किसीको दिक करें तो कमीलेको दहीमें मिलाकर पिलादेवे तो सब कृमि तीन या चार दस्तोंके द्वारा निकल जाते हैं) ॥६॥

अन्यच्च ।

पित्तज्वराध्मानविबंधनिघ्नः श्लेष्मोदरार्तिक्रिमिगुल्मवैरी ।
व्रणामशूलज्वरशोफहारी कम्पिल्लकोऽनेकगदापहश्च ॥ ७ ॥

यह कमीला पित्तज्वर, अफरा, बद्धकोष्ठता, कफविकार, उदररोग, कृमिरोग, गुल्मरोग, व्रणरोग, आमवात, शूलरोग, ज्वर, शोफ, तथा और भी अनेक प्रकारके रोगोंका नाश करताहै ॥ ७ ॥

गौरीपाषाणभेदाद्याख्यानम् ।

गौरीपाषाणकः प्रोक्तो द्विविधः श्वेतपीतकः ।
श्वेतः शंखसमः पीतो दाडिमाभः प्रकीर्तितः ।
श्वेतः कृत्रिमकः प्रोक्तः पीतः पर्वतसम्भवः ॥ ८ ॥

गौरीपाषाण अर्थात् शंखियाके दो भेद हैं इनमेंसे पहला तो शंखके समान सफेद और दूसरा अनारके समान पीले रंगका कहागया है, सफेद शंखिया बनाईहुई है और पीली शंखिया पर्वतसे उत्पन्न होती है ॥ ८ ॥

पीतगौरीपाषाणनामगुणवर्णनम् ।

गौरीपाषाणकःपीतो विकटो हतचूर्णकः ।
रसबंधकरः स्निग्धो दोषघ्नो वीर्यकारकः ॥ ९ ॥

पीले रंगवाले गौरीपाषाणके विकट और हतचूर्णक भी नाम हैं, यह पारेको बाँधता है, चिकना है, त्रिदोषको नष्ट करताहै और वीर्यको बढाता है ॥ ९ ॥

पारदादियोगेन गौरीपाषाणकस्य रौप्यनिर्माणविधिः ।

चतुःकर्षं रसं ग्राह्यं गौरीपाषाणकं समम् ।
निंबुनीरेण सप्ताहं मर्दयेत्कुशलो भिषक् ॥ १० ॥
घनभावे समुत्पन्ने तस्मादुद्धृत्य रक्षयेत् ।
पेटिकां तारजां रम्यां विनिर्माय मनीषया ॥ ११ ॥
पलमात्रस्य मेधावी तन्मध्ये पिष्टिकां क्षिपेत् ।
तस्योपरि पुटं देयं यथोद्घाटो भवेन्न च ॥ १२ ॥
त्रिंशद्वन्योपलैरग्निं प्रदद्याद्रहसि स्थितः ।
उक्तताम्रं पलार्द्धं तु वह्निना द्रवतां नयेत् ॥ १३ ॥
द्रवीभूते च ताम्रे च गुञ्जापञ्चमितं खलु ।
निक्षिपेच्छंखसंयुक्तं पारदं तस्य मध्यकम् ॥ १४ ॥
तत्ताम्रं जायते शुभ्रं शंखकुन्देन्दुसन्निभम् ।
तत्समं रौप्यकं दत्त्वा प्रधमेद्दृढवह्निना ॥
जायते सकलं रौप्यं साधकानां सुखावहम् ॥ १५ ॥

कुशल वैद्य पारा और शंखिया इन दोनोंको चार चार तोला लेकर नींबूके रसमें सात दिन पर्यन्त घोटे, घोटते २ जब गाढा हो जावे तब खरलसे अलग रखलेवे और चार तोले चाँदीकी एक ऐसी डिबिया बनवावे कि जिसमें पारा और शंखिया दोनोंकी पीठी आजावे, उसी डिबियामें पीठी भरकर बंद करे और उसमें ऐसी कपरमिट्टी करे कि जिसमें फिर न खुले तत्पश्चात् धूपमें सुखाकर एकान्त स्थानमें तीस जङ्गली उपलोंकी अग्नि देवे तो पीठी चाँदी होजाय और फिर दो तोले शुद्ध किये हुए ताँबेको आँचमें तपाय पतला करलेवे और उसमें पूर्वोक्त डिबियाकी पाँच रत्ती चाँदी मिलादेवे तो वह ताँबा, शंख, कुन्द, और चन्द्रमाके तुल्य श्वेत होजाय तदनन्तर उस ताँबेकी बराबर चाँदी मिलाय आँचमें रख खूब धमे तो सब चाँदी होजाय, यह साधकोंके लिये सुखको प्राप्त करनेवाली है ॥ १०--१५ ॥

गौरीपाषाणसत्त्वपातनविधिः ।

दिनैकं गौरीपाषाणं कांजिके मर्दयेद्बुधः ।
विषोपविषक्काथेषु संमर्द्य विधिना ततः ॥ १६ ॥

डमरुयन्त्रेणोत्पात्य विधिना तं हरेत्ततः।
तंडुलस्य चतुर्थांशं सितया सह दापयेत् ॥
दुग्धौदनं घृतं दद्यान्नानारोगनिवृत्तये ॥ १७ ॥

शंखियाको एक दिन कांजीमें घोटकर फिर विषों और उपविषयोंके काथोंमें भावना देकर गोला बनालेवे, तत्पश्चात् डमरूयन्त्रके द्वारा उडालेवे और जब स्वांगशीतल होजावे तब ऊपरके पात्रमें लगेहुए सत्त्वको निकाललेवे इसमेंसे सर्षप समान मात्रा लेकर मिश्रीके साथ देवे और दूध, भात, घी यह पथ्य देवे तो अनेक रोगोंकी निवृत्ति हो॥ १६ ॥ १७ ॥

मारणविधिः।

कर्षैकमाखुपाषाणं युग्मकर्षे च टंकणे।
पाचयेत्सम्पुटं कृत्वा सम्यक्प्रस्थोपलाग्निना ॥ १८ ॥
स्वांगशीते विगृह्याथ मात्रा सार्षपिका मता।
सेव्यं संतानिकायुक्तं नवनीतेन वा मृतम् ॥
सितया वापि संसेव्यं गौरीपाषाणकं वरम् ॥ १९ ॥

एक तोला शंखियाको दो तोले सुहागेमें संपुट कर एक सेर आरने उपलोंकी आँचमें निर्वात स्थानमें पकावे, स्वांगशीतल होनेपर निकाललेवे और किसी उत्तम काँच आदिके पात्रमें रखदेवे। मात्रा इसकी सर्षपके तुल्य है और प्रति-दिन दूधकी मलाई, मक्खन वा मिश्रीके साथ मात्रासे इस उत्तम मृत शंखियेका सेवन करे॥ १८ ॥ १९ ॥

द्वितीयः प्रकारः।

इष्टिकायां कृते गर्ते स्थापयेल्लोहमात्रकम्।
संस्थाप्य चेष्टिकां चुल्ल्यां गौरीपाषाणकं क्षिपेत् ॥ २० ॥
ततोर्कयामपर्यन्तं तिलक्षारजवारिणा।
प्रस्थत्रयेण वै सम्यक्पाचयेन्मृदुवह्निना ॥ २१ ॥
तिलक्षारोदकं त्वत्र स्वल्पं स्वल्पं मुहुर्मुहुः।
क्षिपेत्पाचनकालान्तं नैकवारं विचक्षणः ॥ २२ ॥
ततः शरावेणाच्छाद्य मृदा च विधिवत्पुटेत्।
स्वांगशीतं समुद्धृत्य तंडुलार्धं प्रदापयेत् ॥ २३ ॥

दूसरा प्रकार एक बडी ईंटमें गढा करे और उस गढेमें लोहेकी कटोरी जमादेवे, उस कटोरीमें शंखियाको डाले तदन्तर बारह प्रहर पर्यन्त तीन प्रस्थ तिलोंके खारके पानीसे अच्छे प्रकार मंद २ आँचसे पकावे परन्तु वैद्यको चाहिये कि,वह बारह प्रहर तक थोडा २ तिल क्षारोदक डालकर पकावे अर्थात् एक ही वार सब जल न छोड देवे (तिलक्षारोदककी यह विधि है कि, पहले दिन शामको एक सेर तिलखारमें तीन सेर पानी घोलकर रखदे और दूसरे दिन प्रातःकाल पानीको नितारलेवे) बारह प्रहरके अन्तर एक सकोरेसे ढांक कर मिट्टीसे बंदकर (और आँच देनाभी बंदकरदे) स्वांगशीतल होनेपर शंखियेकी फूली हुई खील निकाललेवे और आधे चावल प्रमाण मात्रासे पूर्ववत् मलाई, मक्खन वा मिश्रीके साथ सेवन करनेके लिये देवे ॥ २० ॥ २३ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

गौरीपाषाणकं कर्षं कर्षं षट् चैव हिंगुलम् ।
संमेल्य विजयापिण्डगर्भे संस्थापयेच्च तम् ॥ २४ ॥
पात्रेऽधःशोरकं न्यस्य ततो दद्यात्त पिण्डकम् ।
ततस्तु शोरकेणैव शिष्टं पात्रं प्रपूरयेत् ।
चतुर्यामाग्निना सम्यक्पाचयेद्भस्म जायते ॥ २५ ॥

तीसरा प्रकार,-एक तोला शंखिया और छः तोले सिंगरफको एकमें मिलाकर भाँगके गोलेके बीचमें रक्खे तत्पश्चात् एक हांडीमें नीचे शोरा भरके उसके ऊपर गोलेको रखकर शेष पात्रकोभी शोरासे पूर्ण भरदेवे और उस हांडीको चूल्हेपर चढाकर चार प्रहरकी आँच देकर पकावे तो शंखियेकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥२४॥२५॥

चतुर्थः प्रकारः ।

कर्षका मूसली श्वेता तत्समा कृष्णजीरिका ।
द्विकर्षं शोरकं चापि सर्व संचूर्ण्य यत्नतः ॥ २६ ॥
तन्मध्ये गौरिपाषाणं कर्षैकं स्थापयेद्बुधः ।
शरावसंपुटे चैव पञ्चप्रस्थोपलाग्निना ॥
पचेद्विधिज्ञो वैद्यस्तु तस्य भस्म प्रजायते ॥ २७ ॥

चौथा प्रकार,-एक कर्ष सफेद मूसली, एक कर्ष कालाजीरी और दो कर्ष शोरा लेकर सबोंको प्रयत्नसे चूर्ण करलेवे इस चूर्णके बीचमें एक तोला शंखियेको रख शरावसंपुटके द्वारा पाँच सेर आरने उपलोंकी अग्निसे विधिको जाननेवाला वैद्य पकावे तो शंखियेकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ २६ ॥ २७ ॥

पञ्चमः प्रकारः ।

त्रिदिनं ह्याखुपाषाणं निंबूनीरेण मर्दयेत् ।
सूरणे तं निधायाथ पचेत्प्रस्थोपलाग्निना ॥ २८ ॥
कृत्वा वारत्रयश्चैवं ज्योतिष्मत्या रसे ततः ।
संमर्द्य सूरणपुटे पाचयेत्पूर्ववद्भिषक् ॥
एवं वारत्रयं कुर्यात्तस्य भस्म भवेद्ध्रुवम् ॥ २९ ॥

पांचवां प्रकार,–शंखियाको नींबूके रसमें तीन दिनतक खरल करे और उसकी टिकिया बना सूरणमें संपुट करके रक्खे तदनन्तर पांच सेर आरने उपलोंकी अग्नि देकर पकावे इसी प्रकार तीन बार करे । और पीछे मालकांगनीके रसमें घोटकर टिकिया बना धूपमें सुखालेवे और जिमिकन्दके संपुटमें रखकर पूर्ववत् पकावे, इसी प्रकार तीन बार करे तो निश्चय शंखियाकी भस्म सिद्ध हो जाती है ॥ २८ ॥ २९ ॥

नवसारोत्पत्त्यादिवर्णनम् ।

करीरपीलुजैः काष्ठैः पच्यते चेष्टकोद्भवः ।
क्षारोऽसौ नवसारः स्याच्चुल्लिकालवणं स्मृतम् ॥ ३० ॥
मनुष्यसूकराणां स विष्ठातः कीटवद्भवेत् ।
क्षारेषु गणना तस्य स्वर्णशोधनकः परः ॥ ३१ ॥
इष्टिकादहने जातं पाण्डुरं लवणं लघु ।
शंखद्रावे रसे पूज्यो मुख्यकर्मणि पारदे ॥
विडद्रव्योपयोगी च क्षारवत्तद्गुणा स्मृताः ॥ ३२ ॥

करीर और पीलु वृक्षकी लकडियोंसे ईंटका खार पकानेसे नौसादर खार बनता है, इसीका दूसरा नाम चुल्लिकालवण भी है यह मनुष्य और सूकरकी विष्ठासे कीटके तुल्य ईंटोंके पजावेमें होताहै, नवसादर इसकोभी क्षारोंमें गिनती की गई है, यह सोनेके शुद्ध करनेमें श्रेष्ठ है ईंटोंके पकानेमें जो पीले रंगका नमक होता है वह लघु है, शंखद्राव रसमें इसका काम पडता है । पारेके मुख्य कर्ममेंभी इसका उपयोग होताहै और विडद्रव्य अर्थात् पारेकी बंधनकारक वस्तुओंकाभी उपयोगी है इसके गुण क्षारोंके सदृश ही जानना चाहिये॥३०-३२॥

नवसारगुणवर्णनम् ।

नवसारः समाख्यातश्चुल्लिकालवणाभिधः ।
रसेन्द्रजारणो लोहजारणो जठराग्निकृत् ॥ ३३ ॥
प्लीहगुल्मास्यशोषघ्नं भुक्तं मांसादिजारणम् ।
विडाढ्यं च त्रिदोषघ्नं चुल्लिकालवणं मतम् ॥ ३४ ॥

जिसको नवसादर कहते हैं उसीको चुल्लिकालवणभी कहते हैं । यह चुल्लिका-लवण पारा तथा सोना, चांदी, तांबा आदि आठ लोहोंके जारणमें ग्रहण करने योग्य है, जाठराग्निको प्रदीप्त करता है, पिलही, गुल्मरोग और मुखशोषको दूर करता है, भोजन कियेहुए मांस आदिको जारण करता है, पारदके सब विडोंमें मुख्य है, त्रिदोष नाशक है, ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अग्निजारोत्पत्तिः ।

सामुद्रेणाग्निना तप्तो जरायुर्बहिरुत्सृतः ।
संशुष्को भानुतापेन सोऽग्निजार इति स्मृतः ॥ ३५ ॥
जराभं दहनस्यापि पिच्छिलं सागरप्लवम् ।
जरायुतश्चतुर्वर्णं श्रेष्ठं तत्सर्वलोहितम् ॥ ३६ ॥

समुद्रकी वडवाग्निसे संतप्त होकर जरायुके समान जो पदार्थ समुद्रसे बाहरको आता है और वह सूर्यकी धूपसे सूखजाता है, उसीका नाम अग्निजार (अंबर) है । अथवा जरायुके सदृश और अग्निके तेजसे पिच्छिल तथा समुद्रमें तैरनेवाला चार प्रकारके रंगोंसे युक्त यह अग्निजार समुद्रमें उत्पन्न होता है, इनमेंसे ताँबेके समान रंगवाला श्रेष्ठ होता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अन्यच्च ।

अब्धितीरेऽग्निनक्रस्य जरायुः शुष्कतां गतः ।
अग्निजारस्तु संप्रोक्तः स क्षारो जारणे हितः ॥ ३७ ॥

जो सूखाहुआ अग्निनक्रका जरायु समुद्रके किनारे आजाता है उसको अग्निजार कहते हैं, यह क्षार है और जारण कर्ममें हितकारी है ॥ ३७ ॥

अग्निजारगुणाः ।

स्यादग्निजारः कटुरुष्णवीर्यः समीरहृद्रोगकफापहश्च ।
पित्तप्रदः सोधिकसन्निपातशूलाग्निशीतामयनाशकश्च ॥ ३८ ॥

यह अग्निजार कटु और उष्णवीर्य है, वातरोग, हृदयरोग और कफरोगका नाश करता है, पित्तको उत्पन्न करता है, प्रबल सन्निपात, शूल, अग्निमांद्य और शीतसे उत्पन्न होनेवाले विकारोंको दूर करता है ॥ ३८ ॥

अन्यच्च ।

अग्निजारस्त्रिदोषघ्नो धनुर्वातादिवातनुत् ।
वर्द्धनो रसवीर्यस्य दीपनो जारणस्तथा ॥
तदब्धिक्षारसंशुद्धं तस्माच्छुद्धिर्न शक्यते ॥ ३९ ॥

अग्निजार[1] त्रिदोषको नष्ट करता है, धनुर्वात (एक प्रकारका रोग विशेष जिसमें धनुष्यके समान शरीर होजाता है) आदि वातरोगोंको दूर करता है, रस और वीर्यकी वृद्धि करता है, दीपन तथा जारण करनेवाला है, यह अग्निजार समुद्रके खारसे स्वयं शुद्ध है इसी कारण इसकी शुद्धिका विधान नहीं कहा॥३९॥

समुद्रफेनगुणाः ।

समुद्रफेनश्चक्षुष्यो लेखनः शीतलः सरः ।
कर्णस्रावरुजागुल्महरः पाचनदीपनः ॥
अशुद्धः सकरोत्यङ्गभङ्गं तस्माद्विशोधयेत् ॥ ४० ॥

समुद्रका फेन आँखोंके लिये हितकारी है यह लेखन, शीतल और सर है, कानोंके बहने तथा गुल्मरोगको हरता है, पाचन और दीपन है । विना शोधन किये यह अंगोंका भंग करता है इस हेतु इसका शोधन अवश्य करना चाहिये ॥ ४० ॥

समुद्रफेनशोधनविधिः ।

समुद्रफेनः संपिष्टो निंबुतोयेन शुद्ध्यति ॥ ४१ ॥

नींबूके रसमें समुद्रफेनको पीसे तो वह शुद्ध होजाताहै ॥ ४१ ॥

बोलनामानि तद्भेदाश्च ।

बोलगन्धरसप्राणमिन्द्रगोपरसः समाः ।
बोलं तु त्रिविधं प्रोक्तं रक्तं श्यामं मनुष्यजम् ॥ ४२ ॥

बोल, गन्धरसप्राण, इन्द्रगोपरस यह सब एक ही द्रव्यके नाम हैं । यह बोल तीन प्रकारका होताहै, लाल, श्याम और मनुष्यज ॥ ४२ ॥

---

१ इस अग्निजारका उपयोग यूनानीके हकीम अधिक कहते हैं ॥

रक्तबोलगुणाः ।

बोलं रक्तहरं शीतं मेध्यं दीपनपाचनम् ।
मधुरं कटुकं तिक्तं ग्रहस्वेदात्रिदोषनुत् ॥ ४३ ॥
ज्वरापस्मारकुष्ठघ्नं गर्भाशयाविशोधनम् ।
चक्षुष्यं च सरं प्रोक्तं रक्तबोलं भिषग्वरैः ॥ ४४ ॥

लाल रंगका बोल बहतेहुए रुधिरको बंद करताहै । यह शीतल, पवित्र, दीपन और पाचन है, स्वादमें मधुर, कडवा और तीखा है, ग्रह व्याधि, स्वेद, त्रिदोष, ज्वर, मृगीरोग और कुष्ठको दूर करताहै, गर्भाशयको शुद्ध करताहै, आँखोंके लिये हितकारी है, दस्तावर है, बीजाबोल इसीका नाम है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

श्यामबोलगुणाः ।

श्यामबोलं तीक्ष्णगंधं दद्रुकुष्ठविषापहम् ।
भग्नास्थिसंधिजननं त्रिदोषशमनं हिमम् ॥
धातुकान्तिवयःस्थैर्यबलौजोवृद्धिकारकम् ॥ ४५ ॥

श्याम रंगका बोल तीक्ष्णगंधसे युक्त होताहै, दाद कुष्ठ और विषके दोषोंको नाश करनेवाला तथा टूटी हुई हड्डियोंका जोडनेवाला है, त्रिदोषको दूर करताहै, शीतल है, धातु, कान्ति और अवस्थाको स्थिर करताहै, बल और ओजकी वृद्धिं करनेवाला है ॥ ४५ ॥

शृङ्गराजयोगः ।

बहुशृङ्गस्य शृङ्गं वै गोमूत्रेण च भावितम् ।
कुमारिकापुटे पक्त्वा स्वांगशीते हरेद्भिषक् ॥ ४६ ॥

बारासिंगाके सींगके टुकडोंको गौके मूत्रमें आठ दिन तक भिगोया रक्खे और घीकुवारिके गूदाके बीचमें रख गजपुटमें पकाकर स्वांगशीतल होने पर निकाललेवे ॥ ४६ ॥

अनुपानभेदेन तद्गुणाः ।

मधुना कासश्वासघ्नः शृंगवेरेण शूलनुत् ।
सन्निपातहरश्चासौ तथा मेहादिनाशकः ॥ ४७ ॥

पूर्वोक्त शृंगभस्मको तीन रत्ती प्रमाण सहदके साथ सेवन करे तो कास श्वासको दूर करती है, अदरकके रसके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारके शूल, और

सन्निपातको दूर करती है, शिलाजीतके साथ प्रमेह आदि रोगोंको नष्ट करती है ॥ ४७ ॥

शिष्य उवाच ।

भगवन्गुग्गुलोर्योगं यथावीर्यं यथागुणम् ॥
वक्तुमर्हसि योगेषु येषु चायं प्रशस्यते ॥ ४८ ॥

शिष्यने कहा कि, हे भगवन् ! गूगलके योग तथा उसका जैसा वीर्य और गुण है और जिन योगोंमें यह श्रेष्ठ होताहै वह सब आप कहनेके योग्य हो ॥४८॥

गुरुरुवाच ।

मरुभूमौ प्रजायन्ते प्रायशः सुरपादपाः ।
भानोर्मयूखैः संतप्ता ग्रीष्मे मुञ्चन्ति गुग्गुलुम् ॥ ४९ ॥
हिमार्तिदे च हेमन्ते विधिवत्तत्समाहरेत् ।
जातरूपनिभं शुभ्रं पद्मरागनिभं क्वचित् ॥ ५० ॥
क्वचिन्महिषसंकाशं यक्षदैवतवल्लभम् ।
विधानं तस्य विधिवन्निबोध गदतो मम ॥ ५१ ॥

गुरुने कहा कि, यह गूगलके वृक्ष मारवाड देशमें पैदा होते हैं और वह गरमीकी ऋतुमें सूर्यकी किरणोंसे तप्त होकर गूगलको छोडते हैं। वैद्यको चाहिये कि, इस गूगलको ठंढ ऋतुमें विधिसहित ग्रहण करे। यह कहीं सोनेके समान उद्दीप्त कहीं माणिकके तुल्य कान्तिवाला और कहीं भैंसेकी आँखोंके सदृश कान्तिसे युक्त होताहै, यक्ष और देवताओंका अतिप्रिय होताहै। हे शिष्य! अब मैं उसके विधानको विधिपूर्वक कहताहूँ तुम सुनो ॥ ४९-५१ ॥

गुग्गुलुशोधनं सेवनविधिश्च ।

वर्णगंधरसोपेतं गुग्गुलुं मात्रया युतम् ।
भेषजैः सह निःक्वाथ्य यथाव्याधिहरैः पृथक् ॥ ५२ ॥
मात्रावशिष्टं तं ज्ञात्वा गालयेच्छुक्लवाससा ।
मृन्मये हेमपात्रे च स्फाटिके राजतेऽपि वा ॥ ५३ ॥
पुण्ये तिथिषु नक्षत्रे क्षीणाहारसमन्वितः ।
हुताग्निः पर्युपासीत देवान्विप्रांश्च भक्तितः ।
प्रविश्य च शुभाकीर्णं मंदिरं निवसेत्स्फुटम् ॥ ५४ ॥

वर्ण, गंध और रससे युक्त मात्रासे गूगलको लेवे और जिस रोगमें देना हो उसी रोगको दूर करनेवाली औषधियोंके साथ क्वाथविधिसे इसका काढा बनावे और वह काढा पकते २ जब चौथाई भाग शेष रहजाय तो उसे सफेद कपडेमें छानकर मिट्टी सुवर्ण, स्फटिक वा चाँदीके पात्रमें रखदेवे तदनन्तर क्षीण आहार मनुष्य शुभ नक्षत्र युक्त तिथिमें अग्निमें होम तथा देवता और ब्राह्मणोंका भक्तिसे सत्कार करके विधिपूर्वक इसका सेवन करे और फिर उत्तम द्रव्योंसे युक्त गृहमें प्रवेशकर निवास करे ॥ ५२–५४ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

माहिषं गुग्गुलं शुभ्रं गृहीत्वा पलपंचकम् ।
प्रस्थमात्रे तु गोमूत्रे क्षिप्त्वा संविपचेद्भिषक् ॥ ५५ ॥
दोलायन्त्रस्य विधिना पादशेषं समाहरेत् ।
अनेन विधिना सम्यग्गुग्गुलुः शुद्धतां व्रजेत् ॥
सर्वकर्मसु संप्रोज्यो योगे च फलदायकः ॥ ५६ ॥

दूसरा प्रकार–बीस तोले उत्तम भैंसा गूगलको पोटलीमें बांधकर एक प्रस्थ (६४ तोले) गौके मूत्रमें दोलायंत्रकी बिधिसे पकावे और जब गोमूत्र चौथाई भाग शेष रहजाय तब चूल्हेपरसे उतारलेवे और गुग्गुलको पोटलीसे अलग निकालकर धूपमें सुखालेवे, सूखनेपर इसका रंग सफेद होजाता है तत्पश्चात् गूगलके तिनके कंकड आदि बीनकर साफ करलेवे इस पूर्वोक्त विधिसे गुग्गुल, शुद्ध होजाता है इसकी सब कर्मोंमें योजना करनी चाहिये जिस योगमें यह मिलाया जाता है उसमें आगे लिखे हुए फलोंको देता है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

शुद्धगुग्गुलगुणाः ।

त्रिदोषशमनो वृष्यः स्निग्धो बृंहणदीपनः ।
गुग्गुलुः कटुकः पाक बलवर्णप्रवर्द्धनः ॥ ५७ ॥
आयुष्यः श्रीकरः पुण्यः स्मृतिमेधाविवर्द्धनः ।
पापप्रशमनः श्रेष्ठः शुक्रार्तवकरो मतः ॥ ५८ ॥

विधिपूर्वक शुद्ध कियाहुआ गूगल त्रिदोषको शमन करता है वीर्यवर्द्धक है, स्निग्ध है, बृंहण और दीपन है, पाकमें कटु है, बल और वर्णकी वृद्धि करता है, आयु और शोभाको देनेवाला है, पुण्य, स्मृति तथा मेधाकी वृद्धि और

पापोंका शान्त करनेवाला है, श्रेष्ठ है, शुक्र और आर्तवको उत्पन्न करता है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

साधारणरसानां च शोधनादिक्रियाः शुभाः ।
सप्तविंशतितमेऽस्मिन्यथावद्वर्णिता मया ॥ ५९ ॥

मैंने इस सत्ताईसवें अध्यायमें साधारण संज्ञक रसोंकी शुद्ध करनेकी उत्तम २ क्रियायें वर्णन की ॥ ५९ ॥

इतिश्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे साधारणरसवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः ।

अथातो रत्नोपरत्नवर्णनं नामाष्टाविंशतितमाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम रत्नोपरत्न वर्णन नामक अट्ठाईसवें अध्यायका वर्णन करते हैं ॥

शिष्य उवाच ।

के वै रत्नोपरत्नानि कथं तेषां च संस्कृतिः ।
धारणं मारणं चापि यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥

शिष्यने कहा कि,--हे भगवन् ! रत्न और उपरत्न कौनसे हैं और उनके संस्कारकी क्या रीति है तथा धारण और मारण किस प्रकार किया जाता है आप यह सब यथोचित कहनेके योग्य हैं ॥ १ ॥

गुरुरुवाच ।

शृणु रत्नोपरत्नानां वर्णनं विधिपूर्वकम् ।
भक्षणाद्धारणाच्चापि नानारोगात्प्रमुच्यते ॥ २ ॥

गुरुने कहा कि, अब तुम उन रत्न और उपरत्नोंका वर्णन भी विधिपूर्वक श्रवण करो, जिनके भक्षण तथा धारण करने मात्रसे मनुष्य अनेक रोगोंसे छूट जाता है ॥ २ ॥

रत्नशब्दनिरुक्तिः ।

धनार्थिनो जनाः सर्वे रमन्तेऽस्मिन्नतीव यत् ।
अतो रत्नमिति प्रोक्तं शब्दशास्त्रविशारदैः ॥ ३ ॥

धनकी इच्छा करनेवाले सब मनुष्य इसमें आतिशयसे रमण करते हैं अतः व्याकरण शास्त्र जाननेवाले इसको रत्न कहते हैं ॥ ३ ॥

तल्लिङ्गादिवर्णनम् ।

रत्नं क्लीबे मणिः पुंसि स्त्रियामपि निगद्यते ।
तत्तत्पाषाणभेदोऽस्ति वज्रादिश्च यथोच्यते ॥ ४ ॥

रत्न शब्द नपुंसकलिङ्ग है और मणिशब्द स्त्रीलिङ्ग तथा पुँलिङ्ग दोनोंमें होता है हीरा पन्ना आदि रतन पाषाणके भेद हैं वह आगे कहते हैं ॥ ४ ॥

नवरत्ननामानि ।

वज्रं विद्रुममौक्तिकं मरकतं वैडूर्यगोमेदकं
माणिक्यं हरिनीलपुष्पदृषदौ रत्नानि नाम्ना नव ।
यान्यन्यान्यपि कानिचिद्विदुरिह त्रैलोक्यसीम्नि स्फुटं
नाम्ना तान्युपरत्नसंज्ञकतमान्याहुः परीक्षाकृतः ॥ ५ ॥

हीरा, मूंगा, मोती, पन्ना, वैदूर्यमणि, गोमेद, माणिक्य, नीलम, पुखराज यह नव प्रकारके रत्न होते हैं, इनके अतिरिक्त पृथ्वीपर जो जो रत्नके सदृश और पत्थर मिलते हैं, रत्नपरीक्षक जौहरी लोग उनको उपरत्न कहते हैं ॥ ५ ॥

मतान्तरम् ।

उपरत्नानि चत्वारि महारत्नानि पञ्चधा ।
प्रवालं गरुडोद्गारं वैडूर्यं पुष्परागकम् ॥
उपरत्नं समाख्यातं रत्नशास्त्रार्थकोविदैः ॥ ६ ॥

पूर्वोक्त नवरत्नोंमेंसे चार उपरत्न हैं और पांच महारत्न हैं, मूँगा, पन्ना, वैदूर्य, आर पुखराज इन चारोंको रत्नशास्त्रके जाननेवालोंने उपरत्न कहा है और शेष हीरा पन्ना, गोमेद (पीलेरंगकी मणि) नीलम और मोती ये पाँच महारत्न कहे हैं ॥ ६ ॥

मणिष्वपि सूतबंधकत्वादिगुणवर्णनम् ।

मणयोऽपि च विज्ञेयाः सूतबंधस्य कारकाः ।
देहस्य धारका नृणां जराव्याधिविनाशकाः ॥ ७ ॥

मणि अर्थात् रत्न भी पाराके बंधन कारक हैं और शरीरके धारण करनेवाले होनेसे मनुष्योंकी वृद्धावस्था तथा व्याधिके नाशक हैं ॥ ७ ॥

मणिगणवर्णनम्।

वैक्रान्तः सूर्यकान्तश्च हीरकं मौक्तिकं तथा।
चन्द्रकान्तस्तथा चव राजावर्तस्तथैव च ॥ ८ ॥
गरुडोद्गारकश्चैव ज्ञातव्या मणयो अमी।
पुष्परागं महानीलं पद्मरागं प्रवालकम् ॥
वैदूर्यं च तथा नीलमेते च मणयो मताः ॥ ९ ॥

वैक्रान्त, सूर्यकान्त, हीरा, मोती, चन्द्रकान्त, राजावार्त, पन्ना, पुखराज, महानीलम, माणिक्य, मूँगा, वैदूर्य, नीलमणि यह मणिगण है ॥ ८ ॥ ९ ॥

मणिरसवर्णनम्।

राजावत च पुष्पं च मौक्तिकं विद्रुम तथा।
वैक्रान्तेन समायुक्ता एते मणिरसाः स्मृताः ॥ १० ॥

राजावर्त, पुखराज, मोती, मूँगा और वैक्रान्त ये सब मणिरस कहाते हैं॥१०॥

सर्वरत्नलक्षणानि।

श्यामः स्यादिन्द्रनीलस्त्वतिमसृणतनुश्चातिगारुत्मतः स्या-
न्नीलच्छायोतिदीप्तोप्यथ मिहिरमणिः सूर्यतप्तोऽग्निसुक्स्यात्।
चन्द्रांशुस्पर्शतोम्भः स्रवति शशिमणिः पुष्परागस्तु पुष्प-
प्रख्यः श्रीवज्रमुच्चैर्घनसहमभितः संविशेल्लोहपिण्डे ॥ ११ ॥
वैदूर्यं यद्बिडालेक्षणरुचि गदितं स्याच्च गोमेदरत्नं
गोमूत्राभं विधूमज्वलदनलनिभं पद्मरागं वदन्ति।
मुक्ताशंखप्रवालं सरिदधिपतिजं विश्वविख्यातमेत-
द्राजावर्तं तु पीतारुणमृदुसुरभि क्षोणिजातोत्थमाहुः ॥ १२ ॥

इन्द्रनीलमाणि श्याम रंगसे युक्त अतिचिकनी होती है, गारुत्मत (पन्ना) नीलकान्ति युक्त और अतिदीप्त होताहै, सूर्यमाणि सूर्यके तेजसे अग्नि प्रकट करती है, चन्द्रकान्तमाणि चन्द्राकिरणोंके स्पर्शसे जलको छोडती है, पुष्पराग (पुखराज) फूलोंके परागके समान पीला होता है, वज्र (हीरा) वह रत्न है जो कि घनकी चोटोंको सहता तथा निहाईपर रख घनकी चोट लगानेसे निहाई और

घनमें प्रविष्ट होजाता है, वैदूर्यमणि बिलावके नेत्रोंके तुल्य कान्तिसे युक्त होती है, गोमेद गोमूत्रके समान रंगवाला होताहै, पद्मराग (माणिक्य) धूमरहित प्रदीप्त अग्निके समान कान्तिवाला होता है, मोती, शङ्ख और मूँगा ये समुद्रमें उत्पन्न होते हैं यह बात जगत्प्रसिद्ध है, राजावर्त (रेवटी) पीला और लाल रंगवाला है, कोमल, और सुगन्धसे युक्त होता है । इसकी उत्पत्ति पृथिवीसे कहते हैं ॥ ११॥ १२ ॥

सर्वरत्नपरीक्षाप्रकारः ।

ग्राहको भक्तिपूर्वेण समाहूय विचक्षणम् ।
आसनैर्गंधमाल्याद्यैस्तं वैद्यं तु प्रपूजयेत् ॥ १३ ॥
वीक्ष्य सम्यग्गुणान्दोषान्रत्नानां च विशारदः ।
दापयेत्कुरुसंज्ञां च लक्षमेकैकसन्निधौ ॥
लक्षयेद्वैद्यशास्त्रज्ञो शाणोत्कर्षणलेखनैः ॥ १४ ॥
लोहान यानि सर्वाणि सर्वरत्नानि यानि च ।
तानि वज्रेण लेख्यानि स च तेन विलिख्यते ॥ १५ ॥
अभेद्यमन्यजातीनां लोहवज्राग्निसन्निधौ ।
न चान्यभेदकं तस्य वज्रं वज्रेण भिद्यते ॥ १६ ॥

रत्नोंका ग्राहक भक्तिपूर्वक रत्नोंकी परीक्षा करनेमें चतुर वैद्यको बुलाकर आसन, सुगन्धित द्रव्य और माला आदिसे सत्कार करे तत्पश्चात् उस वैद्यको रत्न देवे और उससे कहे कि, इस रत्नकी परीक्षा करके आप नामका भी निश्चय करो, तब वह वद्य रत्नोंके गुण और दोषोंको अच्छे प्रकार देख भाल तथा कसौटी पर घिसकर वा शानपर घिसकर प्रत्येक रत्नमें लक्ष करे अथवा जितने रत्न हैं उन सबकी परीक्षा हीरासे घिसकर करे और हीराकी परीक्षा हीराहीसे करे क्योंकि सब जातिके लोहोंसे और अग्निसे भी हीरा तोडनेमें नहीं आता, हीराका तोडनेवाला और द्रव्य नहीं यह अपने आपहीसे टूटता है ॥ १३-१६ ॥

अज्ञानाद्रत्नमूल्यकथने कुगतिवर्णनम् ।

अज्ञानात्कुरुते मौल्ये सन्मुक्तामणिहीरकान् ।
इह स्याद्दुःखितोऽमुत्र रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ १७ ॥

जो मनुष्य विना जाने हुए ही मोती, मूँगा, मणि, हीरा आदिके मूल्यको कहता है वह इस लोकमें दुःख और परलोकमें रौरव नरकको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

अन्यच्च।

अज्ञानात्कथयेद्यस्तु रत्नमौल्यं कदाचन।
कुर्याच्च निग्रहं सम्यङ्मण्डली तस्य विक्रयी ॥ १८ ॥
अधमस्योत्तमं मौल्यमुत्तमस्याधमं तथा।
स्नेहान्मोहाद्भयात्कुर्युः सद्यः कुष्ठं भवेन्मुखे ॥ १९ ॥

जो मनुष्य विना जाने हुए ही कदाचित् रत्नोंका मूल्य कहे तो राजाको चाहिये कि उसको यथोचित दण्ड देवे और यदि स्नेह, मोह, तथा भय आदि कारणोंसे अधम रत्नका मूल्य उत्तम कह देवे और उत्तमका अधम तो शीघ्रही उसके मुखमें कुष्ठ होवे ॥ १८ ॥ १९ ॥

रत्नशोधनावश्यकता।

रत्नोपरत्नान्येतानि शोधनीयानि यत्नतः।
अशुद्धानि तु कुर्वन्ति व्रणान्रोगांश्च तन्वते ॥ २० ॥

जितने रत्न और उपरत्न कहे हैं उन सबको प्रयत्नसे शुद्ध करना चाहिये क्योंकि विना शोधन कियेहुए ये रत्न और उपरत्न व्रण तथा रोगोंको उत्पन्न करते हैं ॥ २० ॥

माणिक्यादीनां पृथक्पृथक् शोधनविधिः।

शुद्ध्यत्यम्लेन माणिक्यं जयन्त्या मौक्तिकं तथा।
विद्रुमं क्षीरवर्गेण तार्क्ष्यं गोदुग्धतः शुचि ॥ २१ ॥
पुष्परागं सैन्धवेन कुलित्थक्काथसंयुत।
तन्दुलीयजले वज्रं नीलं नालरसेन च ॥ २२ ॥
रोचनाभिश्च गोमेदं वैदूर्यं त्रिफलाजलैः।
एतान्येतेषु संस्विन्नान्याशु शुध्यन्ति दोलया ॥ २३ ॥

माणिक्यको अम्लवर्गोक्त औषधोंको दोलायन्त्र द्वारा स्वेदन करे तो शुद्ध होजाताहै, इसी प्रकार मोतीको जयन्ती अर्थात् अरनीके रसमें, मूँगाको दुग्ध-वर्गमें, पन्नाको गौके दूधमें, पुखराजको सेंधा नमकमें, हीराको कुलथीके काढेसे युक्त चौलाईके रसमें, नीलमको नीलीके रसमें, गोमेदको गोरोचनके जलमें और वैदूर्यको त्रिफलाके काढेमें दोलायन्त्रके द्वारा स्वेदन करे तो शीघ्र ही शुद्ध होजाते हैं ॥ २१-२३ ॥

वज्रादीनां मारणान्नरकप्राप्तिवर्णनम् ।

न हन्याद्धीरकादीनि नवरत्नानि बुद्धिमान् ।
महामौल्यानि तेषां तु वधाद्रौरवमृच्छति ॥ २४ ॥
यद्वा तदवनीजाततज्जातीयानि लक्षणैः ।
स्वल्पमौल्यानि तेषां तु वधे नास्ति हि पातकम् ॥ २५ ॥

बुद्धिमान् वैद्यको चाहिये कि बहुमूल्यवाले हीरा आदि पूर्वोक्त नवरत्नोंका मारण न करे क्योंकि इनके मारण करनेसे मनुष्य रौरवनरकको जाताहै । अथवा पृथ्वीके जिस प्रदेशमें हीरा आदि बहुमूल्य रत्न पैदा होते हैं उसी प्रदेशमें उत्पन्न हुए अपने २ लक्षणोंसे युक्त उसी जातिके जो स्वल्पमूल्यवाले रत्न हैं उनके मारणमें पातक नहीं होता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

वज्रादीनां मारणविधिः ।

रसहंसं शिलातालं गरुडं गन्धटङ्कणम् ।
भूनागं विमलं वङ्गं मेषशृङ्गं सचुम्बकम् ॥ २६ ॥
शुक्रं शोणितसंयुक्तं स्वेदनौषधिभावितम् ।
मूषालेपप्रयोगेण रत्नानां मारणं ध्रुवम् ॥
एवं वज्रभवं भस्म वज्रस्थाने नियोजयेत् ॥ २७ ॥

पारा, शिंगरफ, मनशिल, हरिताल, पन्नाका चूर्ण, गंधक, सुहागा, केंचुए, विमल (उपरसविशेष) वंग, मेंढेका सींग, चुम्बक पत्थरका चूर्ण, पुरुषका वीर्य, स्त्रीका रज इन सबको एकमें पीसकर स्वेदन औषधियोंकी भावना देवे तदनन्तर मूषामें इसका लेप करके धूपमें सुखालेव और जब सूखजावे तो उसमें हीरा आदि रत्नोंको डालकर अग्निमें रख धोंके तो निस्सन्देह उन रत्नोंकी भस्म सिद्ध होवे । इस प्रकार बनाईहुई हीराकी भस्मको जिस प्रयोगमें हीराकी भस्म लिखी हो उसमें मिलावे ॥ २६ ॥ २७ ॥

वज्रेतररत्नमारणविधिः ।

लकुचद्रावसंपिष्टैः शिलातालकगन्धकैः ।
वज्रं विनान्यरत्नानि म्रियन्तेऽष्टपुटैः खलु ॥ २८ ॥

मनशिल, गंधक और हरितालको समान भाग लेकर बडहलके रसमें पीस पुट देवे, इसी प्रकार आठ पुट देनेसे हीराको छोडकर अन्य सब रत्न भस्म होजाते हैं ॥ २८ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

हिङ्गुसैन्धवसंयुक्ते क्षेपात्क्वाथे कुलत्थके ।
रत्नानां सप्तसप्तानां भवेद्भस्म त्रिसप्तधा ॥ २९ ॥

सात रत्न और सात उपरत्नोंको सेंधा नमक और हींग संयुक्त कुलथीके काढेमें इक्कीस पुट देवे तो वे भस्म होजाते हैं ॥ २९ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

माक्षिकं गन्धकं तालं दरदं च मनःशिला ।
पारदं टङ्कणं दत्त्वा याममेकं प्रपेषयेत् ॥ ३० ॥
रत्नानि चाथ संपिष्य दृढं गजपुटे पचेत् ।
मारणं सर्वरत्नानां पुटेनैकेन जायते ॥ ३१ ॥

सोनामक्खी, गंधक, हरिताल, हिंगूल, मनाशिल, पारा और सुहागा इन सबको एक प्रहरतक पीसे और इनकी बराबर रत्नोंको पीसकर एकमें मिलादेवे तत्पश्चात् दृढ गजपुटमें पकावे, इस प्रकार करनेसे एक ही पुटसे सब रत्नोंकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

रत्नोपरत्नभस्मगुणाः ।

रत्नानि चोपरत्नानि चक्षुष्याणि सराणि च ।
शीतलानि कषायाणि मधुराणि शुभानि च ॥ ३२ ॥

विधिपूर्वक भस्म किहहुए रत्न और उपरत्न नेत्रोंके लिये हितकारी हैं, दस्तावर हैं, शीतल हैं, स्वादमें कषाय, मधुर और उत्तम हैं ॥ ३२ ॥

रत्नोपरत्नधारणगुणाः ।

धृतानि मङ्गलान्याशु तुष्टिपुष्टिकराणि च ।
ग्रहालक्ष्मीविषक्ष्वेडपापसंतापकादिकम् ॥ ३३ ॥
यक्ष्मापाण्डुप्रमेहार्शः कासं श्वासं भगन्दरम् ।
ज्वरं विसर्पकुष्ठार्तिशूलकृच्छ्रव्रणामयान् ॥
घ्नन्त्यायुष्यं यशः कीर्तिं पुण्यं च वर्द्धयन्ति हि ॥ ३४ ॥

रत्न और उपरत्नोंको धारण करे तो शीघ्रही मंगल तथा तुष्टि और पुष्टि होती है और ग्रहव्याधि, अलक्ष्मी, विषबाधा, पाप, संताप, क्षयीरोग, पाण्डुरोग, प्रमेह,

बवासीर, कास, श्वास, भगन्दर, ज्वर, विसर्प, कुष्ठ, पीडा, शूल, मूत्रकृच्छ्र, व्रण इन सबको नाश करते हैं। मनुष्यकी आयु तथा यश, कीर्ति और पुण्यको बढाते हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

वज्रोत्पत्तिः ।

दधीच्यस्थ्नः समुत्पन्नाः पतिताश्च कणाः क्षितौ ।
विकीर्णास्ते तु वज्राख्या भजन्ते तच्चतुर्विधम् ॥ ३५ ॥

किसी समयके लिये इन्द्रने विश्वकर्माको दधीचिऋषिकी हड्डियोंसे वज्र बनानेकी आज्ञा दी तब विश्वकर्माने वृत्रासुरके बध करने दधीचि ऋषिकी हड्डियोंसे वज्र बनायाथा। वज्र बनाते समय भूमिमें जो हड्डियोंके कण गिरेथे, कुछ कालके अनन्तर वे सब बिखरेहुए हड्डियोंके कण जब रूपान्तरमें प्राप्त हुए तो लोकमें हीरा नामसे प्रसिद्ध हुए, वह हीरा चार प्रकारका होता है ॥ ३५॥

मतान्तरम् ।

पूर्वं मंदरमन्थनाज्जलनिधौ प्रत्युद्गता या सुधा
तां प्रायः पिबतां सुरासुरगणानामाननाद्बिन्दवः ।
ये भूमौ पतिता विकर्तनकरव्रातैः पुनः शोषिता-
स्ते वज्राण्यभवन्भवेन कथितं साक्षान्मृडानीं प्रति ॥ ३६ ॥

हीराकी उत्पत्तिके विषयमें महादेवजीने पार्वतीजीसे यह कहाहै कि, पहले देवता और दानवोंने मंदराचलकी मथानी बनाकर जब समुद्रका मथन किया था तब उस समय जो अमृत उत्पन्न हुआ उसको जब देवता और दानव पान करने लगे तो उस समय उनके मुखसे पृथ्वीपर जो अमृत बिन्दु गिरे वही सूर्यकी किरणोंसे सूखकर हीरा होगया ॥ ३६ ॥

चतुर्विधवज्रजातिवर्णनं तद्विशेषाख्यानञ्च ।

श्वेतपीता रक्तकृष्णा द्विजाद्या वज्रजातयः ।
पुंस्त्रीनपुंसकं चेति लक्षणेन तु लक्षयेत् ॥ ३७ ॥
सुवृत्ताः फलसंपूर्णास्तेजोवन्तो बृहत्तराः ।
पुरुषास्ते समाख्याता रेखाबिन्दुविवर्जिताः ॥ ३८ ॥
रेखाबिन्दुसमायुक्ताःषट्कोणास्ताःस्त्रियःस्मृताः ।
त्रिकोणाः पत्रवद्दीर्घा विज्ञेयास्ते नपुंसकाः ॥ ३९ ॥

सर्वेषां पुरुषाः श्रेष्ठा वेधका रसबन्धकाः।
स्त्रीवज्रं देहसिद्ध्यर्थं क्रामणं स्यान्नपुंसकम् ॥ ४० ॥
विप्रो रसायने प्रोक्तः क्षत्रियो रोगनाशने।
देहादौ वैश्यजातीयो वयस्तम्भे तुरीयकः ॥ ४१ ॥
स्त्री तु स्त्रियै प्रदातव्या क्लीबे क्लीबं तथैव च।
सर्वेषां सर्वदा योज्याः पुरुषा बलवत्तराः ॥ ४२ ॥

हीरा चार प्रकारका होता है सफेद, पीला, लाल और काला इनमेंसे सफेद रंगका हीरा ब्राह्मण वर्ण, पीले रंगका क्षत्रिय, लाल रंगका वैश्य और काले रंगका शूद्र वर्ण माना गया है। पुरुष स्त्री और नपुंसकका ज्ञान आगेके श्लोकोंमें कहेहुए लक्षणोंसे करना चाहिये। जो हीरा गोल हो फलसे पूर्ण हो तेजसे युक्त और बडा हो, रेखा और बिन्दुओंसे रहित हो उसे पुरुषसंज्ञक जानना चाहिये। जो हीरा रेखा और बिन्दुओंसे युक्त छः कोणवाला हो उसे स्त्रीसंज्ञक जानना चाहिये। आर जा तीन कोणवाला तथा पत्तेके समान लंबा हो उसे नपुंसकसंज्ञक जानना चाहिये। पूर्वोक्त तीन प्रकारके हीरोंमेंसे पुरुषसंज्ञक हीरा उत्तम होता है, यही वेधक और रसबंधक है। स्त्रीसंज्ञकहीरा शरीरकी सिद्धिके लिये है, और क्रामणमें नपुंसकसंज्ञक हीरा काम आता है। रसायन कर्ममें ब्राह्मण वर्ण हीरा, रोगोंके नाश करनेमें क्षत्रियवर्ण श्रेष्ठ है। वैश्य वर्ण हीरा शरीरको दृढ करनेवाला है। शूद्रवर्ण हीरा अवस्थाको बढाता है, स्त्रीके लिये स्त्रीसंज्ञक हीरा देना चाहिये क्योंकि यह रूपको बढाता है, नपुंसक मनुष्यके लिये नपुंसकसंज्ञक देना चाहिये। और तीसरा जो पुरुषसंज्ञक अतिबली हीरा है वह सबके लिये देना चाहिये, और यह सब औषधियोंमें डालनेको उपयोगी है ॥ ३७-४२ ॥

वज्रं जातिविशेषेण चतुर्वर्णसमन्वितम्।
प्रयत्नेन च तद्वर्णं प्रविचार्य पृथक्पृथक् ॥ ४३ ॥

ब्राह्मणादि चार जातियोंकी विशेषतासे हीरोंके रंगोंका पृथक् २ विचार करके ग्रहण करना चाहिये ॥ ४३ ॥

जातिविशेषेण वज्रलक्षणम्।

सुस्निग्धः स्फटिकप्रभः शशिकलाशंखच्छविर्ब्राह्मणो
स्यारक्तद्युतिमंत्प्रियङ्गुकुसुमच्छायस्तथा क्षत्रियः।

वैश्यश्चासितपीतवर्णरुधिरौद्यो वा स दीप्तिर्भवे
च्छुद्रः कृष्णमुखस्तथा विरंचितो वर्णैश्चतुर्भिः शुभैः ॥ ४४ ॥

जो हीरा चिकना और स्फटिकमणिके सदृश कान्तिवाला तथा चन्द्रमा और शंखके तुल्य उज्ज्वल कान्तिसे युक्त हो उसको ब्राह्मण वर्ण समझना चाहिये। जो लाल रंगवाला तथा कुसुमपुष्पके समान कान्तिसे युक्त हो उसे क्षत्रियवर्ण जानना। जो कुछ काला और कुछ पीला तथा रक्तके सदृश दीप्तिवाला हो उसे वैश्यवर्ण जानना। और जो शुद्ध काले मुखका हो उसको शूद्रवर्ण जानना चाहिये। पूर्वोक्त चारों शुभ वर्णों करके हीराका वर्णन किया गया है ॥ ४४ ॥

अन्यच्च ।

श्वेतं द्विजाभिधं रक्तं क्षत्रियाख्यं तदीरितम् ।
पीतं वैश्याख्यमुदितं कृष्णं स्याच्छूद्रसंज्ञकम् ॥ ४५ ॥

सफेद रंगका हीरा ब्राह्मणवर्ण है। लाल रंगका क्षत्रिय वर्ण, पीले रंगका वैश्य-वर्ण और काले रंगका शूद्रवर्ण है ॥ ४५ ॥

विप्रवज्रादिधारणफलम् ।

धारणाद्यत्फलं पुंसां कथयामि पृथक्पृथक् ।
सप्तजन्मान्तरे विप्रो विप्रवज्रस्य धारणात् ॥ ४६ ॥
लभेद्वीर्यं महत्त्वं च दुर्जयो जयमाप्नुयात् ।
सर्वः सप्ताङ्गसम्पूर्णः क्षत्रवज्रस्य धारणात् ॥ ४७ ॥
प्रगल्भः कुशलो दक्षो बलवान्धनसंग्रही ।
प्राप्नोति फलितं चैव वैश्यवज्रस्य धारणात् ॥ ४८ ॥
बाहूपार्जितवित्तेन धनवाँश्च समृद्धिमान् ।
साधुः परोपकारी च शूद्रवज्रस्य धारणात् ॥ ४९ ॥

पहले जो विप्रवज्र, क्षत्रियवज्र आदि भेदोंसे हीराके चार भेद कहे हैं अब उन सबके धारण करनेका फल पृथक् २ वर्णन किया जाताहै। जो मनुष्य ब्राह्मण-वर्ण हीरा धारण करे वह सात जन्म पर्यन्त ब्राह्मणोंके कुलमें जन्म पाता है। क्षत्रियवर्णका वज्र धारण करे तो बल महत्त्व और दुर्जय जयको प्राप्त होता है, तथा सप्ताङ्गसम्पूर्ण धृष्टस्वभाव, चतुर, दक्ष, बली और धनका संग्रह करनेवाला होताहै। वैश्यवर्णका हीरा धारण करे तो अपने बाहुबलसे पैदा किये हुए धनसे

धनवान् और समृद्धिमान् होता है । और यदि शूद्रवर्णका हीरा धारण करे तो साधु तथा दूसरोंका उपकार करनेवाला होवे ॥ ४६--४९ ॥

वज्रस्य त्रिविधत्ववर्णनम् ।

वज्रं च त्रिविधं प्रोक्तं नरो नारी नपुंसकम् ।
पूर्वं पूर्वमिह श्रेष्ठं रसवीर्यविपाकतः ॥ ५० ॥

हीराके तीन भेद हैं, पुरुष, स्त्री और नपुंसक रस, वीर्य और विपाकके भेदसे इन तीनोंमें क्रमसे पूर्व पूर्वका हीरा उत्तम होताहै ॥ ५० ॥

पुरुषवज्रलक्षणम् ।

अष्टास्रं चाष्टफलकं षट्कोणमतिभासुरम् ।
अम्बुदेन्दुधनुर्वारितरं पुंवज्रमुच्यते ॥ ५१ ॥

जो हीरा आठ या छः कोणसे युक्त हो; आठ फलवाला हो अत्यन्त चमकदार हो, इन्द्रधनुषके सदृश कान्तिमान तथा जलमें तैरनेवाला हो उसे पुरुष संज्ञक जानना चाहिये ॥ ५१ ॥

स्त्रीवज्रलक्षणम् ।

तदेव चिपिटाकारं स्त्रीवज्रं वर्तुलायतम् ।

जो हीरा कुछ चिपटा, गोलाकार आयत हो उसे स्त्रीसंज्ञक जानना चाहिये ।

नपुंसकवज्रलक्षणम् ।

वर्तुलं कुण्ठकोणाग्रं किञ्चिद्गुरुन पुंसकम् ॥ ५२ ॥

जो हीरा गोल हो, और कोने भोंतरे हो गुरु हो उसे नपुंसकसंज्ञक जानना चाहिये ॥ ५२ ॥

त्रिविधवज्रफलम् ।

स्त्रियः कुर्वन्ति कायस्य कान्तिं स्त्रीणां सुखप्रदाः ।
नपुंसकास्त्ववीर्याः स्युरकामाः सत्त्ववर्जिताः ॥ ५३ ॥
स्त्रियः स्त्रीषु प्रदातव्याः क्लीबं क्लीबे प्रयोजयेत् ।
सर्वेभ्यः पुरुषा योज्या बलदा वीर्यवर्द्धनाः ॥ ५४ ॥

पहले जो तीन प्रकारके हीरा कहे गये हैं उनमेंसे स्त्रीजातिका हीरा स्त्रियोंके शरीरकी कान्तिको बढाताहै और सुखप्रद है, नपुंसक जातिका हीरा वीर्यरहित और काम तथा सत्त्वसे हीन होता है । स्त्रीके लिये स्त्रीजातिका हीरा देना,

नपुंसकके लिये नपुंसकजातिका हीरा देवे । तीसरा पुरुष जातिका हीरा सबके लिये देना चाहिये, यह बल और वीर्यकी वृद्धि करताहै ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

वज्रस्य व्यत्ययदानान्निष्फलत्ववर्णम् ।

स्त्रीपुंनपुंसकं वज्रं योग्यं स्त्रीपुंनपुंसके ।
व्यत्ययान्नैव फलदं पुंवज्रेण विना क्वचित् ॥ ५५ ॥

पूर्वोक्त स्त्री, पुरुष, नपुंसकसंज्ञक हीरा यथाक्रमसे स्त्री, पुरुष और नपुंसकोंको देना उचित है अर्थात् स्त्रीको स्त्रीसंज्ञक, पुरुषको पुरुषसंज्ञक इत्यादि विपरीत देनेसे गुण नहीं करता परन्तु पुरुषसंज्ञक हीरा स्त्री, पुरुष और नपुंसक इन तीनोंके लिये गुणकारी है ॥ ५५ ॥

प्रशस्तवज्रलक्षणम् ।

यत्पाषाणतले निकाशनिकरे नो घृष्यते निष्ठुरे
यच्चान्योपललोहमुद्गरसुखैर्लेखान्न यात्याहनम् ।
यच्चान्यन्निजलीलयैव दलयेद्वज्रेण वा भिद्यते
तज्जात्यं कुलिशं वदन्ति कुशलाः श्लाघ्यं महार्घं च तत् ॥ ५६ ॥

जो हीरा पत्थर वा कसौटी पर घिसनेसे नहा घिसे और लोहमुद्गर आदिसे न फूटे परन्तु आप अन्योंको लीलापूर्वक ही फोड देवे वा आप हीरासे ही फूटे उस हीरेको जौहरी लोग श्रेष्ठ और बहुमूल्य हीरा कहते हैं ॥ ५६ ॥

अन्यच्च ।

स्वच्छं विद्युत्प्रभं स्निग्धं सौन्दर्यं लघु लेखनम् ।
षडारं तीक्ष्णधारं च धारकाणां श्रियं दिशेत् ॥ ५७ ॥

जो हीरा निर्मल, बिजलीके समान कान्तिवाला, चिकना, सुन्दर, हलका, लेखन, षडार और तीक्ष्णधार हो वह धारण करनेवालोंको लक्ष्मीकी प्राप्ति करताहै ॥ ५७ ॥

अन्यच्च ।

लघु चाष्टाङ्गषट्कोणं तीक्ष्णं धारासुनिर्मलम् ।
गुणपञ्चकसंयुक्तं तद्वज्रं देवभूषणम् ॥ ५८ ॥

जो हीरा हलका, आठ अङ्गोंसे युक्त, षट्कोण और तीक्ष्ण धारवाला हो तथा स्वच्छ और पाँच गुणोंसे युक्त हो वह देवताओंका भूषण है ॥ ५८ ॥

दुष्टवज्रलक्षणम् ।

षट्कोणं लघुतीक्ष्णाग्रं बृहत्पद्मदलोपि वा ।
वज्रे काकबलोपेते ध्रुवं मृत्युं विनिर्दिशेत् ॥ ५९ ॥

जो हीरा छः कोणोंसे युक्त तथा हलका हो, तीक्ष्ण अग्रभागवाला हो, कमल-दलके तुल्य लंबा हो उस हीरेका नाम काकबलोपेत है, यह निस्सन्देह मृत्युकारक है ॥ ५९ ॥

अन्यच्च ।

भस्माभं काकपादं च रेखाक्रान्तं तु वर्तुलम् ॥ ६० ॥
आधारमलिनं बिन्दुं सत्रासे स्फुटितं तथा ।
नीलाभं चिपिटं रूक्षं तद्वज्रं दोषलं त्यजेत् ॥ ६१ ॥

जो हीरा राखके समान कान्तिवाला, त्रिकोण, गोलाकार, आधारमलिन, बिन्दुयुक्त, खरहरा, फूटा, नीली कान्तिसे युक्त, चिपटा और रूक्ष हो उस दोषयुक्त हीरेका त्याग करे ॥ ६० ॥ ६१ ॥

फलहीनवज्रलक्षणम् ।

स बाह्याभ्यन्तरे भिन्ने भग्ने कोणे तु वर्तुले ।
न समर्थो भवेत्तत्तु शुभाशुभफलोदये ॥ ६२ ॥

जो हीरा बाहर और भीतर टूटा हो, भग्नकोणोंवाला हो, गोल हो वह शुभ और अशुभ फलके देनेमें समर्थ नहीं है ॥ ६२ ॥

वज्राणां गुणदोषाः ।

गाढस्त्रासश्च बिन्दुश्च रेखा च जलगर्भता ।
सर्वरत्नेष्वमी पञ्च दोषाः साधारणाः मताः ॥
क्षेत्रतोऽप्भवा दोषा रत्नेषु न लगन्ति ते ॥ ६३ ॥

समस्त रत्नोंमें गाढ, त्रास, बिन्दु, रेखा और जलगर्भता ये पाँच दोष साधारण होते हैं । रत्नोंका क्षेत्र तथा जलके दोष नहीं लगते हैं ॥ ६३ ॥

अन्यच्च ।

दोषाः पञ्चगुणाः पञ्च छायाश्चैव चतुर्विधाः ।
मलो बिन्दुर्यवो रेखा भवेत्काकपदं तथा ॥
दोषाः पञ्च समुद्दिष्टाः शुभाशुभफलप्रदाः ॥ ६४ ॥

हीरामें पाँच दोष, पाँच गुण और चार प्रकारकी छाया होती है । मल, बिन्दु, यव, रेखा और काकपद ये शुभ और अशुभ फल देनेवाले पाँच दोष हैं ॥ ६४ ॥

रेखाभेदाः ।

वज्रे चतुर्विधा रेखा बुधैरेवोपलक्ष्यते ।
सव्या चायुःप्रदा ज्ञेया नापसव्या शुभप्रदाः ॥
उर्ध्वाचासिप्रहाराय च्छेदश्छेदाय बन्धुभिः ॥ ६५ ॥

हीरेमें चार प्रकारकी रेखा होती हैं । वे रेखा हीराकी परीक्षामें विज्ञ मनुष्योंसेही जानी जाती हैं, सव्य अर्थात् वामावर्त रेखा हो तो आयुको देती है और-अपसव्य अर्थात् दक्षिणावर्त हो तो अशुभ फल देती है । ऊर्ध्वरेखा हो तो तलवारका प्रहार कराती है, रेखाका छेद हो तो बन्धुसहित नाश करावे ॥ ६५ ॥

छायाभेदाः ।

श्वेता रक्ता तथा पीता कृष्णा छाया चतुर्विधा ।
सितच्छायाभवं सर्वं शशिच्छाया सुलक्षणम् ॥ ६६ ॥

हीराकी छाया चार प्रकारकी होती है, सफेद, लाल, पीली और काली । इनमेंसे श्वेत छायावाला हीरा चन्द्रछाया नामसे कहाजाता है, यह श्रेष्ठ होता है॥६६॥

आवर्तो वर्तकश्चैव भालबिन्दुर्यवाकृतिः ।
गुणदोषान्विते वज्रे बिन्दुर्ज्ञेयश्चतुर्विधः ॥ ६७ ॥
आवर्ते विपुलं वर्ते वृत्तकेऽपि यवाकृतिः ।
आयुःश्रियः क्षयो रक्ते देशेषु च पदाकृतिः ॥ ६८ ॥
रक्तपीतसितच्छायावर्णाढ्यश्च पदाश्रयः ।
तेषु दोषगुणाः सर्वे लक्ष्यन्ते च पृथक्पृथक् ॥ ६९ ॥
गजवाजिक्षयो रक्ते पीते वंशक्षयस्तथा ।
आयुर्धान्यं धनं लक्ष्मीः सिते यवपदाश्रये ॥
सव्यं चैवापसव्यं च छेदी छेदार्धगोऽपि वा ॥ ७० ॥

गुण और दोषोंसे युक्त हीरामें आवर्तक, वर्तक, भालबिन्दु और यवाकृति यह चार प्रकारके बिन्दु होते हैं । आवर्तक बिन्दु बडा होता है, वर्तक नामक बिन्दु गोल और छोटा होता है, चौथा बिन्दु यवाकृति है जो कि जौके आकारके समान होता है । यदि बिन्दु लाल रंगका हो तो आयु और लक्ष्मीका नाश

होताहै । इसकी पदाकृतिको भी देखना योग्य है । हीराकी पदाश्रय छाया लाल पीली और सफेद रंगोंसे युक्त होती है उनमें जो गुण और दोष हैं वे सब परीक्षामें कुशल मनुष्योंसे पृथक् २ जाने जाते हैं । यदि पदाश्रय छाया लाल रंगकी हो तो हाथी और घोडोंका क्षय हो, पीले रंगकी हो तो वंशका क्षय हो, यदि यवपदाश्रय छाया सफेद हो तो आयु, धन, धान्य और लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है । इन रेखाओंमें सव्य, अपसव्य तथा छेद और छेदार्द्धका भी विचार करना चाहिये ॥ ६७-७० ॥

धाराबिन्दुविरहितं सर्वलक्षणसंयुतम् ।
तद्वज्रं तोलयेत्सम्यक्पश्चान्मूल्यं विनिर्दिशेत् ॥ ७१ ॥

धारा और बिन्दुओंसे रहित सब शुभलक्षणोंसे युक्त हीरेको पहले तोले तत्पश्चात् उसका मोल कहना चाहिये ॥ ७१ ॥

पूर्वं पिण्डसमं कुर्याद्वज्रतौल्यप्रमाणतः ।
स पिण्डस्त्रिविधो ज्ञेयो लघुसामान्यगौरवैः ॥ ७२ ॥
अष्टाभिः सितसिद्धार्थैस्तण्डुलश्च प्रकीर्तितः ।
तण्डुलस्य प्रमाणेन वज्रमौल्यं स्मृतं बुधैः ॥ ७३ ॥
गुरुत्वे चार्द्धमौल्यं स्यात्सामान्ये मध्यमं स्मृतम् ।
लाघवे चोत्तमं मौल्यमुत्तमाधममध्यमम् ॥ ७४ ॥
गुरुत्वे त्रिविधं मौल्यं त्रिविधं लाघवे तथा ।
सामान्ये षड्विधं ज्ञेयमेवं द्वादशधा स्मृतम् ॥ ७५ ॥

पहले हीरेके तोलके प्रमाणसे पिण्डके अनुसार मूल्य आदिकी कल्पना करे । पिण्ड तीन प्रकारका होता है लघु, सामान्य और गौरव । आठ सफेद सरसोंका एक चावल होता है । पण्डितोंने चावलके प्रमाणसेही हीरेका मूल्य कहा है । जिस हीरेका तोल तो चावलके बराबर हो परन्तु देखनेमें चावलसे छोटा दीखे उसका मोल उत्तम मोलवाले हीरेसे आधा होता है, यदि हीरेका पिण्ड सामान्य हो अर्थात् आकार तथा तोलमें चावलसे विशेष अन्तर न रखता हो तो उसका मोल मध्यम समझना चाहिये और यदि हीरेका पिण्ड लघु हो अर्थात् तोलमें चावलसे अधिक हो परन्तु आकार उसका चावलसे बडा हो तो उसका मूल्य उत्तम जानना चाहिये । उत्तम, मध्यम और अधमके भेदसे गुरुत्वमें तीन भेद

हैं इसी प्रकार लाघवमेंभी तीन भेद जानना चाहिये । सामान्यमें छः भेद जानना । सब मिलाकर तोल और मोलके बारह भेद हुए ॥ ७२--७५ ॥

वज्रमूल्यनिर्णयः ।

मनसा भावयेत्पिण्डं यवमात्रैकतण्डुलम् ।
तत्पिण्डसमवज्रं तु ज्ञात्वा मूल्यं विनिर्दिशेत् ॥ ७६ ॥
गात्रेण यवमात्रश्च गुरुत्वं तण्डुलेन च ।
मूल्यं पञ्चशतं तस्य वज्रस्य च विनिर्दिशेत् ॥ ७७ ॥
यवद्वयसमं पिण्डं लाघवं तण्डुलोपमम् ।
मूल्यं चतुर्गुणं तस्य त्रिभिश्चाष्टगुणं भवेत् ॥
चतुर्भिर्द्वादशप्रोक्तं पञ्चभिः षोडश स्मृतम् ॥ ७८ ॥

रत्नपरीक्षामें कुशल वैद्यको चाहिये कि, वह पहले अपने मनमें पिण्डका अनुमान करे अर्थात् उस हीरेका आकार कितने यवके बराबर है, और तोलमें कितने चावल भर है इस प्रकार वज्रके पिण्डको जानकर उसका मूल्य कहना चाहिये । जिस हीरेका मुटाव जौके सदृश हो और तोलमें एक चावलके बराबर हो तो उस हीरेका मूल्य पांच सौ रुपया कहना चाहिये । जिस हीरेका पिण्ड दो जौके बराबर हो और तोलमें वह एक चावलके बराबर हो तो उसका मूल्य पूर्वोक्त मूल्यका चौगुना अर्थात् दो सहस्र जानना । यदि मुटावमें तीन जौके बराबर हो और तोलमें एक चावलके समान हो तो पूर्वोक्त मूल्यका अठगुना अर्थात् चार हजार रुपया उसका मूल्य जानना । यदि हीरेका मुटाव चार यवके बराबर हो परन्तु तोलमें वह एक चावलके समान हो तो उसका मूल्य बारह गुना अर्थात् छः हजार रुपया जानना । और यदि मुटावमें पांच जौके बराबर हो परन्तु तोलमें एक चावलके बराबर हो तो उसका मूल्य षोडशगुना अर्थात् आठ हजार रुपया जानना चाहिये ॥७६--७८ ॥

षड्विन्दुर्यस्य वज्रस्य स्थापनाद्यदि निर्गुणम् ।
सपादयवषट्कस्य पादहीनं च तण्डुलम् ॥ ७९ ॥
अष्टाविंशतिकं मूल्यं कथितं च भिषग्वरैः ।
सप्तमं पिण्डमौल्यं च द्विसहस्रं विनिर्दिशेत् ॥ ८० ॥
यावत्पिण्डनिभं रूपं दापयेद्द्विचतुर्गुणम् ।
पिण्डशास्त्रे भवेद्वज्रं पादांशं लघुतो यदि ॥ ८१ ॥

अष्टादशगुणं मौल्यं रत्नकोशे प्रभाषितम्।
द्वौ यवौ लघवज्रस्य षट्त्रिंशत्स्थापयेद्गुणान् ॥ ८२ ॥
त्रिपादोपरि ते वज्रं चत्वारिंशद्गुणं भवेत्।
पिण्डपादाधिकं वज्रं तौल्यं तद्गुणतो व्रजेत् ॥
क्षपिते द्विगुणं मौल्यं रत्नकोशे प्रभाषितम् ॥ ८३ ॥
"वज्रमणेर्मल्यपरिज्ञानार्थं पाठान्तरम्"
सितसर्षपाष्टकं तण्डुलो भवेत्तण्डुलैस्तु विंशत्या।
तुलितस्य द्वे लक्षे द्व्यूनं द्विद्व्यूनिते चैतत् ॥ ८४ ॥
पादत्र्यंशार्द्धीनं त्रिभागपञ्चांशषोडशांशश्च।
भागश्च पञ्चविंशतिकः स्यात्साहस्रिकश्चैव ॥ ८५ ॥
यवसप्तकगात्रं तु यदि वारितरं भवेत्।
वज्रस्यास्य त्विदं मौल्यं द्विसहस्रगुणं भवेत् ॥ ८६ ॥
दोषे प्रकाशिते वज्रे समूल्यं यत्र यद्भवेत्।
हीनत्वं प्राप्यते तत्तु मौल्यं शतगुणाधिकम् ॥ ८७ ॥

यदि हीरेका आकार सात जौके बराबर हो और जलमें तैरे तो उसका मूल्य दो हजार गुणा जानना चाहिये और जिस हीरामें दोष जान पड़ें उसका मोल उत्तम हीरासे सौगुना कम होजाता है ॥ ७९-८७ ॥

अन्यच्च।

मूल्यं द्वादशकं प्रोक्तं वज्रस्यापि महात्मनः।
धारासूत्रं स्थितं कोणे वज्रमध्ये भवेद्यदि ॥ ८८ ॥
तत्स्थाने मङ्गलं प्रोक्तं रत्नज्ञानविशारदैः।
वह्नेर्भयं भवेन्मध्ये तीक्ष्णधारासु दंष्ट्रिणः ॥
रत्नविद्भिरिदं ज्ञेयं तथा कोणद्वयाश्रितम् ॥ ८९ ॥

अच्छे हीरेका मोल बारह प्रकारका कहा है। यदि हीरेके कोण या मध्यमें धारासूत्र स्थित हो तो उस स्थानमें मङ्गल होवे यह रत्नपरीक्षामें चतुर मनुष्योंने कहा है। और यदि हीरेके मध्यमें सर्पाकार तीक्ष्ण रेखा हो अथवा दो कोणोंसे युक्त हो तो उसको अग्निभय करनेवाला जानना चाहिये ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

वज्रशोधनावश्यकता ।

अशुद्धवज्रं कुरुते कुष्ठं पार्श्वव्यथां तथा ।
पाण्डुं तापं गुरुत्वं च तस्मात्संशोध्य मारयेत् ॥ ९० ॥

विना शोधन किया हुआ हीरा-कुष्ठ, पसवाडोंमें पीडा, पाण्डुरोग, ज्वर और शरीरमें भारीपन करता है, इस कारण विधिपूर्वक इसका शोधन करके पश्चात मारण करे ॥ ९० ॥

अन्यच्च ।

पीडां विधत्ते विविधां नराणां कुष्ठं क्षयं पाण्डुगदं च दुष्टम् ।
हृत्पार्श्वपीडां कुरुतेतिदुस्सहामशुद्धवज्रं गुरुमात्महं त्यजेत् ॥ ९१ ॥

अशुद्ध हीरा मनुष्योंके शरीरमें अनेक प्रकारकी पीडा, कुष्ठरोग, क्षयीरोग, पाण्डुरोग और हृदय तथा पसवाडोंमें दुस्सह पीडाको उत्पन्न करताहै इसहेतु इस प्राणनाशक हीरेका त्याग करे ॥ ९१ ॥

वज्रशोधनविधिः ।

व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं दोलायन्त्रेण पाचयेत् ।
सप्ताहं कोद्रवक्काथैः कुलिशं विमलं भवेत् ॥ ९२ ॥

व्याघ्रीकंदके बीचमें हीरेको रखकर कोदोंके काढेमें दोलायन्त्रके द्वारा सात दिन पर्यन्त पकावे तो शुद्ध हो जाता है ॥ ९१ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

गृहीत्वाह्नि शुभे वज्रं व्याघ्रीकन्दे विनिःक्षिपेत् ।
महिषीविष्ठया लिप्त्वा करीषाग्नौ विपाचयेत् ॥ ९३ ॥
त्रियाम च चतुर्याम पञ्चयामेऽश्वमूत्रके ।
सेचयेत्पाचयेदेवं सप्तरात्रेण शुद्धयति ॥ ९४ ॥

किसी शुभ दिनमें उत्तम हीराको लेकर व्याघ्रीकन्दके (कटेरीकी जड) के बीचमें रक्खे और उसके ऊपर भैंसके गोबरका लेप करके आरने उपलोंकी अग्निमें तीन या चार प्रहर पर्यन्त पकावे और पाँचवें प्रहरमें आँचसे अलग निकालकर घोडेके मूत्रमें बुझावे । इसी प्रकार सात बार करे तो हीरा शुद्ध होजाताहै ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

कुलत्थक्वाथके स्विन्नं कोद्रवक्वथितेन वा ।
एकयामावधि स्विन्नं वज्रं शुद्ध्यति निश्चितम् ॥ ९५ ॥

हीराको कुलथी वा कोदोंके काढेमें एक प्रहर पर्यन्त दोलायन्त्रके द्वारा पकावे तो वह निश्चय शुद्ध होजाता है ॥ ९५ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

कुलत्थकोद्रवक्वाथैर्दोलायन्त्रे विपाचयेत् ।
व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं मृदालिप्तं पुटे पचेत् ॥ ९६ ॥
अहोरात्रात्समुद्धृत्य हयमूत्रेण सेचयेत् ।
वज्रीक्षीरेण वा सिञ्चेत्कुलिशं विमलं भवेत् ॥ ९७ ॥

पहले हीराको कुलथी वा कोदोंके काढेमें दोलायन्त्रके द्वारा पकावे और पीछे व्याघ्रीकन्द अर्थात् कटेरीकी जडमें रख कपरमिट्टी करके संपुटमें रख फूँकदेवे, जब एक दिन रात बीतजावे तब आँचसे अलग निकालकर घोडेके मूत्र वा थूहरके दूधमें बुझावे तो वह शुद्ध होजाताहै ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

वज्रमारणविधिः ।

त्रिवर्षरूढकार्पासमूलमादाय पेषयेत् ।
त्रिवर्षनागवल्ल्या वा बीजद्रावैः प्रपेषयेत् ॥ ९८ ॥
तद्गोलके क्षिपेद्वज्रं रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ।
एवं सप्तपुटैर्नूनं कौलिशं भस्म जायते ॥ ९९ ॥

जो तीन वर्षका पुराना हो उस कपासके वृक्षकी जडको लाकर बारीक पीस गोला बनालेवे अथवा कपासके वृक्षकी जडको पिसाले नागरबेलके बीजोंके रसके साथ बाँटकर गोला बनालेवे और उस गोलेके भीतर हीरेको रख सात कपरमिट्टी करके गजपुटमें फूँकदेवे । इसी प्रकार सात पुट देनेसे निश्चय हीराकी भस्म सिद्ध हो जाती है ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

त्रिःसप्तकृत्वः संतप्तः खरमूत्रेण सेचयेत् ।
मत्कुणैस्तालकं पिष्ट्वा तद्गोलं कुलिशं क्षिपेत् ॥ १०० ॥

प्रध्मातं वाजिमूत्रेण सिक्तं पूर्वक्रमेण वै ।
भस्मीभवति तद्वज्रं शंखशीतांशुपाण्डुरम् ॥ १०१ ॥

उत्तम हीराको आँचमें बार बार तपाकर गधेके मूत्रमें बुझावे, तत्पश्चात् खटमल और हरितालको एकमें पीसकर गोला बनावे और इस गोलेके भीतर हीराको रख अग्नि देवे जब अच्छे प्रकार अग्नि लगजावे तब आँचसे अलग निकालकर घोडेके मूत्रमें बुझावे । इस क्रियाको इक्कीस वार करे तो शङ्ख वा चन्द्रमाके समान सफेद रंगवाली भस्म सिद्ध होजाती है ॥ १०० ॥ १०१ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

हिङ्गुसैन्धवसंयुक्ते क्वाथे कौलत्थजे क्षिपेत् ।
तप्तं तप्तं पुनर्वज्रं भूयाच्चूर्णं त्रिसप्तधा ॥ १०२ ॥

हीराको अग्निमें तपा तपाकर हींग, कुलथी और सेंधा नमकके काढेमें इक्कीस बार बुझावे तो उसकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ १०२ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

मेषशृङ्गं भुजङ्गास्थि कूर्मपृष्ठाम्लवेतसम् ।
शशदन्तं समं पिष्ट्वा वज्राक्षारेण गोलकम् ॥
कृत्वा तन्मध्यगं वज्रं म्रियते ध्मातवह्निना ॥ १०३ ॥

मेंढेका सींग, साँपकी हड्डी, कछुवेकी पीठ, अमलबेत, शशेक दांत इन सबोंको समान भाग लेकर बारीक पीसकर थूहरके दूधक साथ घोटकर गोला बनालेवे और उस गोलेके बीचमें हीरेको रख सात कपरमिट्टी करके गजपुटमें फूँकदेवे तो हीरेकी उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है ॥ १०३ ॥

पञ्चमः प्रकारः ।

विलिप्तं मत्कुणस्यांत्रैः सप्तवारं विशोधितम् ।
कासमर्दरसैः पूर्णे लोहपात्रे निवेशयेत् ॥ १०४ ॥
सप्तवारं परिध्मातं वज्रभस्म भवेत्खलु ।
वज्रचूर्णं भवेद्वर्ण्यं योजयेच्च रसादिषु ।
ब्रह्मज्योतिर्मुनीन्द्रेण क्रमाऽयं परिकीर्तितः ॥ १०५ ॥

शुद्ध हीराको अग्निमें तपाकर खटमलकी आँतोंका लेप करके धूपमें सुखा-लेवे । इसी प्रकार सात बार लेपकरे और प्रत्येक लेपके अन्तमें सुखालिया करे,

और पीछे कसोंदीके रससे पूर्ण लोहेके पात्रमें उस हीरेको डालकर अग्नि देवे-जब कसौंदीका रस सूखजावे तब फिर पूर्ववत् अग्निमें हीरेको तपाकर खटमलोंका लेप करके कसोंदीके रससे पूर्ण लोहपात्रमें रखकर अग्नि देवे। इसी प्रकार सात बार करे तो निस्सन्देह हीराकी उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है, यह वज्रभस्म देहमें कान्तिको उत्पन्न करनेवाली है। वैद्यको चाहिये कि, वह अन्य रसादिकोंमें बुद्धि पूर्वक इसकी योजना करे हीराके भस्म बनानेका यह पाँचवाँ प्रकार ब्रह्मज्योति मुनीन्द्रका कहा हुआ है ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

षष्ठः प्रकारः ।

वज्रं मत्कुणरक्तेन चतुर्वारं विभावितम् ।
दुर्गन्धिमूषिकामांसैर्वर्तितैः परिमर्द्य च ॥ १०६ ॥
पुटेत्पुटैर्वराहाख्यैस्त्रिंशद्वारं ततः परम् ।
ध्मात्वा ध्मात्वा शतं वारान्कुलत्थे क्वाथके क्षिपेत् ॥ १०७ ॥
अन्यैरुक्तः शतं वारं कर्तव्योयं विधिक्रमः ।
कुलत्थक्वाथसंयुक्तलकुचद्रावपिष्टया ॥ १०८ ॥
शिलया लिप्तमूषायां वज्रं क्षिप्त्वा निरुध्य च ।
अष्टवारं पुटेत्सम्याग्विशुष्कैश्च वनोपलैः ॥ १०९ ॥
शतवारं ततो ध्मातं निक्षिप्तं शुद्धपारदे ॥
निश्चितं म्रियते वज्रं भस्म वारितरं भवेत् ११० ॥
सत्यवाक्सोमसेनानीरेतद्वज्रस्य मारणम् ।
दृष्टप्रत्ययसंयुक्तमुक्तवान्रसकौतुकी ॥ १११ ॥

शुद्ध हीराको लाकर पहले खटमलके रक्तकी चार भावना देवे और पीछे छछूँदरके मांसमें मर्दन करके वाराहपुटमें फूँकदेवे, इसी प्रकार तीस बार करे, तत्पश्चात् उस हीराको अग्निमें तपा तपाकर सौ बार कुलथीके काढेमें बुझावे । यहां अन्य आचार्योंने ऐसा कहा है कि, पहले सौ बार खटमलोंके रुधिरकी भावना देवे और पीछे कुलथीके क्वाथमें बुझावे, तदनन्तर कुलथीके क्वाथमें बडहरका रस मिलावे और उसमें मनसिलको पीसकर मूषामें लेप करे और फिर उस हीरेको मूषामें रख और मूँदकर आरने उपलोंकी अग्निमें फूँकदेवे इस प्रकार सूखे हुए जङ्गली उपलोंकी अग्निमें आठ पुट देनेके अनन्तर अग्निमें हीराको तपा तपाकर सौ बार

शुद्ध पारेमें बुझावे तो निस्सन्देह जलमें तैरनेवाली वज्रभस्म सिद्ध होजाती है। यह दृष्ट और अनुभूत भस्म बनानेका विधान रसकौतुकी सत्यवाक् सोमसेनानीने कहा है ॥ १०६–१११ ॥

सप्तमः प्रकारः ।

विलिप्तं मत्कुणस्यास्रे सप्तवारं विशोधितम् ।
कासमर्दरसैः पूर्णे ताम्रपात्रे निवेशयेत् ॥ ११२ ॥
शतवारं परिध्मातं वज्रभस्म भवेत्खलु ।
ब्रह्मज्योतिर्मुनीन्द्रेण भाषितं रत्नसागरे ॥ ११३ ॥

हीरामें खटमलके रुधिरकी सात भावना देवे और पीछे कसौंदीके रससे पूर्ण ताँबेके पात्रमें उस हीरेको डालकर अग्नि देवे। इसी प्रकार सौ बार करे तो निस्सन्देह वज्रभस्म सिद्ध होजाती है। यह वज्रमारणका विधान रत्नसागर नामक ग्रन्थमें ब्रह्मज्योतिमुनीन्द्रने कहा है ॥ ११२ ॥ ११३ ॥

अष्टमः प्रकारः ।

नीलज्योतिर्लताकन्दे व्युष्टं घर्मे विशोषितम् ।
वज्रं भस्मत्वमायाति क्रमवज्ज्ञानवह्निना ॥ ११४ ॥

नीलज्योतिलताकी कन्दमें एक दिन हीराको रखकर धूपमें सुखाय यथासंभव अग्निदेनेसे उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ११४ ॥

नवमः प्रकारः ।

मदनस्य फलोद्भूतरसेन क्षोणिनागरैः ।
कृतकल्केन संलिप्य पुटेद्विंशतिवारकम् ।
वज्रचूर्णं भवेद्वर्ण्यं योजयेच्च रसादिषु ॥ ११५ ॥

मैनफलके रसमें अलसी और सोंठको बाँट कर कल्क बनालेवे और हीराके ऊपर इसका लेप करके विधिपूर्वक अग्निमें रखकर फूँकदेवे। इसी प्रकार बीस पुट देवे तो हीराकी उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है। वैद्यको चाहिये कि, वह बुद्धिपूर्वक अन्य रसादिकोंमें इसकी योजना करे ॥ ११५ ॥

ब्रह्मरत्नमारणविधिः ।

गरुडं गन्धकं तालं बदरीरससंप्लुतम् ।
अश्वत्थस्वरसैर्भाव्यं पुटेत्पिण्डं सरक्तकम् ॥
म्रियते तेन योगेन ब्रह्मरत्नं हि तत्त्वतः ॥ ११६ ॥

हीरामें पहले खटमलोंके रुधिरकी भावना देवे और पीछे बेरके रसमें घोटेहुए छरेहटा, गंधक, हरिताल, और पीपलके पत्तोंके रसकी भावना देकर विधिपूर्वक फूँक देवे तो निस्सन्देह उस ब्राह्मणवर्ण हीरेकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ११६ ॥

क्षत्रियरत्नमारणविधिः ।

नीलं च शङ्खचूर्णं च शिलाभूनागसूरणम् ।
म्रियते क्षत्रजातीनां पुटैः स्वाभिर्न संशयः ॥ ११७ ॥

नील, शंखका चूरा, मनसिल, केंचुए और सूरण इनको एकमें पीसकर हीरामें पुट दे और मूषामें रख बँकनाल धोंकनीसे धोंके तो क्षत्रिय जातिके हीरेकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ११७ ॥

वैश्यरत्नमारणम् ।

स्नुह्यर्ककरवीरं च भूनागं दरदं वटाः ।
उत्तमा वारुणीक्षीरैर्वैश्यानां मारणं पुटैः ॥ ११८ ॥

थूहर, आक, कनेर, केंचुआ, शिंगरफ, बडका दूध, उत्तम दारू और दूधकी भावना देकर वैश्य जातिके हीरेको फूँके तो उसकी भस्म सिद्ध होजाती है॥११८॥

शूद्ररत्नमारणविधिः ।

गन्धाश्मकं घृतं तालं मेषशृङ्ग समांशकम् ।
विषं कान्तं स्नुहीक्षीरं नारीपुष्पं पयःप्लुतम् ।
एभिर्विलिप्तमूषायां धमनादन्यमारणम् ॥ ११९ ॥

गंधक, घृत, हरताल, मेढासिंगी, सहत, विष, कान्तलोह, थूहरका दूध, स्त्रीके मासिक धर्मका रुधिर और दूध इन सबको एकमें बाँधकर मूषामें लेप करदेवे और शूद्रजातिके हीराको उस मूषामें रखकर फूँके तो उसकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ११९ ॥

वज्रसत्त्वपातनविधिः ।

तद्वज्रं चूर्णयित्वाथ किञ्चिट्टङ्कणसंयुतम् ।
खरभूनागसत्त्वेन विषेनावर्तते ध्रुवम् ।
तुल्यस्वर्णेन तद् ध्मातं योजनीयं रसादिषु ॥ १२० ॥

पूर्वोक्त रीतिसे फूँकेहुए हीरेको बारीक पीसकर उसमें थोडासा सुहागा मिलाकर केंचुएके गरम सत्त्वमें मिलादेवे और फिर उसमें हीरेकी बराबर सोना डालकर

अग्निपर रख धमें तो सत्त्व निकलताहै । वैद्यको चाहिये कि वह बुद्धिपूर्वक इस सत्त्वकी योजना अन्य रसोंमें करे ॥ १२० ॥

चलदन्तविबन्धनविधिः ।

त्रिगुणेन रसेनैव संमर्द्य गुटिकीकृतम् ।
मुखे धृते करोत्याशु चलदन्तविबन्धनम् ॥ १२१ ॥

जितनी हीराकी भस्म हो उसका तिगुना शुद्ध किया हुआ पारा उसमें मिलाकर गोली बनालेवे और इस गोलीको मुखमें रक्खे तो हिलते हुए दांतोंको शीघ्र ही दृढ कर देती है ॥ १२१ ॥

वज्रभस्मगुणाः ।

आयुःप्रदं सद्गुणदं च वृष्यं दोषत्रयप्रशमनं सकलामयघ्नम् ।
सूतेन्द्रबन्धवधसद्गुणदं प्रदीप्तं मृत्युं जयेत्तदमृतोपममेव वज्रम् ॥ १२२ ॥

विधिपूर्वक बनाई हुई हीराकी भस्म मनुष्योंकी आयु तथा शुभगुणोंको बढाती है, वृष्य है, वात, पित्त और कफके दोषोंको शान्त करती है और अन्य भी सम्पूर्ण रोगोंको नाश करती है पारेकी बद्धक तथा मारण करनेवाली है और पारेके उत्तम गुणोंको प्रगट करनेवाली है, प्रदीप्त है, मृत्युको भी दूर करनेवाली तथा अमृतके समान गुणकारी है ॥ १२२ ॥

अन्यच्च ।

वज्रं च षड्रसोपेतं सर्वरोगापहारकम् ।
सर्वाघशमनं सौख्यं देहादार्ढ्यं रसायनम् ॥ १२३ ॥

विधिपूर्वक बनाई हुई हीराकी भस्म छः प्रकारके रसोंसे युक्त तथा सर्व रोगोंको नाश करनेवाली और सम्पूर्ण पापोंको दूर करनेवाली है, सुखकारक तथा शरीरको दृढ करनेवाली रसायन है ॥ १२३ ॥

अन्यच्च ।

वज्रं समीरकफपित्तगदांश्च हन्याद्वज्रोपमं च कुरुते वपुरुत्तमश्रि ।
शोषक्षयज्वरभगन्दरमेहमेदःपाण्डूदरश्वयथुहारि च षड्रसाढ्यम् ॥ १२४ ॥
आयुःपुष्टिं च वीर्यं च वर्णसौख्यं करोति च ।
सेवितं सर्वरोगघ्नं मृतं वज्रं न संशयः ॥ १२५ ॥

शुद्ध हीराकी भस्म वात, पित्त और कफके दोषोंका नाश करती है, शरीरको वज्रके समान दृढ और उत्तम कान्तिसे युक्त करती है । शोषरोग, क्षयी, ज्वर, भगन्दर, प्रमेह, मेदा, पाण्डुरोग, उदरके रोग और शोफको दूर करती है, छः

प्रकारके रसोंसे युक्त है। आयुको पुष्ट और वीर्यको उत्पन्न करती है, देहमें उत्तम कान्ति और सुख करती है। उचित अनुपानके साथ सेवन करनेसे निस्सन्देह सम्पूर्ण रोगोंका नाश करती है ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

भस्मसेवनानुपानानि।

कुष्ठे खादिरवल्कयुक्पवनजेऽसृज्यार्द्रकक्षौद्रयुग्
देयं कासबलासश्वासविकृतौ वासोषणात्वक्कणाः।
पित्ते दाहसितासमं ज्वरगणे च्छिन्नाजले तिक्तके
वज्रं मारितशुक्लभस्मगदहृद्युञ्ज्याद्भिषग्युक्तिभिः ॥ १२६ ॥

कुष्ठरोगमें हीराकी भस्मको खैर वृक्षकी छालके साथ सेवन करे, वातरक्तमें अदरखके रस और शहदके साथ, खाँसी, कफ और श्वास रोगमें अडूसेके रस, काली मिर्च, दालचीनी और पीपलके साथ, पित्त और दाहमें मिश्रीके साथ, सर्व प्रकारके ज्वरोंमें गिलोय और चिरायतेके काढेके साथ देवे। विधिपूर्वक मारण किया हुआ श्वेत भस्मरूप यह वज्र सर्वरोगोंका नाशक है, इस कारण वैद्यको चाहिये कि बुद्धिपूर्वक अनुपानोंकी कल्पना करके अनेक रोगोंमें इसकी योजना करे १२६॥

भस्मसेवनविधिः।

सूतभस्मार्द्धसंयुक्तं मृतवज्रस्य भस्मकम्।
मृताभ्रसत्त्वसुभयोस्तुलितं परिमर्दितम् ॥ १२७ ॥
क्षौद्राज्यसंयुतं प्राज्ञैर्गुञ्जामात्रं च सेवितम्।
निहन्ति सकलान्रोगान्सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ १२८ ॥
एवं वज्रभवं भस्म सेवनीयं नृभिस्सदा।
त्रिसप्तदिवसैर्नृणां गङ्गाम्भ इव पातकम् ॥ १२९ ॥

एक भाग हीराकी भस्म, अर्द्धभाग पारेकी भस्म और इन दोनोंके बराबर मृत अभ्रकका सत्त्व लेकर शहद और घीमें मिलाकर प्रतिदिन एक रत्ती मात्रासे सेवन करे तो सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करे। इस पूर्वोक्त प्रकारसे वज्रभस्मका सेवन नित्य करना चाहिये, जिस प्रकार गङ्गाजल पातकोंको दूर करता है वैसेही इक्कीस दिन पर्यन्त सेवन करनेसे यह भस्म समस्त रोगोंको हरलेती है॥१२७-१२९॥

अन्यच्च।

त्रिंशद्भागमितं हि वज्रभसितं स्वर्णं कलाभागकं
तारं चाष्टगुणा सितामृतवरं रुद्रांशकं चाभ्रकम्।

पादांशं खलु ताप्यकं वसुगुणं वैक्रान्तकं षड्गुणं
भागोप्युक्तरसै रसोयमुदितः षाड्गुण्यसंसिद्धये ॥ १३० ॥

हीराकी भस्म तीस भाग, सुवर्णकी भस्म सोलह भाग, चांदीकी भस्म आठ भाग, सिंगिया विष एकादश भाग, अभ्रकभस्म चौथाई भाग सोनामक्खीकी भस्म आठ भाग, वैक्रान्तमणिकी भस्म छः भाग, पारेकी भस्म एक भाग इन सबको एकमें मिलाकर रखलेवे । यह अनेक रसोंके मेलसे बनाहुआ अति उत्तम रस षड्गुणकी सिद्धिके लिये प्राचीन आचार्योंने कहा है ॥ १३० ॥

वज्रमृदूकरणविधिः ।

मातुलुङ्गान्तरे वज्रं रुद्ध्वा बाह्ये मृदा लिपेत् ।
पुटेत्पश्चात्समुद्धृत्य एवं शतपुटैः पचेत् ॥ १३१ ॥
नागवल्ल्याद्रवैर्लिप्तं तत्पत्रेणैव वेष्टयेत् ।
भूमध्ये च स्थितं यावत्तद्वज्रं मृदुतां व्रजेत् ॥ १३२ ॥

बिजौरा नीम्बूके भीतर हीरेको रखकर ऊपर कपरमिट्टी करदेवे और फिर अग्निमें रख फूँकदे इसी प्रकार सौ पुट देकर पकावे तत्पश्चात् उस हीरेमें नागवल्ली (पान) के स्वरसका लेप करे और ऊपरसे उसीके पत्तोंसे लपेटकर पृथिवीमें गाडदेवे और जबतक नरम न होजाय तबतक गाडा रहने देवे । इस प्रकारकी क्रिया करनेसे हीरा बहुत नरम होजाता है ॥ १३१॥१३२ ॥

वज्रद्रावविधिः ।

वज्रवल्ल्यन्तरस्थं च कृत्वा वज्रं निरुत्थितम् ।
अम्लभाण्डगतं स्वेद्यं सप्ताहाद्द्रवतां व्रजेत् ॥ १३३ ॥

वज्रवल्ली (हडसंघरी, या हडसंकरी) की लुगदीमें हीराको रखकर फूँक देवे जब निरुत्थ होजाय तब अम्लवर्गोक्त औषधियोंके रसको पात्रमें डालकर स्वेदनाख्य यन्त्रके द्वारा स्वेदन करे । सात दिन पर्यन्त इसी प्रकार करनेसे वह हीरा पारेके समान पतला होजाता है ॥ १३३ ॥

वज्रदोषशान्त्युपायः ।

सितामधुघृतैः साकं गोदुग्धं दिनसप्तकम् ।
विधिना सेवितं हन्ति वज्रदोषं चिरोत्थितम् ॥ १३४ ॥

सात दिन पर्यन्त विधिपूर्वक मिश्री, शहद, घृत और गौका दूध एकमें मिलाकर सेवन करे तो आठ योग अशुद्ध हीरेके सेवनसे उत्पन्न हुए बहुतकालके भी दोषोंको नाश करता है ॥ १३४ ॥

प्रवालोत्पत्तिः ।

बालार्ककिरणरक्ता सागरसुशिलोद्भवा जललता या ।
न त्यजति निजं रूपं निकषे घृष्टापि सा स्मृता जात्या ॥ १३५ ॥

मूँगाभी एक प्रकारका प्रसिद्ध रत्न है और वह समुद्रके जलमें स्थित उत्तम शिलाओंपर उत्पन्न होता है यह प्रातःकालके बालसूर्यके तुल्य लाल रंगवाली जललता है। जो मूँगा कसौटीमें घिसनेसेभी निज रूपको नहीं त्यागता है वह बहुत उत्तम मानागया है ॥ १३५ ॥

उत्तमप्रवाललक्षणम् ।

पक्वबिम्बफलच्छायं वृत्तायतमवक्रकम् ।
स्निग्धमव्रणकं स्थूलं प्रवालं सप्तधा शुभम् ॥ १३६ ॥

जो पकी हुई कंदूरीके तुल्य कान्तिसे युक्त, गोलाकार, कुछ लंबा, वक्रतारहित, चिकना, छिद्रादिरहित, और स्थूल हो ऐसा सात लक्षणोंवाला मूँगा उत्तम होता है ॥ १३६ ॥

त्याज्यप्रवाललक्षणम् ।

गौरं रङ्गं जलाक्रान्तं वक्रं सूक्ष्मं सकोटरम् ।
रूक्षं कृष्णं लघुश्वेतं प्रवालमशुभं त्यजेत् ॥ १३७ ॥

जो मूँगा रंगमें श्वेत और लाल तथा पानीसे वक्रतासहित, सूक्ष्म, छिद्रसहित, रूक्ष, काला, छोटा और सफेद रंगवाला हो वह उत्तम नहीं है अतः उसको त्याग करे ॥ १३७ ॥

प्रवालगुणाः ।

प्रवालं मधुरं साम्लं कफपित्तादिदोषनुत् ।
वीर्यं कान्तिकरं स्त्रीणां धृतेर्मङ्गलदायकम् ॥ १३८ ॥
क्षयपित्तास्रकासघ्नं दीपनं पाचनं लघु ।
विषभूतादिशमनं विद्रुमं नेत्ररोगहृत् ॥ १३९ ॥

मूँगा स्वादमें मधुर और खट्टा होताहै, कफ, पित्तादि दोषोंको नाश करताहै स्त्रियोंके देहमें वीर्य और कान्तिको उत्पन्न करताहै और धारण करनेसे मङ्गल-दायक होताहै, क्षयीरोग, रक्तपित्त, खाँसी इनको दूर करताहै, दीपन तथा पाचन है, हलका है, विष और भूतबाधाको शान्त करताहै, नेत्रोंके समस्त रोगोंको हरता है ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

विद्रुमस्य चतुर्विधत्ववर्णनम्।

विद्रुमं नाम यद्रत्नमामनन्ति मनीषिणः।
ब्रह्मादिजातिभेदेन तच्चतुर्विधमुच्यते ॥ १४० ॥

बुद्धिमान् मनुष्य जिस रत्नको विद्रुम नामसे व्यवहार करते हैं वह ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन जाति भेदसे चार प्रकारका होताहै ॥ १४० ॥

विप्रजातिविद्रुमलक्षणम्।

अरुणं शशरक्ताख्यं कोमलं स्निग्धमेव च।
प्रवालं विप्रजातिः स्यात्सुखवेध्यं मनोरमम् ॥ १४१

जो लाल रंगवाला हो, कोमल तथा स्निग्ध हो, सुखपूर्वक वेध करने योग्य और मनोहर हो उस शशरक्तनामके मूँगाको ब्राह्मणजातिवाला कहते हैं ॥१४१॥

क्षत्रियजातिविद्रुमलक्षणम्।

जवाबन्धूकसिन्दूरदाडिमीकुसुमप्रभम्।
कठिनं दुर्वेध्यमस्निग्धं क्षत्रजातिं विदुर्बुधाः ॥ १४२ ॥

जो गुडहर, दुपहरिया, सिन्दूर (वृक्षविशेष) और अनारके फूलके समान कान्तिसे युक्त हो, कोमलतासे रहित हो कठिनतासे बेध करनेयोग्य हो और चिकना न हो उसे क्षत्रियजातिका मूँगा कहते हैं ॥ १४२ ॥

वैश्यजातिविद्रुमलक्षणम्।

पलाशकुसुमाभासं तथा पाटलसन्निभम्
वैश्यजातिर्भवेत्स्निग्धं वर्णाढ्यं मन्दकान्तिमत् ॥ १४३ ॥

जिसकी कान्ति टेसूके समान अथवा गुलाब पुष्पके तुल्य हो चिकना हो रंगसे युक्त हो और मन्द कान्तिवाला हो उसे वैश्यजातिका मूँगा कहते हैं ॥ १४३ ॥

शूद्रजातिवज्रलक्षणम्।

रक्तोत्पलदलाकारं कठिनं न चिरद्युति।
विद्रमं शूद्रजातिः स्याद्वायुवेध्यं तथैव च ॥ १४४ ॥

जो रंगमें रक्त कमलदलके समान हो, कठिन हो तथा बहुतकाल तक जिसकी कान्ति बराबर स्थित रहे और वायुवेध्य हो, उसे वैश्यजातिका मूँगा कहते हैं ॥ १४४ ॥

विद्रुमशुभगुणाः ।

रक्तता स्निग्धता दार्ढ्यं चिरद्युतिः सुवर्णता ।
प्रवालानां गुणाः प्रोक्ता धनधान्यकराः पराः ॥ १४५ ॥

रक्तवर्णता, चिकनाहट, दृढता, स्थिरकान्तित्व, वर्णसौन्दर्यता आदि धन और धान्यके देनेवाले मूँगोंके उत्तम गुण कहे गये हैं ॥ १४५ ॥

उत्पत्तिस्थानभेदेन विद्रुमस्य विशेषगुणवर्णनम् ।

हिमाद्रौ यत्तु संजातं तद्रक्तमतिनिष्ठुरम् ।
तत्र लिप्तो भवेन्निम्बकल्कोऽतिमधुरः स्थितः ॥
तस्य धारणमात्रेण विषवेगः प्रशाम्यति ॥ १४६ ॥

जो मूँगा हिमालय पर्वतमें उत्पन्न होता है वह लाल रंगवाला और कठिन होता है और उसमें लेप कियाहुआ नींब वृक्षका कल्क अति मधुर रससे युक्त होजाता है इस मूँगाके धारण करने मात्रसे विषका वेग शान्त होजाता है॥१४६॥

प्रवालदूषणादिवर्णनम् ।

विवर्णता तु खरता प्रवाले दूषणद्वयम् ।
रेखाकाकपदौ बिन्दुर्यथा वज्रेषु दोषकृत् ॥ १४७ ॥
तथा प्रवाले सर्वत्र वर्जनीयं विचक्षणैः ।
रेखा हन्याद्यशो लक्ष्मीमावर्तः कुलनाशनः ॥ १४८ ॥
पट्टलो रोगकृत् ख्यातो बिन्दुर्धनविनाशकृत् ।
त्रासः संजनयेत्त्रासं नीलिका मृत्युकारिणी ॥
मलं शुद्धप्रवालस्य रूप्यद्विगुणमुच्यते ॥ १४९ ॥

मूँगामें दो दूषण होते हैं विवर्णता और खरता, रेखा, काकपद और बिन्दु यह सब जिस प्रकार हीरामें दोष करनेवाले माने गये हैं उसी प्रकार मूँगोंमें भी दोष करते हैं इस कारण बुद्धिमान् वैद्योंको चाहिये कि वह दोषयुक्त मूँगोंका त्याग करें । मूँगामें रेखा ४ दोष हो तो वह यश और लक्ष्मीको नाश करे, आवर्त दोष हो तो कुलका नाश हो, पट्टल नामक दोष रोगोंको उत्पन्न करता है, बिन्दु दोष धनका विनाश करे, त्रास दोष भयको उत्पन्न करे, नीलिका संज्ञक दोष मृत्यु करनेवाला है, शुद्ध मूँगाका मूल्य दो रुपया है॥१४७-१४९॥

विद्रुममारणविधिः ।

मौक्तिकस्य विधिः प्रोक्तः प्रवालेऽपि तथा विधिः ॥ १५० ॥

मोतीके मारणका जो प्रकार है वही प्रकार मूँगाके मारणका भी समझना चाहिये ॥ १५० ॥

मौक्तिकोत्पत्तिस्थानानि ।

शुक्तिः शंखो गजः क्रोडः फणी मत्स्यश्च दर्दुरः ।
वेणुश्चाष्टौ समाख्याताः सुज्ञैर्मौक्तिकयोनयः ॥ १५१ ॥

बुद्धिमानोंने, सीपी, शङ्ख, हाथी, शूकर, सर्प, मछली, मेंढक और बाँस यह आठ मोती उत्पन्न होनेके स्थान कहे हैं ॥१५१ ॥

गजमौतिकलक्षणम् ।

यद्दन्तावलकुम्भसम्भवमदः पीतारुणं मन्दरुक् ।
धात्रीदक्षतयात्र रत्नमधमं काम्बोजकुम्भोद्भवम् ॥ १५२ ॥

जो गजमुक्ता दँतारा हाथीके गण्डस्थलसे उत्पन्न होता है वह कुछ पीला तथा लाल रंगवाला और मन्दकान्तिसे युक्त होता है, परन्तु काम्बोज देशमें उत्पन्न हुए हाथीका जो मुक्ता होता है वह श्रेष्ठ नहीं है ॥ १५२ ॥

चतुर्विधगजमौक्तिकोत्पत्तिः तल्लक्षणञ्च ।

उक्ता गजपरीक्षायां गजजातिश्चतुर्विधा ।
मौक्तिकं तेषु जातं हि चतुर्विधमुदीर्यते ॥ १५३ ॥
ब्राह्मणं पीतशुक्लं तु क्षत्रियं पीतरक्तकम् ।
पीतश्यामं तु वैश्यं स्याच्छूद्रं स्यात्पीतनीलकम् ॥ १५४ ॥

जहां हाथियोंकी परीक्षाका वर्णन है वहां उनकी चार प्रकारकी जातियोंका कथन किया है । उन चार प्रकारके हाथियोंमें चार ही प्रकारके गजमुक्ता भी उत्पन्न होते हैं । जो कुछ पीला और सफेद रंगसे युक्त हो उसे ब्राह्मणजातिका गजमुक्ता जानना चाहिये । जिसका रंग कुछ पीला और लाल हो उसे क्षत्रियजातिका जानना, यदि कुछ पीला और श्याम रंगवाला हो तो उसे वैश्यजातिका जानना, और जो गजमुक्ता कुछ पीले तथा नीले रंगसे युक्त हो उसे शूद्रजातिका जानना चाहिये ॥ १५३ ॥ १५४ ॥

वाराहमौक्तिकोत्पत्तिस्तल्लक्षणञ्च ।

एकाकी सुसुखेन निस्पृहतया यः काननं गाहते
तस्यानादिवराहवंशजनुषः कोलस्य मूर्ध्नि स्थितम् ।

कंकोलाकृतिमिन्दुवत्सुधवलं दैवादवाप्नोति यः
सोऽमर्त्यैः समुपास्यते सनिधिभिर्मर्त्यो धनाधीशवत् ॥ १५५ ॥

श्री अनादिवराह भगवान्के वंशमें जो शूकर उत्पन्न हुआ वह निस्पृहतायुक्त सुखपूर्वक वनमें अकेला ही घूमता।फिरता है उसके मस्तकमें कंकोलके तुल्य आकृतिवाला और चन्द्रमाके समान श्वेतमुक्ता होता है । दैवेच्छासे जिस मनुष्यके यह वराहमुक्ता प्राप्त होताहै वह मनुष्य शङ्ख आदि निधियोंसे युक्त देवताओंसे कुबेरके समान उपासित होताहै ॥ १५५ ॥

जातिभेदेन वराहस्य मुक्तायाश्च चतुर्विधत्ववर्णनम् ।

ब्रह्मादिजातिभेदेन वराहोऽपि चतुर्विधः ।
तेषु जाता भवेन्मुक्ता समासेन चतुर्विधा ॥ १५६ ॥
ब्राह्मणः शुक्लवर्णस्तु शूद्रमन्तेऽस्य लक्षते ।
क्षत्रियः शुक्लरक्तस्तु स्पर्शे कर्कश एव च ॥ १५७ ॥
वैश्यः स्याच्छुक्लपीतस्तु कोमलः कोलसन्निभः ।
शूद्रः स्याच्छुक्लनीलस्तु कर्कशः श्याम एव च ॥ १५८ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार जातियोंके भेदसे वराह भी चार प्रकारके होते हैं । इनमें उत्पन्न हुई मुक्ता भी सामान्यतासे चार प्रकारकी होती है । ब्राह्मणजातिका मोती श्वेत होताहै, और इसके अन्तमें शूद्र लक्षित होताहै । क्षत्रिय जातिका मोती कुछ सफेद और लाल होताहै । वैश्यजातिका मोती कुछ सफेद तथा पीला होताहै, यह कोमल और बदरी फलके समान होताहै। शूद्रजातिका मुक्ता कर्कश है रंगमें कुछ सफेद, नीला और श्याम होताहै॥१५६-१५८॥

वेणुमौक्तिकलक्षणम् ।

मुक्ताः सन्ति कुलाचलेषु करकाकान्त्युद्भवावंशजाः ।
कर्कन्धूफलबन्धवो निदधते कण्ठेषु शुद्धाङ्गनाः ॥

कुलाचलनामक पर्वतमें जो मोती बाँससे उत्पन्न होता है वह बर्फके समान सफेद और बेरके तुल्य बडा होताहै, उसको शुद्ध स्त्रियाँ कण्ठमें धारण करती हैं ॥

मत्स्यजमौक्तिकलक्षणम् ।

प्रोष्ठीगर्भगतस्तु मौक्तिकमणिर्नागासमः पाटली ।
पुष्पाभः स न लभ्यते भुवि जनैरस्मिन्कलौ पापिभिः ॥ १५९ ॥

मछलीके उदरमें जो मोती उत्पन्न है वह गजमुक्ताके तुल्य होताहै, रंग उसका पाढर फूलके समान जानना चाहिये। यह मत्स्यज मुक्ता इस कलियुगमें पापी मनुष्योंको नहीं मिलता ॥ १५९ ॥

दर्दुरमुक्तालक्षणम् ।

मेकादिष्वपि जायन्ते मणयो ये क्वचित्क्वचित् ।
भौजङ्गममणेस्तुल्यास्ते विज्ञेया बुधोत्तमैः ॥ १६० ॥

मेंडक आदिकोंमें भी जो कहीं २ मोती उत्पन्न होते हैं, वे सब सर्पज मुक्ताके समान जानना चाहिये ॥ १६० ॥

शङ्खमुक्तालक्षणम् ।

शंखस्याच्युतहारिणो जलनिधौ ये वंशजाः कम्बुका-
स्तेष्वान्तः किल मौक्तिकं भवति वैतच्छुक्रतारानिभम् ।
कापोताण्डसमं सुवृत्तमसकृच्छ्रीकं सुरूपं लघु
स्निग्धस्पर्शयुतं तथा च न पुनर्मर्त्यैस्तदासाद्यते ॥ १६१ ॥

विष्णुके पाञ्चजन्य नामक शङ्खके वंशमें उत्पन्न हुए अनेक शङ्ख समुद्रमें होते हैं उनके बीचमें जो मोती होता है वह शुक्रताराके समान कान्तिसे युक्त, कबूतरके अंडेके तुल्य गोल, लक्ष्मीयुक्त, सुन्दररूपवाला हलका और स्पर्शमें चिकना होता है यह मनुष्योंको नहीं प्राप्त होता ॥ १६१ ॥

सर्पजमौक्तिकलक्षणम् ।

शेषस्यान्वयिनां फणासु फणिनां यन्मौक्तिकं जायते
वृत्तं निर्मलमुज्ज्वलं शशिरुचि श्यामच्छवि श्रीकरम् ।
कंकोलाकृति कोपि कोटिसुकृतैः प्राप्नोति चेन्मानवः
स स्याद्वाजिगजाधिको नृपसमो जातोऽपि नीचे कुले॥१६२॥
आस्ते सद्मनि चेत्स पन्नगमणिस्ते यातुधानामराः
हर्तुं रन्ध्रमवेक्ष्य यान्ति च ततः कुर्यान्महाशान्तिकम् ॥ १६३ ॥

शेष नागके वंशमें उत्पन्न हुए सर्पोंके फणोंमें जो मोती उत्पन्न होता है वह गोल, निर्मल, चमकदार, चन्द्रमाके तुल्य कान्तिवाला, श्याम दीप्तिसे युक्त, लक्ष्मीका करनेवाला और कंकोलके समान आकृतिसे युक्त होता है स्वकृत कोटिपुण्योंके कारण जिस मनुष्यको इसकी प्राप्ति होती है वह यदि नीचकुलमें

भी उत्पन्न हुआ हो तोभी घोडे और हाथी आदिसे युक्त हो राजाके समान होताहै । यदि गृहमें यह सर्पज मोती विद्यमान हो तो अवसर पायकर देवता और राक्षस उसके हरलेजानेके लिये वहाँ आते हैं, इस कारण महाशान्तिक कर्म करे ॥ १६२ ॥ १६३ ॥

शुक्तिजमुक्तालक्षणम् ।

षट्स्वेतेष्वपि रुक्मिणीव जगात ख्यातिं गता रुक्मिणी
नाम्ना शुक्तिमतीव चोत्तमगुणा सिन्धौ समुज्जृम्भते ।
तस्या गर्भभवं तु कुंकुमनिभं जातीफलाकारकं
स्थूलं स्निग्धमतीव निर्मलतर भूमौ प्रकाशं सदा ॥ १६४ ॥

समुद्रमें जो अत्युत्तम गुणोंसे युक्त शुक्ति रुक्मिणी नामक जीवविशेष उत्पन्न होताहै वह संसारमें रुक्मिणीके समान प्रसिद्ध है, उसके उदरमें कुंकुमके तुल्य कान्तिसे युक्त, जायफलके आकारके समान, स्थूल, चिकना और अत्यन्त निर्मल मोती निकलताहै, यह संसारमें प्रसिद्ध है ॥ १६४ ॥

मेघप्रभवमुक्ता ।

यन्मेघोदरसंभवं तदवनिमप्राप्तमेवामरै-
र्व्योमस्थैरपनीयते विनिपतद्वर्षासु मुक्ताफलम् ।
तिग्मांशोरपि दुर्निरीक्ष्यमकृशं सौदामिनीसन्निभं
देवानामपि दुर्लभं न मनुजस्यैतस्य प्राप्तिः पुनः ॥ १६५ ॥

जो मोती मेघोंके उदरसे उत्पन्न होता है वह जब वर्षा ऋतुमें पृथिवीमें गिरने लगता है उस समय पृथिवीमें पहुँचनेसे पहले बीचमें ही आकाशस्थित देवता उसे हरलेते हैं । यह इतना तेजवाला है कि देखनेमें सूर्यसे भी अधिक दुर्निरीक्ष्य होता है, स्थूल है, बिजलीके तुल्य कान्तिसे युक्त है, देवताओंको भी दुर्लभ है और मनुष्योंको तो प्राप्त ही नहीं हो सकता ॥ १६५ ॥

अन्यच्च ।

धाराधरेषु जायेत मौक्तिकं जलबिन्दुभिः ।
दुर्लभं तन्मनुष्याणां देवैस्तद्ध्रियतेऽम्बरात् ॥ १६६ ॥
कुक्कुटाण्डसमं वृत्तं मौक्तिकं निबिडं गुरु ।
घनजं भानुसङ्काशं देवयोग्यममानुषम् १६७ ॥

जो मोती मेघोंमें जलके बिन्दुओंसे बनताहै वह जब गिरने लगताहै उस समय बीचमेंही देवतालोग हरलेते हैं इस कारण मनुष्योंके लिये यह दुर्लभ है । यह मेघोंसे उत्पन्न मोती मुर्गेके अण्डेके समान गोल, घन और भारी होताहै, सूर्यके समान तेजसे युक्त देवताओंके योग्य और मनुष्योंको अलभ्य होताहै१६६॥१६७॥

पारसीकादिदेशोद्भवमुक्तालक्षणम् ।

श्वेतं स्निग्धमतीव बन्धुरतरं स्यात्पारसीकोद्भवं
रूक्षं काञ्चनवर्णसङ्करयुतं स्याद्बार्बरं मौक्तिकम् ।
शोणं रूमजसम्भवं विदुरिति स्निग्धं तथा दोषजं
चातुर्वर्ण्ययुतं सुलक्षणमतिश्लक्ष्णं कविश्रीकरम् ॥ १६८ ॥

फारिस (ईरान) देशमें उत्पन्न हुआ मोती सफेद, चिकना और अत्यन्त रमणीय होताहै । अरब देशमें उत्पन्न हुआ मोती रूक्ष, और सुवर्ण प्रधान मिश्रित वर्णोंसे युक्त होताहै । रूमदेशमें उत्पन्न हुआ रक्त कमलके समान रंगसे युक्त, चिकना, दोष रहित, चार वर्णोंसे युक्त, श्रेष्ठ लक्षणोंवाला, छोटा, और विधिपूर्वक सेवन करनेसे शुक्रके समान कान्ति करनेवाला होताहै ॥ १६८ ॥

दोषदमौक्तिकलक्षणम् ।

यद्विच्छायं मौक्तिकं व्यङ्गकायं शुक्तिस्पर्शं रक्ततां चापि धत्ते
मत्स्याक्षङ्कं रूक्षमुत्तानतत्रं नैतद्धार्यं धीमता दोषदायि ॥ १६९ ॥

जो मोती कान्तिरहित, विकृत आकारसे युक्त, शुक्तिलग्न, लाल रंगवाला, मछलीके नेत्रके समान चमकदार, रूक्ष, और ऊँचा नीचा हो वह दोषोंका करनेवाला है इस कारण बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि उसका धारण न करे ॥ १६९ ॥

श्रेष्ठमुक्तालक्षणम् ।

नक्षत्राभं वृत्तमत्यन्तमुक्तं स्निग्धं स्थूलं निर्व्रणं निर्मलं च ।
न्यस्तं धत्ते गौरवं यत्तुलायां निर्मौल्यं तन्मौक्तिकं सिद्धिदायि ॥१७०॥

जिसकी कान्ति नक्षत्रोंके समान हो तथा गोल, अत्यन्त चिकना, स्थूल, व्रणरहित, निर्मल और तोलमें अधिक परिमाणवाला हो वह बहुमूल्य मोती कार्यकी सिद्धि करनेवाला होताहै ॥ १७० ॥

मुक्तापरीक्षा।

लवणक्षारक्षोदिनि पात्रे गोमूत्रपूरिते क्षिप्तम्।
मर्दितमपि शालितुषैर्यदविकृतं मौक्तिकं जात्यम् ॥ १७१ ॥

गौके मूत्रमें नमक या खार मिलाकर किसी मिट्टीके पात्रमें भरकर चूल्हेपर चढाय देवे और स्वेदनयन्त्रके द्वारा मोतीका स्वेदन करे और फिर उस पात्रसे मोतीको निकालकर धानकी तुषाओंके साथ दोनों हाथोंसे मर्दन करे यदि उस मोतीमें किसी प्रकारका विकार न उत्पन्न हो प्रत्युत और भी स्वच्छ होजावे तो समझना कि यह अच्छी जातिका मोती है ॥ १७१ ॥

कृत्रिमाकृत्रिममुक्तापरीक्षा।

यत्र कृत्रिमसन्देहः क्वचिद्भवति मौक्तिके।
उष्णे सलवणे स्नेहे निशान्तद्वासयेज्जले ॥ १७२ ॥
व्रीहिभिर्मर्दनीयं वा शुष्कवस्त्रोपवेष्टितम्।
यत्तु नायाति वैवर्ण्यं विज्ञेयं तदकृत्रिमम् ॥ १७३ ॥

यदि किसी मोतीमें बनावटीपनका सन्देह हो तो परीक्षकको चाहिये कि, वह नमक और स्नेहयुक्त गरम जलमें रात्रिभर उस मोतीको डुबाय रक्खे और पश्चात् उस जलसे मोतीको निकाल हाथमे रख धानकी तुषाओंके साथ मर्दन करे अथवा सूखे कपडेमें लपेट मर्दन करे यदि इस प्रकार करनेसे वह मोती विरुद्ध वर्णवाला न हो वा अन्य किसी प्रकारका विकार न हो तो उसे (अकृत्रिम) सहज मुक्ता जानना चाहिये ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

मणिमुक्तप्रवालानां शोधनविधिः।

स्वेदयेद्दोलिकायन्त्रे जयन्त्याः स्वरसेन च।
मणिमुक्ताप्रवालानां यामैकं शोधनं भवेत् ॥ १७४ ॥

मणि, मोती, मूँगा इनमें जिसको शुद्ध करना हो उसको जयन्ती (जैत) के स्वरसमें दोलायंत्रके द्वारा एक प्रहर पर्यन्त स्वेदन करे तो शुद्ध होजाता है॥१७४॥

द्वितीयः प्रकारः।

मौक्तिकं शोधयेदम्लैः काञ्जिकैर्निम्बुकद्रवैः।
गोमूत्रे शोधयेत्पश्चाच्छोधयेत्पयसा तथा ॥ १७५ ॥

अम्लद्रव्य, काजी, नीम्बूका रस इनमें स्वेदनयन्त्रके द्वारा मोतीका स्वेदन करे और पीछे गौके मूत्रमें शोधन करके दूधमें भी शुद्ध करे तो वह मोती अच्छे प्रकार शुद्ध होजाता है ॥ १७५ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

कुमारीतण्डुलीयेन स्तन्येन च विपाचयेत् ।
प्रत्येकं सप्तवारं च तप्ततप्तानि कृत्स्नशः ॥ १७६ ॥

मोतीको अग्निमें तपा तपाकर घीकुवार और चौलाईके रस तथा स्त्रीके दूधमें पृथक् २ सात सात बार बुझावे तो शुद्ध होजाता है ॥ १७६ ॥

मुक्ताप्रवालमारणविधिः ।

उक्तमाक्षिकवन्मुक्ताप्रवालानि च मारयेत् ॥ १७७ ॥

पहले सोनामाखीके मारणकी जो विधि वर्णन की गई है उसी विधिसे मोती और मूँगोंकाभी मारण करे ॥ १७७ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

गन्धपारदयोरैक्यान्मौक्तिकानि विमर्दयेत् ।
भावयेद्दुग्धयोगेन शरावसंपुटे क्षिपेत् ॥ १७८ ॥
वस्त्रमृत्तिकयोर्लेपाज्ज्वालयेद्धस्तिजे पुटे ।
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य चूर्णं भाण्डे निधापयेत् ॥ १७९ ॥

गंधक और पारेकी कज्जली बनाकर शुद्ध मोतियोंको उसीमें डालकर घोटे तदनन्तर दूधकी भावना देकर शरावसंपुटमें रख कपरमिट्टी करके गजपुटमें पकावे जब स्वांगशीतल होजावे तब शरावसंपुटसे उस भस्मको अलग निकाल काचकी शीशीमें भरकर रखदेवे ॥ १७८ ॥ १७९ ॥

मुक्ताभस्मगुणाः ।

मौक्तिकं समधुरं सुशीतल दृष्टिरोगशमनं विषापहम् ।
राजयक्ष्मपरिकोपनाशनं क्षीणवीर्यबलपुष्टिवर्द्धनम् ॥ १८० ॥

विधिपूर्वक बनाई हुई मोतीकी भस्म मधुर और शीतल है, नेत्रोंके सम्पूर्ण रोग, विषरोग और क्षयीरोगको नाश करती है,' जिनका वीर्य और बल क्षीण होगया है उनको पुष्टि देनेवाली है ॥ १८० ॥

अन्यच्च ।

कफपित्तक्षयध्वंसि कासश्वासाग्निमान्द्यजित् ।
पुष्टिदं वृष्यमायुष्यं दाहघ्नं मौक्तिकं मतम् ॥ १८१ ॥

मोतीकी भस्म,--कफरोग, पित्तरोग, क्षयी, खाँसी, श्वास, अग्निमान्द्य इनको नाश करती है, पुष्टिदायक तथा वृष्य है, आयुको बढानेवाली और दाहको नाश करनेवाली है ॥ १८१ ॥

मुक्ताद्रावणविधिः।

मुक्ताफलानि सप्ताहं वेतसाम्लेन भावयेत्।
जम्बीरोदरमध्ये तु धान्यराशौ निधापयेत् ॥ १८२ ॥
पुटपाकेन तच्चूर्णं द्रवते सलिलं यथा।
कुरुते योगराजोऽयं रत्नानां द्रावणं शुभम् ॥ १८३ ॥

मोतीको अम्लबेतके रसकी सात दिन तक भावना देवे और पश्चात् उसे जंबीरी नीम्बूके भीतर रखकर अन्नकी राशिमें गाडदेवे, कुछ दिनके पीछे उसे निकालकर पुटपाक विधिसे पकावे तो वह मुक्ताचूर्ण पानीके समान पतला हो जाता है। द्रावण कारक योगोंमें यह मुख्य योग रत्नोंकी उत्तम द्रुति करने-वाला है ॥ १८२ ॥ १८३ ॥

शुभमरकतलक्षणम्।

स्वच्छश्च गुरु सच्छायं स्निग्धं गात्रश्च मार्दवसमेतम्।
अव्यङ्गं बहुरङ्गं शृंगारी मरकतं शुभं बिभृयात् ॥ १८४ ॥

जो मरकत (पन्ना) स्वच्छ सुन्दर कान्तिसे युक्त, चिकना, कोमलगात्र, अविकृत आकार, अनेक रंगोंसे युक्त और शृङ्गारसहित हो वह श्रेष्ठ होता है अतः उसका धारण करे ॥ १८४ ॥

अशुभमरकतलक्षणम्।

शर्करिलकलिलरूक्षं मलिनं लघुहीनकान्तिकल्माषम्।
त्रासयुतं विकृताङ्गं मरकतममरोपि नोपभुञ्जीत ॥ १८५ ॥

जो पन्ना खरदरा, मलिन, हलका, कान्तिसे रहित, विचित्रवर्ण युक्त, त्रासयुक्त और विकृत अङ्गवाला हो उसका उपभोग देवताभी न करे ॥ १८५ ॥

अन्यच्च।

कपिलं कर्कशं नीलं पाण्डु कृष्णं च लाघवम्।
चिपिटं विकृतं कृष्णं रूक्षं तार्क्ष्यं न शस्यत ॥ १८६ ॥

जो पन्ना पिङ्गल वर्णयुक्त, कठोर, नीला, पीला, काला, हलका, चिपिटा, विकारसहित और रूक्ष हो वह श्रेष्ठ नहीं होता है ॥ १८६ ॥

कृत्रिमाकृत्रिमत्वपरीक्षा ।

कृत्रिमत्वं सहजत्वं दृश्यते सूरिभिः क्वचित् ।
घर्षयेत्प्रस्तरे वङ्गकाचस्तस्माद्विपद्यते ॥ १८७ ॥
लेखयेल्लौहभृङ्गेण चूर्णेनाथ विलेपयेत् ।
सहजः कान्तिमाप्नोति कृत्रिमो मलिनायते ॥ १८८ ॥

पन्नाके कृत्रिमत्व और सहजत्वकी परीक्षा भी परीक्षक लोग वक्ष्यमाण रीतिसे करते हैं पन्नाको पत्थर, राँग और काचमें घिसे, अथवा लोहभृङ्गसे उसमें रेखा करे वा लोहेके बारीक चूर्णका उसके ऊपर लेप करे, यदि ऐसा करनेसे उस पन्नामें किसी प्रकारका विकार न हो प्रत्युत स्वच्छ कान्तियुक्त होजावे तो उसे सहज अर्थात् अकृत्रिम जानना और यदि वह मालिन होजावे या अन्य किसी प्रकारके विकारसे युक्त होजावे तो उसे कृत्रिम समझना चाहिये ॥१८७॥१८८॥

शोधनविधिः ।

शोधनं मारणं रत्नप्रकरणे कथितं मया ॥ १८९ ॥

पन्नाके शोधन तथा मारणका विधान पूर्व रत्नप्रकरणमें "तार्क्ष्यं गोदुग्धतः शुचि" अर्थात् पन्ना गौके दूधसे शुद्ध होता है इत्यादि वर्णन करचुके हैं॥१८९॥

मरकतगुणाः ।

मरकतं हि विषघ्नं शीतलं मधुरं सरम् ।
अम्लपित्तहरं रुच्यं पुष्टिदं भूतनाशनम् ॥ १९० ॥

पन्ना विषनाशक, शीतल, मधुर, दस्तावर, अम्लपित्तको हरनेवाला, रुचिकारक, पुष्टि देनेवाला, और भूतनाशक है ॥ १९० ॥

अन्यच्च ।

ज्वरच्छर्दिविषश्वासं सन्तापाग्नेश्च मान्द्यनुत् ।
दुर्नामपाण्डुशोफघ्नं तार्क्ष्यमोजोविवर्द्धनम् ॥ १९१ ॥

तार्क्ष्य (पन्ना) ज्वर, वमन, विष, श्वास, सन्ताप, अग्निमान्द्य, बवासीर, पाण्डुरोग और शोफको नाश करता तथा धातुओंके तेजको बढाताहै ॥ १९१ ॥

घृष्टं यदात्मना स्वच्छं स्वच्छायां निकषाश्मनि ।
स्फुटं प्रदर्शयेदेतद्वैदूर्यं जात्यमुच्यते ॥ १९२ ॥

जो वैदूर्य माणि कसौटीपर घिसनेसे अपनी कान्तिका त्याग न करे प्रत्युत स्वच्छ कान्तिसे युक्त होकर अपने रूपको स्पष्ट दिखलावे उसे उत्तम जातिकी कहना चाहिये ॥ १९२ ॥

कान्तिभेदेन तत्रिविधत्ववर्णनम् ।

एकं वेणुपलाशपेशलरुचा मायूरकण्ठत्विषा
मार्जारेक्षणपिङ्गला च विदुषा ज्ञेयं त्रिधा छायया ॥ १९३ ॥

एकजातिका वैदूर्यमाणि वंशपत्रके तुल्य उत्तम कान्तिसे युक्त होता है, दूसरी जातिका मयूर पक्षीके कण्ठके समान कान्तिवाला और तीसरी जातिके मार्जार (बिलाव) की आँखोंके समान पिङ्गल कान्तिसे युक्त होता है । इस प्रकार तीन प्रकारकी कान्तिसे युक्त यह वैदूर्यमाणि जानना चाहिये ॥ १९३ ॥

शुभवैदूर्यलक्षणम् ।

यद्गात्रे गुरुतां दधाति नितरां स्निग्धं तु दोषोज्झितं
वैदूर्यं विमलं वदन्ति सुधियः स्वच्छं च तच्छोभनम्॥ १९४ ॥

इनमेंसे जिसके धारण करनेसे अङ्गमें गुरुता जानपडे तथा अति चिकना दोषरहित निर्मल और स्वच्छ होवे उसे परीक्षा करनेमें चतुर मनुष्य उत्तम कहते हैं ॥ (इसका रंग कुछ काला और पीला होता है) ॥ १९४ ॥

त्याज्यवैदूर्यवर्णनम् ।

विच्छायं मृच्छिलागर्भं लघुरूक्षं च सक्षतम् ।
सत्रासं परुषं कृष्णं वैदूर्यं दूरतस्त्यजेत् ॥ १९५ ॥

जो वैदूर्य माणि कान्तिसे रहित और मिट्टी तथा पत्थरोंसे युक्त हो, हलका हो, रूक्ष हो, व्रणयुक्त हो, भिन्न होनेपर भ्रान्तिकारक हो, खर्दरा और काले रंगसे युक्त हो तो उसे दूरसेही त्याग करे ॥ १९५ ॥

वैदूर्यगुणाः ।

वैदूर्यमुष्णमम्लं च कफमारुतनाशनम् ।
गुल्मादिदोषशमनं भूषितं च शुभावहम् ॥ १९६ ॥

वैदूर्य माणि गरम और खट्टा है, कफ और वायुका नाशक है, गुल्मादि दोषोंको शान्त करता है, धारण करनेसे शुभ फल करनेवाला है ॥ (इसके वैदूर्यके शोधनकी विधि " वैदूर्यं त्रिफलाजलैः " अर्थात् वैदूर्यको त्रिफलाके काढेसे शुद्ध करे, इत्यादि कहचुके हैं और वहीं पर मारणकीभी विधि वर्णन की गई है) ॥ १९६ ॥

अशुभगोमेदलक्षणम् ।

कुरङ्गश्वेतकृष्णाङ्गं रेखात्रासान्वितं लघु ।
विच्छायं शर्करारङ्गे गोमेदं विबुधस्त्यजेत् ॥ १९७ ॥

जो गोमेदमणि हरिणके रंगके समान सफेद, काली हो, रेखासहित, त्रासयुक्त, हलकी, कान्तिहीन और शर्करायुक्त हो उसे त्याग करे (गोमेदमणिका रंग पीला होता है) ॥ १९७ ॥

शुभगोमेदलक्षणम् ।

पीतच्छागसमच्छायं स्निग्धं स्वच्छसमं गुरु ।
निर्दलं मसृणं दीप्तं गोमेदं शुभमष्टधा ॥ १९८ ॥

जो गोमेद मणि पीले रंगवाली बकरीकी कान्तिके समान कान्तिसे युक्त हो, चिकनी, स्वच्छ, सम, भारी, दलरहित, मसीन और उज्ज्वल इन आठ लक्षणोंसे युक्त हो वह शुभ होती है ॥ १९८ ॥

अन्यच्च ।

गोमूत्राभं यद्गुरुस्निग्धशुक्लं शुद्धच्छायं गौरवं यच्च धत्ते ।
हेम्ना रक्तं श्रीमतां योग्यमेतद्गोमेदाख्यं रत्नमाख्यान्ति सन्तः ॥ १९९ ॥

जो गौके मूत्रके समान कान्तिसे युक्त, भारी चिकनी कुछ सफेद, शुद्ध कान्ति सहित गौरवता युक्त, और सोनेके तुल्य रक्त हो उस गोमेदमणिको सज्जन मनुष्य श्रीमानोंके योग्य कहते हैं ॥ १९९ ॥

गोमेदगुणाः ।

गोमेदकोम्लश्चोष्णश्च वातकोपविकारनुत् ।
दीपनः पाचनश्चैव धृतोयं पापनाशनः ॥ २०० ॥

गोमेदमणि खट्टी और गरम होती है, वातके कोपसे उत्पन्न विकारोंको नाश करती है, दीपन है, पाचन है, धारण करनेसे पापोंको दूर करती है (गोमेदके शुद्ध करनेके लिये भी पूर्व ही लिखचुके हैं कि " गोमेदं रोचनाद्भिश्च " अर्थात् गोमेदको गोरोचनके जलसे शुद्ध करना चाहिये । इत्यादि मारणविधिभी वहींपर वर्णन करचुके है) ॥ २०० ॥

माणिक्यस्य चतुर्विधजातिवर्णनम् ।

तद्रक्तं यदि पद्मरागमथतत्पीतातिरक्तं द्विधा
जानीयात्कुरुबिन्दकं यदरुणं स्यादेष सौगन्धिकम् ।

तन्नीलं यदि नीलगन्धकमिति ज्ञेयं चतुर्धा बुधै-
र्माणिक्यं कर्षघर्षणेप्यविकृतं रागेण जात्यं जगुः ॥ २०१ ॥

माणिक्यका रंग लाल हो तो उसे पद्मराग नामक एक भेद कहना चाहिये। और यदि पीलापन लिये बहुत लाल हो तो उसे कुरुबिन्द नामक दूसरा भेद जानना चाहिये। जो अरुण अर्थात् कुछ कालापन लिये लाल हो उसे सौगान्धिक नामक तीसरा भेद जाने। और जो नीले रंगका माणिक्य हो उसे नीलगन्ध नामक चौथा भेद जाने। पूर्वोक्त चारोंमेंसे जो कसौटीपर घिसनेसे भी किसी प्रकारके विकारसे युक्त न हो किन्तु निज उज्ज्वलकान्तिसे युक्त बना रहे उसे उत्तम जातिका माणिक्य जानना चाहिये ॥ २०१ ॥

शुभमाणिक्यलक्षणम् ।

स्निग्धं गुरुगात्रयुतं दीप्तं स्वच्छं सुरङ्गकं रक्तम् ।
इति जात्यं माणिक्यं कल्याणं धारणात्कुरुते ॥ २०२ ॥

जो माणिक्य चिकना, भारी, दीप्त, स्वच्छ और सुन्दर रंगसे युक्त लाल होवे उसे उत्तम जातिका माणिक्य जानना यह धारण करनेसे कल्याण करताहै॥२०२॥

अशुभमाणिक्यलक्षणम् ।

विच्छायमभ्रपिहितमतिकर्कशशर्करं विधूमं च ।
विरूपं रागविमलं लघुमाणिक्यं न धारयेद्धीमान् ॥ २०३ ॥

जो माणिक्य कान्तिरहित मेघके समान दोषयुक्त, अतिकर्कश, शर्करायुक्त, विधूम, विरूप, रंगका मलिन और हलका हो उसे बुद्धिमान् मनुष्य न धारण करे ॥ २०३ ॥

माणिक्यगुणाः ।

माणिक्यं मधुरं स्निग्धं वातपित्तविनाशनम् ।
रत्नप्रयोगे प्रज्ञातं रसायनकरं परम् ॥ २०४ ॥

जो माणिक्य मधुर, चिकना तथा वात और पित्तका नाश करनेवाला हो वह रत्नप्रयोगमें श्रेष्ठ और रसायन कारक है ॥ २०४ ॥

शुभनीललक्षणम् ।

न निम्नो निर्मलो गात्रे मसृणो गुरुदीप्तकः ।
तृणग्राही मृदुर्नीलो दुर्लभो लक्षणान्वितः ॥ २०५ ॥

जो नीलम मध्यमें नीचा न हो और निर्मल अङ्गवाला चिकना भारी तेजस्वी तिनकाको ग्रहण करनेवाला कोमलता युक्त तथा शुभलक्षणोंसे युक्त हो वह शुभ होता है परन्तु इसका मिलना कठिन है ॥ २०५ ॥

अशुभनीललक्षणम् ।

मृच्छर्कराश्मकलिलो विच्छायो मलिनो लघुः ।
रूक्षः स्फुटितगर्तश्च वर्ज्यो नीलः सदोषकः ॥ २०६ ॥

जो नीलम मणि मिट्टी, कंकर और पत्थरोंसे दुर्ज्ञेय, कान्तिरहित, मलिन- हलकी, रूक्ष, फूटी तथा गड्ढेसे युक्त हो वह दोषयुक्त होनेके कारण त्याग कर- नेके योग्य है ॥ २०६ ॥

नीलस्य चतुर्विधत्वादिवर्णनम् ।

सितशोणपीतकृष्णच्छाया नीलाः क्रमादिमे कथिताः ।
विप्रादिवर्णसिद्ध्यै धारणमस्यापि वज्रवत्फलदम् ॥ २०७ ॥

सफेद, लाल, पीली और काली इन चार प्रकारके रंगोंसे युक्त नीलम मणि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र संज्ञक जानना चाहिये, जो फल हीराके धारण करनेका है वही इसके धारणका भी समझना चाहिये ॥ २०७ ॥

नीलमणिपरीक्षा ।

आनन्दचन्द्रिकाकारः सुन्दरः क्षीरतप्तकः ।
यः पात्रं रञ्जयत्याशु स जात्यो नील उच्यते ॥ २०८ ॥

जो नीलममणि दखनेमें आनन्द करनेवाली चचकाहटयुक्त, सुन्दर हो और अग्निमें तपाकर गरम दूध युक्त पात्रमें डालनेसे पात्रको रागयुक्त करदेवे वह उत्तम जातिका नीलम जानना ॥ २०८ ॥

जलनीलेन्द्रनीलं च शक्रनीलं तयोर्वरम् ।
श्वेतगर्भितनीलाभं लघु तज्जलनीलकम् ॥
कार्ष्ण्यगर्भितनीलाभं सभारं शक्रनीलकम् ॥ २०९ ॥

नीलम मणिके दो भेद हैं पहला जलनील और दूसरा इन्द्रनील, इन दोनोंमेंसे इन्द्रनील श्रेष्ठ है । जो श्वेतवर्णगर्भित नील कान्तिसे युक्त और हलकी हो वह जलनील संज्ञक नीलमणि कहाती है । जो कृष्णवर्णगर्भित नील कान्तिवाली और गुरु हो उसे इन्द्रनील नामक नीलमणि जानना चाहिये ॥ २०९ ॥

उत्तमनीललक्षणम् ।

एकच्छायं गुरु स्निग्धं स्वच्छं पिण्डतविग्रहम् ।
मृदुमध्ये लसज्ज्योतिः सप्तधा नीलमुत्तमम् ॥ २१० ॥

एक कान्तियुक्त, भारी, चिकनी, स्वच्छ, गोल बीचमें कुछ नम्र और सुन्दर ज्योतिसे युक्त सात लक्षणोंवाली नीलमाणि श्रेष्ठ होती है ॥ २१० ॥

अशुभजलनीललक्षणम् ।

कोमलं विहितं रूक्षं निर्भारं रक्तगन्धि च ।
चिपिटाभं सरूक्षं च जलनीलं च सप्तधा ॥ २११ ॥

कोमल, विहित, रूखी, हलकी, रक्तके समान गन्धवाली, चिपटी और रूक्षता युक्त सात लक्षणोंवाली जलनील नामक मणि अशुभ होती है ॥ २११ ॥

नीलमणिगुणाः ।

श्वासकासहरं वृष्य त्रिदोषघ्नं सुदीपनम् ।
विषमज्वरदुर्नामपापघ्नं नीलमीरितम् ॥ २१२ ॥

नीलमणि,--श्वासरोग, कासरोग, त्रिदोष, विषमज्वर, बवासीर और पापोंको नाश करती है । वृष्य और दीपन है ॥ २१२ ॥

पुष्परागगुणाः ।

पुष्परागं विषच्छर्दिकफवाताग्निमान्द्यजित् ।
दाहकुष्ठार्शशमनं दीपनं पाचनं लघु ॥ २१३ ॥

पुखराज मणि,--विषबाधा, वमन, कफरोग, वातरोग, मन्दाग्नि, दाह, कुष्ठ और बवासीरको नाश करती है, दीपन और पाचन है ॥ २१३ ॥

शुभपुष्परागलक्षणम् ।

पुष्परागं गुरु स्वच्छं स्थूलं स्निग्धं समं मृदु ।
कर्णिकारप्रसूनाभं मसृणं शुभमष्टधा ॥ २१४ ॥

भारी, स्वच्छ, स्थूल, चिकना, समान, कोमल, कनेरके पुष्पकीसी कान्तिसे युक्त, मसीन इन आठ प्रकारके लक्षणोंसे युक्त पुखराज उत्तम होता है ॥२१४॥

अशुभपुष्परागलक्षणम् ।

निष्प्रभं कर्कशं रूक्षं पीतं श्यामं नतोन्नतम् ।
कपिलं कालिलं पाण्डुं पुष्परागं परित्यजेत् ॥ २१५ ॥

जो पुखराज निजकान्तिहीन, कठोर, रूक्ष, पीला, काला, ऊँचा नीचा, नीला, पीला मिश्रित, कालिल और पाण्डु रंगसे युक्त हो उसका त्याग करे ॥ २१५ ॥

अन्यच्च ।

कृष्णं बिन्द्वाङ्कितं रूक्षं धवलं मलिनं लघु ।
विच्छायं शर्कराभासं पुष्परागं सदोषलम् ॥ २१६ ॥

जो पुखराज-,काला बिन्दुओंसे अङ्कित, रूक्ष, सफेद, मलिन, हलका, कान्तिरहित और कंकरके समान प्रभायुक्त हो वह दोषयुक्त होता है ॥ २१६ ॥

शुभपुष्परागफलवर्णनम् ।

सुच्छायपीतगुरुगात्रसुरङ्गशुद्धं स्निग्धं च निर्मलमतीव सुवृत्तशीलम् ।
तत्पुष्परागममलं कलयेदमुष्य पुष्णाति कीर्तिमतिशौर्यसुखायुरर्थान् २१७

जो पुखराज सुन्दर कान्तिसे युक्त, पीला, भारी, उत्तम रंगवाला, शुद्ध चिकना, अत्यन्त निर्मल गोल और तेजस्वी हो वह श्रेष्ठ होता है, यह मणि,-धारण वा सेवन करनेवाले मनुष्यकी कीर्ति, बुद्धि, शूरता, सुख, आयु और धनको बढाती है ॥ २१७ ॥

रत्नयोगक्रमः ।

प्राची दिक्कुलिशस्य मौक्तिकमणेराग्नेयको दक्षिणा-
दिग्वल्लिप्रभवस्य नैर्ऋतककुब् गोमेदसो वारुणी ।
नीलस्याथ दिशा विदूरजमणेर्वायोः कुबेरस्य दिक्-
पुष्पस्याथ हरिन्मणेर्हरहारिच्छेषस्य शेषा हरित् ॥ २१८ ॥

(आभूषणोंमें रत्नोंके जडनेका क्रम) आभूषणके पूर्वभागमें हीरा, आग्नेयमें मोती, दक्षिणमें मूँगा, नैर्ऋत्यमें गोमेद, पश्चिममें नीलम, वायव्यमें वैदूर्य, उत्तरमें पुखराज, ईशानमें पन्ना और शेष रत्नोंको आभूषणके मध्यभागमें जडवावे॥२१८॥

नवग्रहरत्नदाननिर्णयः ।

माणिक्यं तु रवेर्बुधस्य गरुडोद्गारो गुरोः पुष्पकं
गोमेदस्तमसः प्रवालमवनीसूनोर्विधोर्मौक्तिकम् ।
नीलो मन्दगतेः कवेस्तु कुलिशं केतोर्बिडालाक्षकं
रत्नं रत्नविदो वदन्ति विहितं दानेऽथवा धारणे ॥ २१९ ॥

सूर्यका माणिक्य, बुधका पन्ना, बृहस्पतिका पुखराज, राहुका गोमेद, मङ्गलका मूँगा, चन्द्रमाका मोती, शनिका नीलम, शुक्रका हीरा, केतुका वैदूर्य इस प्रकार रत्नोंका दान वा धारण करना चाहिये यह रत्नके जाननेवाले कहते हैं॥२१९॥

पञ्चरत्नवर्णनम्।

पुष्परागं महानीलं पद्मरागं च वज्रकम्।
प्रोक्तं[1] मरकतं शुभ्रं पञ्चरत्नवराः शुभाः॥ २२०॥

पुखराज, नीलम, माणिक्य, हीरा और पन्ना ये पाँच रत्न सब रत्नोंमें श्रेष्ठ हैं॥ २२०॥

सर्वरत्नशोधननिर्णयः।

वज्रवत्सर्वरत्नानि शोधयेन्मारयेत्तथा।
प्रोक्तं न मारणं तेषां रत्नज्ञैः पृथगेव हि॥ २२१॥

पुखराज, माणिक्य और पन्ना आदि रत्नोंका शोधन और मारण हीराके समान करे। रत्नोंके शोधनादिकी विधि जाननेवालोंने इन रत्नोंके शोधनादिका विधान पृथक् नहीं वर्णन किया॥ २२१॥

वर्णनं तात रत्नानामष्टाविंशे कृतं मया॥ २२२॥

हे तात! इस अट्ठाईसवें अध्यायमें मैंने रत्नोंका वर्णन करदिया है॥२२२॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
रत्नवर्णनं नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः॥ २८॥

ऊनत्रिंशोऽध्यायः।

अथातोपरत्नवर्णनं नामोनत्रिंशाध्यायं व्याख्यास्यामः।

अब हम उपरत्नवर्णन नामक उनतीसवें अध्यायका वर्णन करते हैं।

गुरुरुवाच।

अधुना चोपरत्नानां वर्णनं ह्यपि श्रूयताम्॥ १॥

गुरु कहने लगे कि हे तात! अब उपरत्नोंका वर्णन भी सुनो॥ १॥

---

१ हिन्दीभाषामें खोटे पुखराजको करकत, खोटे माणिक्यको तामडा, खोटे हीराको काँसुला और खोटे नीलमणिको नीली कहते हैं॥

उपरत्नवर्णनम् ।

वैक्रान्तः सूर्यकान्तश्च चन्द्रकान्तस्तथैव च ।
राजावर्तो लालसंज्ञः पेरोजाख्यस्तथापरे ॥ २ ॥
नीलपीतादिमणयोऽप्यन्ये विषहरा हि ये ।
वह्न्यादिस्तम्भका ये च ते सर्वे हि परीक्षकैः ॥ ३ ॥
उपरत्नेषु गणिता मणयो लोकविश्रुताः ।
रत्नादीनामलाभे तु ग्राह्यं तस्योपरत्नकम् ॥
मौक्तिकस्याप्यभावे तु मुक्ताशुक्तिं प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

वैक्रान्त, सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त, राजावर्त, लाल, फिरोजा, नीली तथा पीली मणि और बिषनाशक एवं अग्निस्तम्भक आदि सब लोक प्रसिद्ध रत्नोंको रत्न-परीक्षकोंने उपरत्नोंमें गणना की है यदि हीरा आदि रत्न न मिलें तो उनके स्थानमें उनके उपरत्न लेना चाहिये मोतीके अभावमें मोतीकी सीपको कार्यमें प्रयुक्त करे ॥ २-४ ॥

उपरत्नगुणाः ।

गुणा यथैव रत्नानामुपरत्नेषु ते तथा ।
तेषु किञ्चित्ततो हीना विशेषोयमुदाहृतः ॥ ५ ॥

यद्यपि वज्रादि रत्नोंमें जो उत्तम गुण हैं वही उन प्रत्येकके उपरत्नोंमें भी विद्यमान हैं परन्तु तो भी उनकी अपेक्षा इनमें कुछ न्यून गुण अवश्य है येही इन दोनोंमें विशेषता है ॥ ५ ॥

दैत्येन्द्रो माहिषः सिद्धः सह देवैः समुद्यतः ।
दुर्गा भगवती देवी तं शूलेन व्यमर्दयत् ॥ ६ ॥
तस्य रक्तं तु पतितं यत्र यत्र स्थितं भुवि ।
तत्र तत्र तु वैक्रान्तं वज्राकारं महारसम् ॥ ७ ॥
विन्ध्यस्य दक्षिणे चास्ति उत्तरे चास्ति सर्वतः ।
विकृतयति लोहानि तेन वैक्रान्तिकः स्मृतः ॥ ८ ॥

जिस समय दैत्योंके पति महिषासुरका देवताओंके साथ भयंकर युद्ध होने-लगा उस समय भगवती दुर्गा देवीने अपने शूलसे जब उस असुरको मारा तब

उसके शरीरसे रुधिर बहने लगा वह रुधिर पृथिवीके जिस जिस प्रदेशमें गिरा उस २ प्रदेशमें हीराके समान महारस वैक्रान्त संज्ञाको प्राप्त हुआ। वैक्रान्तमणि विन्ध्याचलके दक्षिण एवं उत्तरभागमें सर्वत्र उपलब्ध होती है। यह लोहोंको विकारयुक्त करती है इस कारण इसका नाम वैक्रान्तिक रक्खा गया है ॥६-८॥

शुभवैक्रान्तलक्षणम् ।

अष्टास्रश्चाष्टफलकः षट्कोणो मसृणो गुरुः।
शुद्धमिश्रितवर्णैश्च युक्तो वैक्रान्त उच्यते ॥ ९ ॥

जो वैक्रान्त,--आठ नोके और आठही फलकोंसे युक्त, छः कोणवाला, चिकना भारी और शुद्ध मिश्रित वर्णोंसे युक्त हो वह श्रेष्ठ होता है ॥ ९. ॥

अष्टविधवैक्रान्तवर्णनम् ।

श्वेतो रक्तश्च पीतश्च नीलः पारावतच्छविः ।
श्यामलः कृष्णवर्णश्च कर्बुरश्चाष्टधा हि सः ॥ १० ॥

सफेद, लाल, पीला, नीला, कबूतरके समान कान्तिवाला, श्याम, काला और कबरा इन आठ प्रकारके रंगोंसे युक्त आठ प्रकारकी वैक्रान्तमणि होती है ॥ १० ॥

अन्यच्च ।

वैक्रान्तः श्वेतपीतादिभेदेनाष्टप्रकारकम् ।
स्वर्णरूप्यादिके वर्णे स्वस्ववर्णः शुभो मतः ॥ ११ ॥
वैक्रान्तः कृष्णवर्णो यः षट्कोणो वसुकोणकः ।
मसृणो गुरुतायुक्तो निर्मलः सर्वसिद्धिदः ॥ १२ ॥

सफेद, पीत, लाल और नील आदि रंगोंके भेदसे वैक्रान्त आठ प्रकारका होता है। सोना और चाँदी आदिके वर्णमें अपने २ रंगका श्रेष्ठ होता है। जिसका रंग काला हो, छः वा आठ कोनोंसे युक्त चिकना, भारी और निर्मल हो वह सम्पूर्ण सिद्धियोंका देनेवाला है ॥ ११ ॥ १२ ॥

मतान्तरम् ।

श्वेतः पीतस्तथा रक्तो नीलः पारावतप्रभः ।
मयूरकण्ठसदृशश्चान्यो मरकतप्रभः ॥ १३ ॥
देहसिद्धिकरं कृष्णं पीते पीतं सिते सितम् ।

सर्वार्थसिद्धिदं रक्तं तथा मरकतप्रभम् ॥
शेषे द्वे निष्फले वर्ज्ये वैक्रान्तमिति सप्तधा ॥ १४ ॥

सफेद, पीला, लाल, नील, कबूतरके समान रंगसे युक्त, मयूरकंठके तुल्य कान्तिवाला और पन्नाके सदृश हरा इन भेदोंसे वैक्रान्त सात प्रकारका होता है, इनमेंसे जो कृष्ण रंगका वैक्रान्त है वह देहकी शुद्धि करता है। सोना बनानेमें पीला और चांदी बनानेमें सफेद रंगका वैक्रान्त ग्रहण करना चाहिये। लाल रंगसे युक्त तथा पन्नाके समान दीप्तिवाला वैक्रान्त सब प्रकारकी अर्थसिद्धियोंका देनेवाला है। शेष रहा नीला और कबूतरके समान रंगका वैक्रान्त सो वे दोनों निष्फल होनेके कारण ग्रहण करनेके योग्य नहीं है ॥ १३ ॥ १४ ॥

वैक्रान्तग्रहणविधिः।

यत्र क्षेत्रे स्थितं चैकं वैक्रान्तं तत्र भैरवम् ।
विनायकं च संपूज्य गृह्णीयाच्छुद्धमानसः ॥ १५ ॥

जिस मनुष्यको वैक्रान्तमणिकी आवश्यकता हो उसको चाहिये कि जिस स्थानमें वैक्रान्तमणि स्थित हो वहाँ जाकर शुद्ध चित्त हो भैरव और गणेशका पूजन करके उस मणिको ग्रहण करे ॥ १५ ॥

वैक्रान्तशोधनमारणविधिः।

वैक्रान्तं वज्रवच्छोध्यं नीलं वा लोहितं तथा ।
हयमूत्रे तु तत्सेच्यं तप्तं तप्तं द्विसप्तधा ॥ १६ ॥
ततस्तु मेषशृङ्ग्युत्थपञ्चाङ्गे गोलके क्षिपेत् ।
पुटेन्मूषापुटे रुद्ध्वा कुर्यादेवं च सप्तधा ॥
वैक्रान्तं भस्मतां याति वज्रस्थाने नियोजयेत् ॥ १७ ॥

नील वा लाल रंगवाले वैक्रान्तको हीराके समान शुद्ध करे और पीछे अग्निमें तपा तपाकर चौदह बार घोडेके मूत्रमें बुझावे तत्पश्चात् मेढाशिंगीका पञ्चांग लाकर कूट पीस गोला बनालेवे और उस गोलेके भितर मणिको रख मूषामें रक्खे और सरवेसे बंदकर कपरमिट्टी करके आरने उपलोंकी अग्नि देकर गजपुटमें फूँकदेवे। इसी रीतिसे सात बार सब क्रिया करे तो वैक्रान्त मणिकी भस्म सिद्ध होजाती है। यदि हीराकी भस्म न मिलसके तो इस वैक्रान्त भस्मका कार्यमें योग करे ॥ १६ ॥ १७ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

वैक्रान्तं वज्रवच्छोध्यं ध्मातं सिक्तं नृमूत्रके ।
वज्रवन्मृतिमायाति वज्रस्थाने प्रयोजयेत् ॥ १८ ॥

जिस प्रकार हीराका शोधन किया जाता है उसी प्रकार वैक्रान्तमणिका भी शोधन करे, परन्तु इसको अग्निमें तपाकर मनुष्यके मूत्रमें बुझावे । इसका मारण भी हीराकी समान ही करे और वज्रभस्मके अभावमें इस भस्मको कर्यामें लगावे १८

तृतीयः प्रकारः ।

कुलित्थक्वाथसंस्विन्नो वैक्रान्तः परिशुद्ध्यति ।
म्रियतेऽष्टपुटैर्गन्धनिम्बुकद्रवसंयुतम् ॥ १९ ॥

वैक्रान्तको कुलथीके काढेमें औटाकर शुद्ध करे और पश्चात् नीम्बूके रसमें गंधक पीस उसमें लपेटकर फूँकदेवे, इसी प्रकार आठ पुट देनेसे वैक्रान्तकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ १९ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

वैक्रान्तरत्नं त्रिदिनं विशुद्धं संस्वेदितं क्षारपटूनि दत्त्वा ।
अम्लेषु मूत्रेषु कुलत्थरम्भानीरेऽथवा कोद्रववारिपक्वम् ॥ २० ॥

वैक्रान्त मणिको क्षारवर्ग, लवणवर्ग, अम्लवर्ग, मूत्रवर्ग, कुलथीका काढा, केलेका रस अथवा कोदोंके काढेमें स्वेदन करे तो शुद्ध होजाताहै ॥ २० ॥

पञ्चमः प्रकारः ।

वैक्रान्तेषु च तप्तेषु हयमूत्रे विनिःक्षिपेत् ।
पौनःपुन्येन वा कुर्याद्द्रवं दत्त्वा पुटं तनु ॥
भस्मीभूतं तु वैक्रान्तं वज्रस्थाने नियोजयेत् ॥ २१ ॥

वैक्रान्तको अग्निमें तपाकर घोडेके मूत्रमें बुझावे, इस प्रकार बार बार करे, और फिर द्रव देकर हलका पुट देवे तो वह भस्म होजाता है । इसको वज्रभस्मके अभावमें देवे ॥ २१ ॥

वैक्रान्तभस्मगुणाः ।

वैक्रान्तो वज्रसदृशो देहलोहकरो मतः ।
विषघ्नो रसराजस्य ज्वरकुष्ठक्षयप्रणुत् ॥ २२ ॥

वैक्रान्तभस्मके गुण हीराकी भस्मके समान ही जानना चाहिये । यह भस्म शरीरको लोहेके सदृश दृढ करती है, पारेका विष नष्ट करती है, ज्वर, कुष्ठरोग और क्षयीको दूर करती है ॥ २२ ॥

अन्यच्च ।

वैक्रान्तस्तु त्रिदोषघ्नः षड्रसो देहदार्ढ्यकृत् ।
पाण्डूदरज्वरश्वासकासयक्ष्मप्रमेहनुत् ॥ २३ ॥

वैक्रान्तभस्म,–त्रिदोष, पाण्डुरोग, उदररोग, ज्वर, श्वास, खाँसी, क्षयी और प्रमेहको दूर करती है, देहमें दृढता करती है, छः रसोंसे युक्त है ॥ २३ ॥

भस्मसेवनविधिस्तत्फलञ्च ।

भस्मत्वं समुपागतो विकृतको हेम्नाऽमृतेनान्वितो
पादांशेन कणाज्यवल्लसहितो गुञ्जोन्मितः सेवितः ।
यक्ष्माणं ज्वरजञ्च पाण्डुगुदजं श्वासं च कासामयं
दुष्टं संग्रहणीमुरःक्षतमुखान्रोगाञ्जयेद्देहकृत् ॥ २४ ॥

वैक्रान्तमणिकी भस्म एक रत्ती, सोनेकी भस्म रत्तीका चौथाई भाग, पीपल, मिरच और मक्खन इन सबको मिलाकर सेवन करे तो क्षयी, ज्वर, पाण्डुरोग, गुदरोग (बवासीर आदि), श्वास, खाँसी, असाध्यसंग्रहणी और उरःक्षतादि रोगोंको दूर करे ॥ २४ ॥

अन्यच्च ।

सूतभस्मार्द्धसंयुक्तं नीलवैक्रान्तभस्मकम् ।
मृताभ्रसत्वमुभयोस्तुलितं परिमर्दितम् ॥ २५ ॥
क्षौद्राज्यसंयुतं प्रातर्गुञ्जामात्रं निषेवितम् ।
निहन्ति सकलान्रोगान्दुर्जयानन्यभेषजैः ॥
त्रिसप्तदिवसैर्नृणां गङ्गाम्भ इव पातकम् ॥ २६ ॥

दो भाग नीलवैक्रान्तकी भस्म, एक भाग पारेकी भस्म और इन दोनोंके बराबर मृत अभ्रकका सत्त्व लेकर शहद और घृतके साथ मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल एक रत्ती प्रमाण इक्कीस दिन तक सेवन करे तो अन्य औषधोंसे भी दुर्जय असाध्य रोगोंको उस प्रकार नाश करे जैसे गङ्गाजल पातकोंको नाश करती है ॥ २५ ॥ २६ ॥

वैक्रान्तसत्त्वपातनविधिः ।

सत्त्वपातनयोगेन मर्दितश्च वटीकृतः ।
मूषास्थो घटिकाध्मातो वैक्रान्तः सत्त्वमुत्सृजेत् ॥ २७ ॥

पहले सत्त्वपातनके लिये जो योग वर्णन करचुके हैं उनमेंसे किसी एक योगके साथ वैक्रान्त मणिको मर्दन करके गोला बनालेवे और उस गोलेको मूषामें रखकर एक घडी तक तीव्र अग्निमें धमावे तो वह सत्त्वको छोडे ॥ २७ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

मोक्षमोरटपालाशक्षारगोमूत्रभावितम् ।
वज्रकन्दानिशाकल्कं फलचूर्णसमन्वितम् ॥ २८
तत्कल्कं टङ्कणं लाक्षाचर्णं वैक्रान्तसम्भवम् ।
शरावेण समायुक्तं मेषशृङ्गीद्रवान्वितम् ॥ २९ ॥
पिण्डितं मूकमूषास्थं ध्मापितं च दृढाग्निना ।
तत्रैव पतते सत्त्वं वैक्रान्तस्य न संशयः ॥ ३० ॥

मोक्षवृक्ष (मोखावृक्ष) मोरट (लताविशेष) पलाश (ढाक) इन तीनोंके खारको गौके मूत्रकी भावना देवे तत्पश्चात् वज्रकन्द अर्थात् थूहरकी जड और हल्दीका कल्क, कक्कोलका चूर्ण, सुहागा, लाखका चूर्ण, वैक्रान्तमणिका चूर्ण इन सबको एकमें मिलाकर मेढासिंगीक रसमें गोला बनालेवे और उस गोलेको वज्रमूषामें रख तीव्र अग्निसे धमावे तो निस्सन्देह वैक्रान्तका सत्त्व निकलताहै॥२८--३०॥

तृतीयः प्रकारः ।

वैक्रान्तस्य पलं चैकं कर्षकं टङ्कणस्य च ।
रविक्षीरैर्दिनैर्भाव्यं मर्द्यं शिग्रुदिनैर्द्रवम् ॥ ३१ ॥
गुञ्जापिण्याकवह्नीनां प्रतिकर्षाणि योजयेत् ।
एतेन गुटिकां कृत्वा कोष्ठयन्त्रे धमेद्दृढम् ॥
शंखकुन्देन्दुसंकाशं सत्त्वं वैक्रान्तजं भवेत् ॥ ३२ ॥

वैक्रान्त चार तोले, सुहागा एक कर्ष (अस्सी रत्ती) एक दिन आकके दूधमें घोटकर सहिंजनेके रसमें एकदिन घोटे तदनन्तर घूँघची, तिलोंका कल्क और चित्रक इन प्रत्येकको एक २ कर्ष लेवे और इसमें वैक्रान्तचूर्णको मिलाकर

गोला बनालेवे और उस गोलेको कोष्ठयन्त्रमें रख धोंकनीसे धोंके तो शंख कुन्द-पुष्प और चन्द्रमाके समान सत्त्व निकले ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

सर्वरत्नशोधनमारणाविधिः ।

स्वेदयेद्दोलिकायंत्रे जयन्त्याः स्वरसेन च ॥ ३३ ॥
मणिमुक्ताप्रवालानां यामैकं शोधनं भवेत् ।
कुमार्यास्तन्दुलीयेन स्तन्येन च निषेचयेत् ॥ ३४ ॥
प्रत्येकं सप्तवेलं च तप्ततप्तानि कृत्स्नशः ।
मौक्तिकानि प्रवालानि तथा रत्नान्यशेषतः ॥ ३५ ॥
क्षणाद्विविधवर्णानि म्रियन्ते नात्र संशयः ।
उक्तमाक्षिवन्मुक्ताप्रवालानि च मारयेत् ॥
वज्रवत्सर्वरत्नानि शोधयेन्मारयेत्तथा ॥ ३६ ॥

सूर्यमणि, मोती और मूँगाको जयन्ती अर्थात् अरनीके रसमें एक प्रहर पर्यन्त स्वेदन करे तो शुद्ध होते हैं। इसी प्रकार हीरा, पन्ना, पुखराज, माणिक्य, इन्द्रनील, गोमेद, वैदूर्य, नीलम, मोती, मूँगा आदि समस्त रत्नोंको अग्निमें तपा २ कर घीकुवारिके रस, चौलाईके रस, और स्त्रीके दूधमें सात २ बार बुझावे तो थोडे समयमेंही अनेक प्रकारके रंगवाले रत्न भस्म होते हैं, इसमें सन्देह नहीं। अथवा सोनामक्खीके समान मोती, मूँगा, आदिका मारण करे अथवा हीराके सदृश सम्पूर्ण रत्नोंका शोधन और मारण करे ॥ ३३--३६ ॥

असंस्कृतान्यथासंस्कृतारत्नानामनिष्टकरत्ववर्णनम् ।

सिद्धं पारदमभ्रकं च विविधान्धातूंश्च लोहानि च
प्राहुः किञ्च मणीनथो च सकलान्संस्कारतः सिद्धिदान् ।
यत्संस्कारविहीनमेषु हि भवेद्यचान्यथा संस्कृतं
तन्मर्त्यं विषवद्धिहन्ति तदिह ज्ञेया बुधैः संस्क्रिया ॥ ३७ ॥

पारद, अभ्रक, अष्टधातु, सात उपधातु, रत्न, और उपरत्न यह सब संस्कार करनेसे गुणकारी कहे गये हैं और विना संस्कारके वा अन्यथा संस्कार करनेसे यही रत्न मनुष्यके प्राणोंको विषके समान हर लेते हैं इस कारण बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि इन रत्नोंके शोधन तथा मारण आदिकी सम्पूर्ण क्रियाको अच्छे प्रकार जान लेवे ॥ ३७ ॥

सूर्यकान्तलक्षणम् ।

शुद्धस्निग्धो निर्व्रणो निस्तुषस्तु यो निर्घृष्टो व्योमनैर्मल्यमेति ।
यः सूर्यांशुस्पर्शनिष्ठ्यूतवह्निर्जात्यः सोयं कथ्यते सूर्यकान्तः ॥ ३८ ॥

जो सूर्यकान्त माणि शुद्ध, चिकनी, व्रणरहित, निस्तुष हो और कसौटीपर घिसनेसे आकाशके समान निर्मल होजावे सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे जिसमें अग्नि उत्पन्न हो वह उत्तम जातिका सूर्यकान्त माणि कहा जाता है ॥ ३८ ॥

सूर्यकान्तगुणाः ।

रविकान्तो भवेदुष्णो निर्मलश्च रसायनः ।
वातश्लेष्महरो मेध्यः पूजनाद्रवितोषकृत् ॥ ३९ ॥

सूर्यकान्त गरम, निर्मल, वातकफनाशक, बुद्धिवर्द्धक, और रसायन है इसके पूजनसे सूर्य प्रसन्न होता है ॥ ३९ ॥

चन्द्रकान्तलक्षणम् ।

स्निग्धं श्वेतं पीतमात्राच्छमं तद्धत्ते चित्ते स्वेच्छया यन्मुनीनाम् ।
यच्च स्रावं याति चन्द्रांशुसंगाज्जात्या रत्नं चन्द्रकान्ताख्यमेतत् ॥ ४० ॥

जो चिकनी और सफेद निज इच्छासे पान करने मात्रसे मुनियोंके चित्तमें शान्ति दे और चन्द्रकिरणोंके सम्बन्धसे जल छोडे उसे उत्तम जातिका चन्द्रकान्त जानना चाहिये ॥ ४० ॥

चन्द्रकान्तगुणाः ।

चन्द्रकान्तस्तु शिशिरः स्निग्धः पित्तास्रतापनुत् ।
शिवप्रीतिकरः स्वच्छो ग्रहालक्ष्मीविनाशनः ॥ ४१ ॥

चन्द्रकान्त माणि, शीतल और चिकनी है पित्तरक्त, दाह ग्रहबाधा अलक्ष्मी इनको नाश करती है, स्वच्छ है, महादेवजीकी प्रीतिको उत्पन्न करती है ॥ ४१॥

राजावर्तलक्षणम् ।

राजावर्तोऽल्परक्तोरुनीलिमामिश्रितप्रभः ।
गुरुत्वमसृणः श्रेष्ठस्तदन्यो मध्यमः स्मृतः ॥ ४२ ॥

राजावर्त[1] (रेवटी) माणि कुछ लाल और अधिक नीलता मिश्रित कान्तिसे युक्त, भारी और चिकनी होती है । इन उक्त लक्षणोंसे रहित राजावर्त मध्यम जानना ॥ ४२ ॥

---

१ दाक्षिणात्य भाषामें इस राजावर्तको गोविन्दमणि कहते हैं ।

अन्यच्च ।

निर्गारमसितमसृणं नीलं गुरु निर्मलं बहुच्छायम् ।
शिखिकण्ठसमं सौम्यं राजावर्तं वदन्ति जात्यमणिम् ॥ ४३ ॥

जो राजावर्त,--गढेलारहित, काला, चिकना, नीलवर्ण, भारी, निर्मल, बहुत कान्तिसे युक्त और मयूरकण्ठके समान सुन्दर हो उसे उत्तम जातिका कहते हैं ॥ ४३ ॥

राजावर्तभेदौ ।

राजावर्तो द्विधा प्रोक्तो गुटिकाचूर्णभेदतः ॥ ४४ ॥

गुटिका और चूर्णके भेदसे राजावर्त दो प्रकारका होता है ॥ ४४ ॥

राजावर्तशोधनविधिः ।

शिरीषपुष्पार्द्ररसैः संतप्तश्च निमज्जितः ।
सप्तवारं भवेच्छुद्धो राजावर्तो न संशयः ॥ ४५ ॥

राजावर्तमणिको अग्निमें तपा २ कर सिरसके फूलोंके रस और अदरकके रसमें सात बार बुझावे तो शुद्ध होवे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४५ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

निम्बुद्रवैः सगोमूत्रैः सक्षारैः स्वेदिताः खलु ।
द्वित्रिवारेण शुद्ध्यन्ति राजावर्तादि धातवः ॥ ४६ ॥

नींबूके रस और क्षारयुक्त गोमूत्रमें दो या तीन बार राजावर्त आदि धातुओंको स्वेदन करे तो शुद्ध होजाते हैं ॥ ४६ ॥

राजावर्तमारणविधिः ।

लुङ्गाम्बुगन्धकोपेतो राजावर्तो विचूर्णितः ।
पुटनात्सप्तवारेण राजावर्तो मृतो भवेत् ॥ ४७ ॥

बिजौरा नींबूके रसमें गन्धक मिलाकर राजावर्तके चूर्णको घोटे और शरावमें रख गजपुटमें पकावे, इसी प्रकार सात बार पुट देवे तो राजावर्तकी भस्म सिद्ध होवे ॥ ४७ ॥

राजावर्तगुणाः ।

प्रमेहक्षयदुर्नामपाण्डुश्लेष्मानिलापहः ।
दीपनः पाचनो वृष्यो राजावर्तो रसायनः ॥ ४८ ॥

राजावर्तो गुरुः स्निग्धो शिशिरः पित्तनाशनः ।
सौभाग्यं कुरुते नृणां भूषणेषु प्रयोजितः ॥ ४९ ॥

राजावर्त मणि,-प्रमेह, क्षयी, बवासीर, पाण्डुरोग, कफरोग और वातरोगको नाश करती है, दीपन, पाचन, वृष्य, भारी, चिकनी, शीतल और रसायन है, पित्तको हरती है। आभूषणोंमें धारण करनेसे मनुष्योंके सौभाग्यको बढाती है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

सत्त्वपातनविधिः ।

राजावर्तस्य चूर्णं तु कुनटीघृतमिश्रितम् ।
विपचेदायसे पात्रे महिषीक्षीरसंयुतम् ॥ ५० ॥
सौभाग्यपञ्चगव्येन पिण्डीबद्धं तु कारयेत् ।
ध्मापितं खदिराङ्गारैः सत्त्वं मुञ्चति शोभनम् ॥ ५१ ॥

किसी लोहेके पात्रमें भैंसका दूध डालकर उसमें मनसिल और घी मिले हुए राजावर्तके चूर्णको पकावे तत्पश्चात् सुहागा, पञ्चगव्य (गौके दूध, दही, घृत, मूत्र) के सहित राजावर्त चूर्णका गोला बनाकर वज्रमूषामें रख खैरके कोयलोंकी आँचमें धोंकनीसे धमन करे तो वह राजावर्त उत्तम सत्त्वको छोडताहै ॥५०॥५१॥

पिरोजभेदौ तद्गुणाश्च ।

पिरोजं हारितं श्यामं भस्माङ्गं हरितं द्विधा ।
पिरोजं सुकषायं स्यान्मधुरं दीपनं परम् ॥ ५२ ॥
स्थावरं जङ्गमं चैव संयोगाच्च यथाविषम् ।
तत्सर्वं नाशयेच्छीघ्रं शूलभूतादिदोषजम् ॥ ५३ ॥

फीरोजा पत्थर हरितश्याम होता है और उसके भस्माङ्ग तथा हरित यह दो भेद होते हैं। स्वादमें कसैला और मधुर है, दीपन है। संयोगसे स्थावर जङ्गम विष और शूल तथा भूतादिकोंकी जो बाधा है उस सबको शीघ्र ही नाश करता है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

स्फटिकोत्पत्तिपरीक्षे ।

कावेरविन्ध्ययवनचीननेपालभूमिषु ।
लाङ्गली व्यकिरन्मेदो दानवस्य प्रयत्नतः ॥ ५४ ॥

आकाशशुद्धं तैलाख्यमुत्पन्नं स्फटिकं ततः ।
मृणालशंखधवलं किञ्चिद्वर्णान्तरान्वितम् ॥ ५५ ॥
न तत्तुल्यं हि रत्नानामथवा पापनाशनम् ।
संस्कृतं शिल्पिनां सद्यो मूल्यं किञ्चिल्लभेत्ततः ॥ ५६ ॥

जिस समय बलभद्रजीने प्रयत्नसे दैत्यको मारा उस समय उसके मरजानेसे कावेरी नदी और विन्ध्यपर्वतके समीपकी भूमि तथा यवन, चीन, और नेपाल देशकी भूमियोंमें जो उसकी मेदा गिरी वह आकाशके समान निर्मल, कमल और शङ्खके समान सफेद तथा कुछ दूसरे रंगसे युक्त तैलसंज्ञक स्फटिक मणि होगई इस स्फटिकमणिके समान श्रेष्ठ अन्य कोई रत्न नहीं है, यह सम्पूर्ण पापों ो नाश करती है । रत्नोंमें संस्कार करनेवाले शिल्पियोंसे इस स्फटिक-मणिमें संस्कार करालेवे और उस शिल्पीके लिये उसके परिश्रमका उचित मूल्य दे देवे ॥ ५४-५६ ॥

स्फटिकपरीक्षा ।

यद्गङ्गातोयबिन्दुच्छविविमलतमं निस्तुषं नेत्र्यहृद्यं
स्निग्धं शुद्धान्तरालं मधुरमतिहिमं पित्तदाहास्रहन्तृ ।
पाषाणे यन्निघृष्टं स्फुटितमपि निजां स्वच्छतां नैव जह्या-
त्तज्जात्यं जात्वलभ्यं शुचिमपि चिनुते शैवरत्नं च रत्नम् ॥ ५७ ॥

जो स्फटिकमणि गङ्गाजीके जलबिन्दुओंके समान स्वच्छ, बिन्दुरहित, नेत्र और हृदयको हितकारी, चिकनी, भीतरके भागमें शुद्ध, मधुर, अतिशीतल, पित्त, दाह और रक्तके विकारोंको नाश करनेवाली, तथा कसौटी पत्थरपर घिसनेसे जो अपनी उत्तम स्वच्छताको न छोडे उस जातिवंत, अलभ्य, पवित्र और रुद्रप्रिय स्फटिकमणि मनुष्य कदाचित् ही प्राप्त करता है ॥ ५७ ॥

स्फटिकगुणाः ।

स्फटिकः समवीर्यः स्यात्पित्तदाहार्तिशोषनुत् ।
तस्याक्षमालाजपतो धत्ते कोटिगुणं फलम् ॥ ५८ ॥

स्फटिकमणि समवीर्य है, पित्त, दाह और शोषरोगको दूर करती है। यदि उसकी अक्षमालासे जप करे तो जप करनेवालेको वह अक्षमाला कोटिगुणा फल देती है ॥ ५८ ॥

रसानां शोधनसत्त्वपातनयोर्विधिः ।

महारसानां सर्वेषां रसानां शुद्धिरुच्यते ।
तथा चोपरसानां च शास्त्रदृष्टेन वर्त्मना ॥ ५९ ॥
वन्ध्याकन्दं पीतवेणी स्नुह्यर्कावर्तवायसी ।
वारिपिप्पलिका चैव कदली सपुनर्नवा ॥ ६० ॥
कोशातकी मेघनादो वज्रकन्दश्च लाङ्गली ।
एषां चैव रसैः सम्यक्पटुक्षीराम्लसंयुतैः ॥
भावितव्या रसाः सर्वे विषैश्चोपविषैः क्रमात् ॥ ६१ ॥
महारसाश्च सर्वेऽपि शुद्ध्यन्त्युपरसास्तथा ।
षश्चाद्ध्माता विमुञ्चन्ति सत्त्वं बहुलमुत्तमम् ॥ ६२ ॥

अब शास्त्रदृष्टमार्गसे सम्पूर्ण महारस, रस और उपरसोंके शोधन करनेकी सामान्य विधि कहते हैं । इन महारसादिकोंमेंसे जिस किसीको शुद्ध करना हो उसको वन्ध्या कर्कोटकी (बाँझखखसा) कन्दके रस, स्वर्णक्षीरी, थोहर, आक, सोनामक्खी, कौवाठोडी, जलपिप्पली, केलाकन्द, पुनर्नवा, कडवी तोरई, चौलाई वज्रकन्द, लाङ्गलीकन्द इन सबोंके रस तथा दूधमें नमक, दूध और अम्लद्रव्य मिलाकर भावना देवे, इसी प्रकार विष और उपरसोंमें क्रमसे भावना देवे । इस पूर्वोक्त क्रियाके करनेसे महारस, उपरस आदि सत्त्वपातन योग्य शुद्ध होजाते हैं और शुद्ध होनेके अनन्तर विधिपूर्वक अग्निमें रखकर धमनेसे अति उत्तम सत्त्वको छोडते हैं ॥ ५९--६२ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

गुडगुग्गुलसौभाग्यं लाक्षासर्जरसः पटु ।
ऊर्णागुञ्जाक्षुद्रमीनमस्थीनि शशकस्य च ॥ ६३ ॥
तथा मध्वाज्यपिण्याकं तुल्यं पेष्यमजापयैः ।
सर्वतुल्यं च धान्याभ्रं भूनागामृत्तिकाथवा ॥ ६४ ॥
कान्तपाषाणचूर्णं वा कठिनोपरसाश्च ये ।
मेलयेन्माहिषैः पञ्च दृढं सर्वगुटीकृताः ॥ ६५ ॥
कर्षमात्रप्रमाणांश्च कोष्ठयन्त्रं दृढं धमेत् ।

अङ्गारैः खादिरोद्भूतैस्त्रिवारं धमनाद्ध्रुवम् ॥
निर्मलं पतते सत्त्वमसाध्यस्याप्यसंशयः ॥ ६६ ॥

गुड, गूगल, सुहागा, लाख, राल, लवण, ऊन, घूँघची, छोटी मछली, खर्गोशकी हड्डी, शहद, घृत और तिलकल्क इनको बराबर लेकर बकरीके दूधमें घोटलेवे और इन सबकी बराबर धान्याभ्र अथवा केंचुओंकी मिट्टी अथवा मण्डूरके चूर्ण मिलावे और महारसादिकोंमेंसे जिसका सत्त्व निकालना हो उसको भी इसीमें मिला देवे तदनन्तर भैंसका गोबर, मूत्र, दूध, दही और घृत मिलाकर घोटे जब अच्छे प्रकार घुटजावे तब एक २ तोलेकी टिकिया बनाकर धूपमें सुखा लेवे और पीछे खरके कोयलोंकी अग्निमें रख कोठीयन्त्रमें बंकनाल द्वारा धमावे इसी प्रकार तीन बार करनेसे निर्मल सत्त्व निकल आताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६३--६६ ॥

सत्त्वपतनपरीक्षा ।

शुक्लदीप्तः सशब्दश्च यदा वैश्वानरो भवेत् ।
तदा सत्त्वं तु पतितं जानीयान्नान्यथा क्वचित् ॥
तथाग्नौ दक्षिणावर्ते सत्त्वं तु पतितं वदेत् ॥ ६७ ॥

जब अग्निमेंसे सफेद लाट निकले और पट २ शब्द होनेलगे तो समझे कि अब सत्त्वपतन होनेलगा और यदि उक्त लक्षण न हों तो जाने कि अभी सत्त्व निकलनेका प्रारम्भ नहीं हुआ । जिस ओर धोंकनीसे फूँक लगती है उस फूँकके दक्षिणावर्त ही प्रायः यह सत्त्व गिरा करताहै ॥ ६७ ॥

सत्त्वपातनकाले वह्निलक्षणम् ।

आवर्तमानं कनके पीता तारे सितप्रभा ।
शुल्बे नीलनिभा तीक्ष्णे कृष्णवर्त्मा विशारद ॥ ६८ ॥
वङ्गे ज्वाला कपोताभा नागे मलिनधूसरा ।
शैले तु धूसरा तात आयसे कपिलप्रभा ॥ ६९ ॥
अयस्कान्ते धूम्रवर्णा शस्ये च लोहिता भवेत् ।
वज्रे नानाविधा ज्वाला सत्त्वे वै पाण्डुरप्रभा ॥ ७० ॥

सुवर्णका सत्त्व निकालनेके समय अग्निकी लाट पीली होती है, चाँदीमें सफेद, ताँबेमें नील, फौलाद लोहमें काली, राँगेमें कबूतरके समान, सीसेमें मलिनधूसर, शिलाजीत और सुरमेंमेंभी धूसर, लोहमें कपिल कान्तलोहमें धूम्र, शस्यमें लाल,

हीरामें अनेक प्रकारकी प्रभासे युक्त और अधिकतर पाण्डुरवर्णकी अग्निज्वाला निकलती है ॥ ६८-७० ॥

शुद्धसत्त्वपरीक्षा।

न विस्फुलिंगा न च बुद्बुदा यदा यदा न चैषां पटलं न शब्दः ॥
मूषागतं रत्नसमास्थिरं च तदा विशुद्धं प्रवदन्ति सत्त्वम् ॥ ७१ ॥

सत्त्व निकालते समय जब अग्निमें चिनगारियें न उडें, बुद्बुदाकार न दिखाई देवे किन्तु रत्नसमान शुद्ध प्रतीत हो, पटल और चटपट शब्दसे रहित हो तो जानो कि अब सत्त्व शुद्ध है ॥ ७१ ॥

ताम्रायस्सत्त्वपरीक्षायां विशेषः।

शुल्बे दीप्तिः सशब्दश्च यदा वैश्वानरो भवेत्।
लोहावर्तसमं ज्ञेयं सत्त्वं पतति निर्मलम् ॥ ७२ ॥

ताम्रसत्त्व जब प्रकाशसे युक्त हो, अग्निमें पट २ शब्द होनेलगे तब जानो कि, उत्तम सत्त्व पतन होताहै। लोहेका सत्त्व जब मूषामें चक्कर खाने लग जाय तब समझना चाहिये कि, निर्मल शुद्ध सत्त्व गिरताहै ॥ ७२ ॥

कठिनसत्त्वमृदुक्रियाविधिः।

यदि सत्त्वं तु कठिनं भवेत्तत्र मृदुक्रिया।
सत्त्वं समस्तं संग्राह्यं काचकिट्टं विवर्जयेत् ॥ ७३ ॥
निक्षिप्य वज्रमूषायां बंकनालेन संधमेत्।
स्तोकं स्तोकं ददन्नागं समद्वित्रिचतुर्गुणम् ॥
यावत्सकोमलं तावत्सत्त्वं च योजयेद्रसे ॥ ७४ ॥

यदि सत्त्व कठिन हो तो उसको नम्र करनेकी यह क्रिया है कि, सम्पूर्ण सत्त्व लेकर उसका काचकिट्ट दूर करके वज्रमूषामें रख बंकनालसे धमे और उसमें थोडा २ सीसा डालता जाय इस पकार बराबर अथवा दो गुणा या तीन गुणा सीसा डालनेसे सत्त्व नम्र होजाता है इस प्रकार जितना सत्त्व नम्र होजावे उतना रसमें मिलावे (सीसा सत्त्वसे अलग रहता है) ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

द्वितीयः प्रकारः।

अथवा कठिनं सत्त्वं वज्रमूषान्तरे स्थितम्।
समटंकणसौवीरद्रोणपुष्पीरसेन वै ॥ ७५ ॥

खदिरांगारके ध्मातं ढालयेद्गोघृतेन वै ।
कोमलं जायते सत्त्वं नात्र कार्या विचारणा ॥ ७६ ॥

अथवा कठिन सत्त्वको वज्रमूषामें डालकर खैरके कोयलोंकी आंचमें रख धोंकनीसे धमन करे और सत्त्व बराबर सुहागा, सुरमा, द्रोणपुष्पीका रस और गौका घृत डाले तो सत्त्व अवश्य नम्र होजायगा ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

सत्त्वलोहयोर्मृदुकरणावश्यकता ।

न सत्त्वं कठिने सूते देहे वा क्रमते क्वचित् ।
तस्मात्सत्त्वं च लोहं च मृदुं कृत्वा प्रयोजयेत् ॥ ७७ ॥

सत्त्व और लोहेको नम्र करकेही योजना करनी चाहिये क्योंकि कठिन सत्त्व तथा लोहा न तो पारदमें मिलता और न शरीरमेंही प्रविष्ट होता है ॥ ७७ ॥

कोष्ठिकामितिः ।

षोडशाङ्गुलविस्तीर्णा हस्तमात्रायता शुभा ।
धातुसत्त्वनिपातार्थं कोष्ठिका तात कीर्तिता ॥ ७८ ॥

हे तात ! धातुओंके सत्त्व पातनके लिये जो कोष्ठिका (कठेली) होती है वह सोलह अङ्गुलकी चौडी और एक हाथकी लम्बी उत्तम होती है ॥ ७८ ॥

सत्त्वपातनयोग्यकाष्ठानि ।

वंशखादिरमाधूकबदरीदारुसम्भवैः ।
परिपूर्णा दृढाङ्गारैरथवा तेन कोष्ठकैः ॥
भस्त्रया ज्वालमार्गेण ज्वालयेच्च हुताशनम् ॥ ७९ ॥

सत्त्वपातनके लिये बाँस, खैर, महुवा, बेरी इनकी लकडियोंके पक्के कोयलोंकी आंचमें धोंकनी द्वारा जलानेके मार्गसे अग्निको प्रदीप्त करे ॥ ७९ ॥

द्रव्यादीनां पूर्वपूर्वादुत्तरोत्तरस्य श्रेष्ठत्वकथनम् ।

यस्य द्रव्यस्य यत्सत्त्वं तद्गुणस्तच्छताधिकम् ।
द्रुतिः शतगुणा तस्माद्रसयुक्ता ततोऽधिका ॥ ८० ॥

जिस द्रव्यमें जो गुण होते हैं उसके सत्त्वमें वे सौगुणा अधिक होते हैं, और उससेभी अधिक सौगुणा द्रुतिमें होते हैं, रसके साथ योग करनेसे उससेभी अधिक गुण होते हैं ॥ ८० ॥

ऊनत्रिंशत्तमेऽध्याये ह्युपरत्नानां च वर्णनम् ।
यथावच्च कृतं तात धारणीयं त्वया हृदि ॥ ८१ ॥

हे तात ! इस उंनतीसवें अध्यायमें उपरत्नोंका यथावत् वर्णन करदिया है सो तुमको हृदयसे धारण करना चाहिये ॥ ८१ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
उपरत्नवर्णनं नाम ऊनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः ।

अथातो विषोपविषवर्णनं नाम त्रिंशाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब हम विष और उपविषोंके वर्णनका तीसवाँ अध्याय कथन करेंगे ॥

शृणु तात प्रवक्ष्यामि विषोपविषवर्णनम् ।
येषां विज्ञानमात्रेण सर्वरोगाञ्जयेद्बुधः ॥ १ ॥

गुरु कहने लगे कि, हे तात ! अब विष और उपविषोंका वर्णन श्रवण करो, जिनके विज्ञानमात्रसे बुद्धिमान् मनुष्य सब रोगोंको जीत लेता है ॥ १ ॥

विषोत्पत्तिं तथा स्थानं भेदमाकर्णयाधुना ।
पिशाचाः किन्नराश्चैव मिलित्वा मन्थनोत्सुकाः ॥ २ ॥
एकतो बलिराजश्च ब्रह्माद्याश्च तथैकतः ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नागराजेन वेष्टितम् ॥ ३ ॥
क्षीराब्धिमन्थनं तत्र प्रारब्धं तु यदानघ ।
निर्गतास्तत्र रत्नानि कामधेन्वादयः प्रिया ॥ ४ ॥
अमलाकमलोत्पन्ना पश्चादुच्चैःश्रवास्ततः ।
ऐरावतो महाकायो निर्गतं वत्स चामृतम् ॥ ५ ॥
अतीव मथनाद्वत्स मन्दराघातवेगतः ।
अहिराजश्रमाद्वत्स विषज्वाला विनिर्गता ॥ ६ ॥
ततोतिघोरा सा ज्वाला निमग्ना क्षीरसागरे ।
प्रलयानलसंकाशः क्रुद्धः काल इवोत्कटः ॥ ७ ॥

तं दृष्ट्वा विबुधाः सर्वे दानवाश्च महाबलाः ।
विषण्णवदनाः सद्यः प्राप्ताश्चैव मदान्तिकम् ॥ ८ ॥
ततस्तैः प्रार्थ्यमानोहमपिबं विषमुत्तमम् ।
ततोवशिष्टमभवन्मूलरूपेण तद्विषम् ॥ ९ ॥
पत्ररूपेण कुत्रापि मृत्तिकारूपतः क्वचित् ।
कन्दरूपेण कुत्रापि ह्यष्टादशविधं विषम् ॥ १० ॥

हे वत्स ! अब मैं विषकी उत्पत्ति और उसके स्थान तथा भेदको कहताहूँ तुम सुनो जिस समय मथनोत्सुक दैत्य, सर्प, देवता, सिद्ध, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, पिशाच और किन्नरोंने मिलकर समुद्रको मथा उस समय राजा बलि सब दैत्य राक्षसोंको लेकर एक ओर उद्यत हुआ और दूसरी ओर ब्रह्मादि सब देवता उद्यत हुए हे अनघ वत्स ! उन देवता और दैत्योंने मन्दरपर्वतकी मथानी और वासुकिसर्पकी रस्सी बना उस मथानीमें लपेटकर समुद्र मथनेका प्रारंभ किया तब उससे कामधेनुआदि चौदह रत्न उत्पन्न हुए, लक्ष्मी उच्चैःश्रवा घोडा बडे शरीरवाला ऐरावत हाथी अमृत यह सब रत्न समुद्रके मथनसे निकले हे वत्स ! समुद्रके बहुत मथने और मन्दरपर्वतके आघातजनित वेगसे एवं अहिराज वासुकि सर्पको अधिक श्रम होनेके कारण मुखसे विषकी ज्वाला निकली, तत्पश्चात् वह घोरज्वाला क्षीरसमुद्रमें लीन होगई और फिर वही विषज्वाला प्रलयकालकी अग्निके समान तथा क्रोधयुक्त भयंकर कालके तुल्य हालाहल विष प्रगट हुआ उसको देखकर महाबली देवता और दैत्य उदासीनमुख होते हुए शीघ्रही मेरे निकट आकर स्तुति करनेलगे तदनन्तर स्तुतिको प्राप्त मैंने उस उत्तम विषको पीलिया । उस समय मेरे पीनेसे जो विष शेष रहगया वही किसी स्थानमें तो वृक्षोंके मूलरूप, किसी स्थानमें पत्ररूप, कहीं कन्दरूप और कहीं मृत्तिकारूपसे प्रगट हुआ । इनमेंसे कन्दविषके अठारह भेद हैं ॥ २-१० ॥

कन्दविषभेदाः ।

अष्टादशविधं तात कन्दजं परिकीर्तितम् ।
कालकूटं मयूराख्यं बिन्दुकं सक्तुकं तथा ॥ ११ ॥
वालुकं वत्सनाभं च शङ्खनाभं सुमङ्गलम् ।
शृङ्गी मर्कटकं मुस्तं कर्दमं पुष्करं शिखी ॥
हारिद्रं हरितं चक्रं विषं हालाहलाह्वयम् ॥ १२ ॥

हे तात! कन्दज विषके अठारह भेद हैं, जैसे कालकूट, मयूर, बिन्दुक, सक्तुक, वालुक, वत्सनाभ, शङ्खनाभ, सुमङ्गल, शृङ्गी, मर्कट, मुस्त, कर्दम, पुष्कर, शिखी, हारिद्र, हरित, चक्र और हालाहल ॥ ११ ॥ १२ ॥

कालकूटादिविषपरीक्षा।

घनं रूक्षं च कठिनं भिन्नाञ्जनसमप्रभम्।
कन्दाकारं समाख्यातं कालकूटं महाविषम् ॥ १३ ॥
मयूराभं मयूराख्यं बिन्दुवद्विन्दुकः स्मृतः।
चित्रमुत्पलकन्दाभं सक्तुकं सक्तुवद्भवेत् ॥ १४ ॥
वालुकं वालुकाकारं वत्सनाभं तु पाण्डुरम्।
शंखनाभं शंखवर्णं शुभ्रवर्णं सुमङ्गलम् ॥ १५ ॥
घनं गुरु च निबिडं शृङ्गाकारं तु शृङ्गिकम्।
मर्कटं कपिवर्णाभं मुस्ताकारं तु मुस्तकम् ॥ १६ ॥
कर्दमं कर्दमाकारं सितपीतं च कर्दमम्।
पुष्करं पुष्कराकारं शिखी शिखिशिखाप्रभम् ॥ १७ ॥
हारिद्रकं हरिद्राभं हरितं हरितं स्मृतम्।
चक्राकारं भवेच्चक्रं नीलवर्णं हलाहलम् ॥ १८ ॥
ब्राह्मणः पाण्डुरस्तत्र क्षत्रियो रक्तवर्णकः।
वैश्यः पीतप्रभः शूद्रः कृष्णाभो निन्दितः स्मृतः ॥ १९ ॥
ब्राह्मणो दीयते रोगे क्षत्रियो विषभक्षणे।
वैश्यो व्याधिषु सर्वेषु सर्पदष्टाय शूद्रकम् ॥ २० ॥

जो बिष,--घन, रूक्ष, कठिन, भिन्न अञ्जनके समान नीला रंगसे युक्त और कन्दके आकारके समान हो उसे कालकूट महाविष कहते हैं, मोर पक्षीके रंगके समान जिसका रंग हो उसे मयूर विष कहते हैं, बिन्दुक विष बिन्दुके तुल्य होता है, जो चित्रवर्णसे युक्त कमलकन्दके सदृश हो वह और जो सत्तूके समान हो उसे सक्तुक कहते हैं, वालुक विष वालूके रंगका होता है, वत्सनाभ विष पीलापन लिये हुए सफेद रंगका होता है, शङ्खके रंगका, शङ्खनाभ सफेद रंगका सुमङ्गल, घन, भारी, कठिन और सींगके आकारवाला शृंगी बन्दरके

समान वर्णवाला मर्कट नागरमोथाके तुल्य मुस्तक, कीचके समान मैले तथा सफेद और पीले रंगका कर्दम, नीले कमलके रंगका पुष्कर, मुर्गेके रंगका शिखी, हरिद्राके रंगका हारिद्रक, हरे रंगका हरित, चक्रके आकारका चक्र और नीले रंगका हलाहल होता है । इनमेंसे जो विष पीलापन लिये हुए सफेद रंगका हो उसे ब्राह्मणवर्ण जानना । लाल रंगका क्षात्रियवर्ण, पीले रंगका वैश्यवर्ण और काले रंगका शूद्रवर्ण जानना चाहिये । ब्राह्मणवर्ण विषरोगमें, क्षत्रिय वर्ण विषभक्षणमें, वैश्यवर्ण सब व्याधियोंमें और सर्पके काटनेमें शूद्रवर्णका विष दिया जाता है ॥ १३--२० ॥

मतान्तरम् ।

विषं च गरलं क्ष्वेडं कालकूटं च नामतः ।
अष्टादशविधं ज्ञेयं विषकन्दामिदं बुधैः ॥ २१ ॥
तेष्वष्टौ सौम्यभेदाः स्युर्भक्षणाद् घ्नन्ति मानवम् ।
दशोग्रभेदाः संस्पर्शादाघ्राणाद्वापि मारकः ॥ २२ ॥
सक्तुको मुस्तकश्चैव कौर्मोदारकसार्षपः ।
सैकतो वत्सनाभश्च श्वेतशृंगी तथैव च ॥ २३ ॥
एतानि भेषजकृते विषाण्यष्टौ समाहरेत् ।
जराव्याधिहराणि स्युर्विधिना शीलितानि हि ॥ २४ ॥

विष गरल, क्ष्वेड और कालकूट आदि नामोंसे प्रसिद्ध कन्द विषके बुद्धिमान् वैद्योंने अठारह भेद कहे हैं, उनमेंसे आठ भेद सौम्य हैं इनके भक्षण करनेसेही मनुष्यको मारते हैं (सूंघने और स्पर्श करनेसे नहीं) शेष रहे दश भेद सो उग्र हैं ये उग्र विष स्पर्श तथा सूँघने मात्रसेही मनुष्यको मारनेवाले हैं । सक्तुक, मुस्तक, कौर्म, दारक, सार्षप, सैकत, वत्सनाभ और श्वेतशृङ्गिक ये आठ विष सौम्य हैं औषधियोंमें ग्रहण करनेके योग्य है, विधिपूर्वक सेवन करनेसे बुढापा और व्याधियोंको नाश करते हैं ॥ २१--२४ ॥

चित्रमुत्पलकन्दाभं सुपेष्यं सक्तुवद्भवेत् ।
सक्तुकं तु विजानीयाद्दीर्घरोगं महोत्कटम् ॥ २५ ॥
ह्रस्ववेगं च रोगघ्नं मुस्तकं मुस्तकाकृति ।
कौर्मं तु कच्छपाकारं जानीयात्सुपरीक्षकः ॥ २६ ॥

ज्वरघ्नं दारकं चैव विद्यात्सर्पफणाकृति ।
सर्षपाख्यं सर्षपवद्विज्ञेयं सुविचक्षणैः ॥ २७ ॥
स्थूलसूक्ष्मकणैर्युक्तैः श्वेतपीतैर्विरोमकः ।
ज्वरादिसर्वरोगघ्नः कन्दः सैकत उच्यते ॥ २८ ॥
यः कन्दो गोस्तनाकारो दीर्घः पञ्चाङ्गुलो मतः ।
न स्थूलो गोस्तनादूर्ध्वं द्विविधो वत्सनाभकः ॥ २९ ॥
आशुकारी लघुस्त्यागी शुक्लः कृष्णोऽन्यथा भवेत् ।
प्रयोज्यो रोगहरणे जारणे च रसायने ॥ ३० ॥
गोशृंगो द्विविधः शृंगी श्वेतः स्याद्बहिरन्तरे ।
एतानि सक्तुकादीनि वातरक्ते त्रिदोषके ॥
मेहोन्मादापस्मृतिषु कुष्ठेष च नियोजयेत् ॥ ३१ ॥

जो चित्रवर्ण कमलकन्दके तुल्य और सहजमें ही पीसनेके योग्य हो, सत्तूके समान हो उसे साक्तुक विष जानना चाहिये। जिसका वेग हलका हो, रोगोंको नाश करनेवाला और नागरमोथाके समान आकारवाला हो उसे मुस्तक कहते हैं, कछुवेके समान आकृतिवाले विषको कच्छप जानना। जो सर्पफणके समान आकारवाला और ज्वरका नाशक हो उसे दारक जानना । जो पीले सरसोंके समान हो उसे सर्षप जानना चाहिये। स्थूल और सूक्ष्म कणोंसे युक्त सफेद और पीले रंगवाला हो उसे विरोमक जानना । ज्वर आदि सब प्रकारके रोगोंका नाशक और कन्दरूप हो उसे सैकत कहते हैं । जो कन्द आकृतिमें गौके स्तनके समान, लम्बाईमें पाँच अङ्गुल और मुटाईमें गौके स्तनके समान हो उसे वत्सनाभ कहते हैं, यह दो प्रकारका होता है, काला और सफेद. सफेद वत्सनाभ शीघ्र ही गुण करनेवाला, हलका और दस्तावर है, काले रंगका वत्सनाभ इससे विपरीत गुणोंको करनेवाला है, इसको रोगोंके दूर करने तथा जारण और रसायनमें देना । गोशृङ्ग नामक विषके दो भेद हैं, उनमेंसे एक तो बाहर भीतर सफेद होता है और दूसरा काला । ये पूर्वोक्त सक्तुकादि संज्ञक विष वातरक्त, त्रिदोष, प्रमेह, उन्माद, अपस्मृति (मृगी) और कुष्ठ रोगोंमें देना योग्य है ॥ २९--३१ ॥

विषभेदाः ।

कर्कटं कालकूटं च वत्सनाभं हलाहलम् ।
वालुकं कर्दमं चैव सक्तकं मूलकं तथा ॥ ३२ ॥

सर्षपं शृंगकं वत्स मुस्तकं च महाविषम् ।
हरिद्रकमिति प्रोक्तं त्रयोदशविधं स्मृतम् ॥ ३३ ॥

हे वत्स ! विषके तेरह भेद कहेगए हैं जैसे कर्कट, कालकूट, वत्सनाभ, हलाहल, वालुक, कर्दम, सक्तुक, सर्षप, मूलक, शृङ्गक, मुस्तक, महाविष और हरिद्रक हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

कर्कटादिविषवर्णाः ।

कर्कटं कपिवर्णं स्यात्काकचंचुनिभं पुनः ।
कालकूटं ततो ज्ञेयं वत्सनाभं तु पाण्डुरम् ॥ ३४ ॥
भंगुराकन्दवद्वत्स नीलवर्णं हलाहलम् ।
वालुकं वालुकाभं च कर्दमं कर्दमोपमम् ॥ ३५ ॥
सक्तुकं श्वेतवर्णं स्याच्छुक्लकन्दं तु मूलकम् ।
सर्षपं पीतवर्णं स्याच्छृङ्गकं कृष्णपिंगलम् ॥ ३६ ॥
मुस्ताभं मुस्तकं प्रोक्तं रक्तवर्णं महाविषम् ।
हरिद्रकं पीतवर्णं विषभेदाः प्रकीर्तिताः ॥ ३७ ॥

कर्कट नामक विष बंदरके समान रंगका होता है, कालकूट कौएकी चोंचके तुल्य वर्णसे युक्त होता है, वत्सनाभ पीलापन लिये हुए सफेद रंगका होता है, हलाहल भङ्गुरकन्दके समान नील वर्ण होता है, वालुक वालूके रंगके समान, कर्दम नामक विष कीचके सदृश, सक्तुक सफेद, मूलक सफेद गाँठ, सर्षप पीले रंगका, सींगिया काला और पीला, मुस्तक नागरमोथाके तुल्य, महाविष लाल और हरिद्रक विष हरिद्राके समान पीले रंगका होता है। हे वत्स ! यह विषके भेद (और उनके रंग) कहे हैं ॥ ३४-३७ ॥

मतान्तरम् ।

कालकूटं वत्सनाभः शृङ्गकश्च प्रदीपनः ।
हालाहलो ब्रह्मपुत्रो हारिद्रः सक्तुकस्तथा ॥
सौराष्ट्रक इति प्रोक्ता विषभेदा अमी नव ॥ ३८ ॥

कालकूट, वत्सनाभ, शृङ्गक, प्रदीपन, हालाहल, ब्रह्मपुत्र, हारिद्रक, सक्तुक और सौराष्ट्रक ये विषके नव भेद कहे हैं ॥ ३८ ॥

त्याज्याविषाणि ।

कालकूटस्तथा मेषशृङ्गी दर्दुरकस्तथा ।
हालाहलश्च कर्कोटी ग्रन्थिर्हारिद्रकस्तथा ॥ ३९ ॥
रक्तशृङ्गी केशरश्च यमदंष्ट्रश्च पण्डितैः ।
त्याज्यानीमानि योगेषु विषाणि दश तत्त्वतः ॥ ४० ॥

कालकूट, मेषशृङ्गी, दर्दुरक, हालाहल, कर्कोटी, ग्रन्थि, हारिद्रक, रक्तशृङ्गी, केशर और यमदंष्ट्र इन दश प्रकारके विषोंको औषधयोगोंमें छोडनेके लिये विज्ञ वैद्योंने निषेध किया है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

लक्षणान्तरम् ।

वृत्तः कन्दो भवेत्कृष्णो जम्बीरफलवच्च यः ।
तत्कालकूटं जानीयाद्घ्राणमात्रान्मृतिप्रदम् ॥ ४१ ॥
मेषशृङ्गाकृतिः कन्दो मेषशृङ्गीति कथ्यते ।
दर्दुराकृतिकन्दश्च दर्दुरः कथितस्तु सः ॥ ४२ ॥
गोस्तनाभं फलं गुच्छं तालवृक्षच्छदस्तथा ।
तेजसा यस्य दह्यन्ते समीपस्था द्रुमादयः ॥ ४३ ॥
असौ हालाहलो ज्ञेयो किष्किंधायां हिमालये ।
दक्षिणाब्धितटे चास्ते कौंकणेऽपि च जायते ॥ ४४ ॥
अनलो बहिरन्तश्च हालाहलमुदाहृतम् ।
कर्कोटकाभं कर्कोटं रेखाभ्यन्तरतो मृदु ॥ ४५ ॥
हरिद्राभंगवद्ग्रन्थिः स स्यात्कृष्णोतिभीषणः ।
मूलाग्रे यस्तु वृत्तः स्यादापीतः पीतगर्भकः ॥ ४६ ॥
कञ्चुकाढ्यः स्निग्धपर्वो हारिद्रः सक्तुकन्दकः ।
गोशृङ्गघ्राणमात्रेण नासयासृक्प्रवर्तते ॥ ४७ ॥
कन्दो लघुश्चास्ति मलद्रक्तशृङ्गीति तद्विषम् ।
शुष्कार्द्रवस्तुकिंजल्कमध्ये तत्केशरं विदुः ॥ ४८ ॥
श्वदंष्ट्रारूपसंस्थानं यमदंष्ट्रेति चोच्यते ।

रसायने धातुवादे विषवादे क्वचित्क्वचित् ।
दशैतानि न प्रयुञ्जीत न भैषज्ये न रसायने ॥ ४९ ॥

जो कन्द जँबोरी नींबूके तुल्य गोल और काले रंगसे युक्त तथा सूँघनेमात्रसे ही मृत्यु करनेवाला हो उसे कालकूट विष जानना जो कन्द मेंढाके सींगोंके समान आकृतिवाला हो उसे मेषशृङ्गी विष कहते हैं। जो मेंडकके समान आकारसे युक्त हो उसे दर्दुर विष कहते हैं। जिसके फलोंके गुच्छे दाखके समान हों पत्ते ताडवृक्षके तुल्य हों और निकटमें स्थितवृक्ष जिसके तेजसे जले जाते हों उसे हालाहल विष कहते हैं। यह हालाहल विष किष्किंधा, हिमालय, दक्षिणीय समुद्रके किनारे और कोंकणदेशमें उत्पन्न होता है, इसके बाहर और भीतर विषाग्नि व्याप्त रहती है जो कर्कोट सर्पके समान कान्तिसे युक्त और रेखाओंके सहित हो, भीतर कोमल हो उसे कर्कोटक विष कहते हैं, जो हरीद्राकी गाँठके समान हो और काले रंगसे युक्त हो उसे कृष्णक कहते हैं, यह भयङ्कर है। जो मूलके अग्रभागमें गोल, बाहर भीतर पीला, अधिक छालसे युक्त, और चिकने पत्रोंवाला हो उसे हारिद्र या सक्तुकन्द कहते हैं। जिसके सूँघने मात्रसे नासिकासे रक्त बहने लगे उसे रक्तशृङ्गी विष कहते हैं, यह हलका होता है जो कुछ गीला और कुछ सूखा हो, फूल जिसके केशरके समान हों उसे केशर विष जानना। जो कुत्तेकी डाढके समान आकारवाला हो उसे यमदंष्ट्र जानना इन पूर्वोक्त दश प्रकारके कालकूट इत्यादि विषोंका रसायनरूप धातुवाद और विषवादमें कहीं २ उपयोग करे परन्तु औषध और रसायनमें इनका योग कदापि न करना चाहिये ॥ ४१-४९ ॥

मतान्तरम् ।

वत्सनाभो हरिद्रश्च सक्तुकः सप्रदीपनः ।
सौराष्ट्रिकः शृङ्गिकश्च कालकूटस्तथैव च ॥
हालाहलो ब्रह्मपुत्रो विषभेदा अमी नव ॥ ५० ॥

वत्सनाभ, हरिद्र, सक्तुक, प्रदीपन, सौराष्ट्रिक, शृङ्गिक, कालकूट, हालाहल, और ब्रह्मपुत्र ये विषके नव भेद हैं ॥ ५० ॥

विषपरीक्षा ।

पलाशपत्रवत्पत्रं तद्बीजसदृशं फलम् ।
स्थूलकन्दो भवेत्तस्य प्रभावस्तु महान्स्मृतः ॥ ५१ ॥

सिन्दुवारसदृक्पत्रो वत्सनाभ्याकृतिस्तथा ।
तत्पाश्वन तरोर्वृद्धिर्वत्सनाभः स भाषितः ॥ ५२ ॥
वर्णतो हारितो यः स्याद्दीप्तिमान्दहनप्रभः ।
महामारीकरो घ्राणात्कथितः स प्रदीपनः ॥ ५३ ॥
वर्णतः कपिलो यः स्यात्तथा भवति सारकः ।
ब्रह्मपुत्रः स विज्ञेयो जायते मलयाचले ॥ ५४ ॥

जिसके पत्ते और बीज पलाश (ढाक) के समान हों और कन्द स्थूल हो उसे कालकूट विष कहते हैं, इसका प्रभाव महान् है । जिसके पत्ते सम्हालूके सदृश हों, आकृति वत्सनाभिके तुल्य और निकटमें अन्य वृक्षकी वृद्धि न होवे उसे वत्सनाभ कहते हैं । जिसका रंग हरा हो, दीप्तिसे युक्त तथा अग्निके समान कान्तिवाला और सूँघनेसे महामारी रोगका उत्पन्न करनेवाला हो उसे प्रदीपन विष कहते हैं । जो रंगमें कपिल हो, और सारक अर्थात् दस्तावर हो उसे ब्रह्मपुत्र विष कहते हैं । यह मलयाचलमें उत्पन्न होताहै ॥ ५१--५४ ॥

वर्णभेदेन विषभेदाः ।

चतुर्धा वर्णभेदेन विषं ज्ञेयं मनीषिभिः ।
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्राः श्वेतरक्ताश्च पीतकाः ।
कृष्णवर्णः क्रमाज्ज्ञेयो वर्णानामानुपूर्वशः ॥ ५५ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंके भेदसे विष भी चार प्रकारका होताहै, इनमेंसे ब्राह्मण वर्णका विष सफेद, क्षत्रियवर्णका लाल, वैश्यवर्णका पीला और शूद्रवर्णका विष काले रंगका होताहै ॥ ५५ ॥

मारणादौ ग्राह्यविषाणि ।

मारणे कृष्णवर्णः स्याद्रक्तस्तु रसकर्मणि ।
पीतवर्णः क्षुद्रकार्ये श्वेतवर्णो रसायने ॥ ५६ ॥

मारणकर्ममें काले रंगका विष ग्रहण करना चाहिये । रसकर्ममें लाल रंगका, क्षुद्रकार्योंमें पीले रंगका और रसायनमें सफेद रंगका विष लेना चाहिये ॥ ५६ ॥

मतान्तरम् ।

ब्राह्मणः पाण्डुरस्तेषु क्षत्रियो रक्तवर्णकः ।
वैश्यः पीतप्रभः कृष्णवर्णश्च शूद्र उच्यते ॥ ५७ ॥

ब्राह्मणो दीयते रोगे क्षत्रियो विषभक्षणे ।
वैश्यो व्याधिषु सर्वेषु सर्पदष्टे च शूद्रकः ॥ ५८ ॥

ब्राह्मणवर्ण विष कुछ सफेदी लियेहुए पीले रंगका होताहै, क्षत्रियवर्ण लाल, वैश्यवर्ण पीला और शूद्र वर्ण विष काले रंगका होताहै । इनमेंसे ब्राह्मण विष रोगोंमें दिया जाताहै, क्षत्रियवर्ण विष विषभक्षणमें, वैश्यवर्ण समस्त व्याधियोंमें और शूद्रवर्ण विष सर्पके काटने पर दिया जाता है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अन्यच्च ।

रसायने विषं विप्रो देहपुष्टौ तु बाहुजः ।
कुष्ठनाशे प्रयुञ्जीत वैश्यः शूद्रस्तु घातकः ॥ ५९ ॥

रसायनमें ब्राह्मण विष, शरीरपुष्टिमें क्षत्रियविष, कुष्ठरोगके नाशमें वैश्य विष और मारणकर्ममें शूद्र विष प्रयुक्त करे ॥ ५९ ॥

ग्राह्यविषम् ।

उद्भूतफलपाकेन नवं स्निग्धं घनं गुरु ।
अव्यापन्नं विषहैररवातातपशोषितम् ॥ ६० ॥

विषको फल पकनेके अनन्तर लेना चाहिये । जो विष नवीन, चिकना, घना, भारी, विष हरनेवाले पदार्थोंसे अदूषित और वायु तथा धूपसे शोषित न हो वह कार्यमें ग्रहण करनेके योग्य है ॥ ६० ॥

विषशोधनविधिः ।

विषभागांश्च कणवत्स्थूलान्कृत्वा तु भाजने ।
तत्र गोमूत्रकं क्षिप्त्वा प्रत्यहं नित्यनूतनम् ॥ ६१ ॥
शोषयेत्रिदिनादूर्ध्वं कृत्वा तीव्रातपे ततः ।
प्रयोगेषु प्रयुञ्जीत भागमानेन तद्विषम् ॥ ६२ ॥

विषके छोटे छोटे टुकडे करके मिट्टीके पात्रमें छोडकर गौका मूत्र भरदेवे । दूसरे दिन उस मूत्रको निकाल कर नवीन गोमूत्र भरे, तीसरे दिवस फिर भी पुराने मूत्रको निकाल नया गोमूत्र भरदेवे और फिर चौथे दिन उस विषको गोमूत्रसे अलग निकालकर तेज धूपमें सुखालेवे इस शुद्ध विषको प्रयोगोंमें भागके प्रमाणसे छोडे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

द्वितीयः प्रकारः।

रक्तसर्षपतैलेन लिप्ते वाससि धारितम्।
सक्तुकं मुस्तकं शृङ्गी वालुकासर्षपाह्वयम् ॥ ६३ ॥
वत्सनाभं कर्कटं च कालकूटादिकं ततः।
न जात्वन्यत्प्रयोक्तव्यं विषे तीक्ष्णे च वारिते ॥ ६४ ॥

सक्तुक, मुस्तक, सिंगिया, वालुक, सर्षप, वत्सनाभ, कर्कट और कालकूट इनमेंसे जिसको शुद्ध करना हो उसे लाल सरसोंके तेलसे लेप कियेहुए कपडेमें रखकर सुखालेवे तो वह शुद्ध होजायगा। तीक्ष्ण विषका अन्यथा देना निषेध किया गया है इस कारण अन्य प्रकारसे न देना चाहिये ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

तृतीयः प्रकारः।

विषभागांश्च कणवत्स्थूलान्कृत्वा तु स्वेदयेत्।
दुग्धे च घटिकाः पञ्च शुद्धिमायाति तद्विषम् ॥ ६५ ॥

कणोंके समान विषके मोटे २ टुकडे करके पाँच घटी पर्यन्त गौके दुग्धमें स्वेदन करे तो वे शुद्ध होजाते हैं ॥ ६५ ॥

चतुर्थः प्रकारः।

खण्डीकृत्य विषं वस्त्रे परिबद्धं तु दोलया।
अजापयसि संस्विन्नं यामतः शुद्धिमाप्नुयात् ॥ ६६ ॥
विषग्रन्थिं मले न्यस्य माहिषे दृढमुद्रितम्।
करीषाग्नौ पचेद्यामं वस्त्रपूतं विषं शुचि ॥ ६७ ॥

विषके छोटे छोटे टुकडे करके वस्त्रमें बाँधकर पोटली बनालेवे और उस पोटलीको बकरीके दूधमें दोलायन्त्रके द्वारा एक प्रहर तक स्वेदन करे तो वह विष शुद्ध होवे। अथवा बिषको भैंसके गोबरके भीतर रखकर जंगली कंडोंकी आँचमें एक प्रहर पर्यन्त पकावे और पीछे उसे कपडेसे पवित्र करे तो वह शुद्ध होजाता है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

पञ्चमः प्रकारः।

कणशो वत्सनाभं च कृत्वा बद्धा च वाससि।
दोलायन्त्रे जलक्षीरे प्रहराच्छुद्धिमृच्छति ॥
अजादुग्धे भावितस्तु गव्यक्षीरेण शोधयेत् ॥ ६८ ॥

वत्सनाभ (वच्छनाग) विषके छोटे २ टुकडे करके वस्त्रमें रखकर पोटली बनालेवे और उस पोटलीको जल मिले हुए दूधमें दोलायन्त्रके द्वारा एक प्रहर पर्यन्त पकावे तो शुद्ध होवे । अथवा बकरीके दूधमें भावना देकर गौके दुग्धमें शुद्ध करे ॥ ६८ ॥

विषमारणविधिः ।

समटङ्कणसंपिष्टं तद्विषं मृतमुच्यते ।
योजयेत्सर्वरोगेषु न विकारं करोति हि ॥ ६९ ॥

जितना विष हो उतना ही उसमें सुहागा मिलाकर घोटे तो वह मरणको प्राप्त होता है, इसे सब रोगोंमें देवे क्योंकि यह विकार नहीं करता ॥ ६९ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

तुल्येन टङ्कणेनैव द्विगुणेनोषणे च ।
विषं संयोजितं शुद्धं मृतं भवति सर्वथा ॥ ७० ॥

जितना विष हो उतना सुहागा और विषसे दुगनी काली मिर्च लेकर सबको मिलावे और घोटे तो वह शुद्ध विष मृत होता है ॥ ७० ॥

विषगुणाः ।

विषं रसायनं बल्यं वातश्लेष्मविकारनुत् ।
कटुतिक्तं कषायं च मदकारि सुखप्रदम् ॥ ७१ ॥
व्यवायि रुधिरोद्दाहि कुष्ठवातास्रनाशनम् ।
अग्निमान्द्यश्वासकासप्लीहोदरभगन्दरम् ॥
गुल्मपाण्डुव्रणार्शांसि नाशयेद्विधिसेवितम् ॥७२ ॥

विष रसायन बलकर्ता, वातकफविकारनाशक, कडुवा, तीखा, कसैला, मदकर्ता, सुखप्रद, व्यवायि (पहले सर्व शरीरमें व्याप्त होकर पीछे पचे)। रुधिरोद्दाहक कुष्ठ, वातरक्तनाशक, अग्निमान्द्य, श्वास, कास, प्लीहा, उदररोग, भगन्दर, गुल्म रोग, पाण्डुरोग, व्रण ये सब विधिपूर्वक विषके सेवन करनेसे नष्ट होते हैं॥७१-७२॥

गुणान्तराणि ।

विषं प्राणहरं प्रोक्तं व्यवायि च विकाशि च ।
आग्नेयं वातकफहृद्योगवाहि मदावहम् ॥ ७३ ॥

तदेव युक्तियुक्तं तु प्राणदायि रसायनम्।
पथ्याशिनां त्रिदोषघ्नं बृंहणं वीर्यवर्द्धनम् ॥ ७४ ॥
ये दुर्गुणा विषेऽशुद्धे ते स्युर्हीनविशोधनात्।
तस्माद्विषं प्रयोगेषु शोधयित्वा प्रयोजयेत् ॥ ७५ ॥

विष प्राणनाशक, व्यवायि, विकाशि अर्थात् ओजको सुखाकर सन्धिबन्धनोंको ढीला करनेवाला, आग्नेय, वातकफनाशक, योगवाही और मदकर्ता है। विधिपूर्वक सेवन करनेसे यह विष प्राणदाता और रसायन है, पथ्याशी मनुष्योंके त्रिदोषको नाश करता है, बृंहण और शुक्रवर्द्धक है। विना शोधे विषमें जो दुष्ट गुण है वही दुर्गुण हैं हीनशुद्ध विषमें भी जानना इसी कारण वैद्यको योग्य है कि, विषको अच्छे प्रकार शुद्ध करके औषधप्रयोगोंमें युक्त करे॥७३-७५॥

विषसेवनविधिः।

नानारसौषधैर्ये तु दुष्टा यान्तीह नो गदाः।
ते नश्यंति विषे दत्ते शीघ्रं वातकफोद्भवाः ॥ ७६ ॥
शरद्ग्रीष्मवसन्ते च वर्षासु च प्रदापयेत्।
हेमन्ते शिशिरे चैव विधिना मात्रयार्पयेत् ॥ ७७ ॥
चतुर्मासैर्हरेद्रोगान्कुष्ठलूतादिकानपि।
दातव्यं सर्वरोगेषु घृताशिनि हिताशिनि ॥ ७८ ॥
क्षीराशिनि प्रयोक्तव्यं रसायनरतो नरः।
ब्रह्मचर्यविधानं हि विषकल्पे समाचरेत् ॥ ७९ ॥
पथ्ये स्वस्थमना भूत्वा तदा सिद्धिर्न संशयः।
आचार्येण तु भोक्तव्यं शिष्यप्रत्ययकारकम् ॥ ८० ॥
विषे शुद्धिर्हि तदपि मात्रया नान्यथा भवेत्।
सर्वरोगप्रशमनं हृष्टिपुष्टिकरं विषम् ॥ ८१ ॥

जो वात और कफके विकारसे उत्पन्न हुए दुष्ट रोग अनेक प्रकारके औषधोंके सेवनसे भी नहीं दूर होते वे विषके सेवन करनेसे शीघ्र ही नष्ट होजाते हैं। शरद्, ग्रीष्म, वसन्त, वर्षा, हेमन्त, शिशिर इन छहों ऋतुओंमें विधिपूर्वक मात्रासे रोगीके लिये विष देवे। चार मास पर्यन्त सेवन करनेसे कुष्ठ और

लूतादि रोगोंको भी नाश करता है । घी, दूध तथा अन्य भी जो हितकारी पदार्थ हैं उनका सेवन करनेवाले रोगीके लिये सब रोगोंमें यह विष देने योग्य है. इसका सेवन करनेवाला मनुष्य ब्रह्मचर्यके नियमका पालन करे और स्वस्थचित्त होकर पथ्यसेवनमें ही तत्पर रहे तो निस्सन्देह विषकल्पमें सिद्धि होवे, शिष्यकी शङ्का दूर करनेके लिये वह विष वैद्यसे स्वयं ही सेवन करने योग्य है, शुद्ध किये विषकी भी मात्रा अन्यथा न होना चाहिये यह विष समस्त रोगोंको शान्त करनेवाला और दृष्टिको पुष्ट करनेवाला है ॥ ७९-८१ ॥

विषमात्रामितिः ।

प्रथमे सार्षपी मात्रा द्वितीये सर्षपद्वयम् ।
तृतीये च चतुर्थे च पञ्चमे दिवसे तथा ॥ ८२ ॥
षष्ठे च सप्तमे चैव क्रमवृद्ध्या विवर्द्धयेत् ।
सप्तसर्षपमात्रेण प्रथमं सप्तकं नयेत् ॥ ८३ ॥
एवं मात्राविषं देयं तृतीये सप्तमे क्रमात् ।
वृद्ध्यायहानि प्रदातव्यं चतुर्थे सप्तके तथा ॥ ८४ ॥
एवं सप्त समायाते परां मात्रां भिषग्वरैः ।
स्थिरीकुर्याद्यथेच्छं तु ततस्त्यागं तु कारयेत् ॥ ८५ ॥
सेवनक्रममेतत्तु विषकल्पस्तु ईरितः ।
एवं मात्रा सेवने स्याद्गुञ्जामात्रं तु कुष्ठवान् ॥ ८६ ॥
एवमेवाष्टपर्यन्तं परा मात्राधिका मता ।
विधिना मात्रया काले भवेत्पथ्याशिनां नृणाम् ॥ ८७ ॥

पहले दिवस सरसोंके समान विषकी मात्रा ग्रहण करनी चाहिये, दूसरे दिवस दो सरसोंके समान, तीसरे दिन तीन, चौथे दिन चार, पाँचवें दिन पाँच, छठवें दिन छः, इसी प्रकार प्रतिदिन एक एक बढाकर सातवें दिन सात सरसोंके बराबर विषकी मात्रा लेनी योग्य है । इस प्रकार प्रथम सप्ताहको सात सर्षप प्रमाण मात्रासे व्यतीत करे, फिर द्वितीय और तृतीय सप्ताहमें सात सरसोंके बराबर विषकी मात्रा लेवे । चौथे सप्ताहमें फिर वृद्धिसे सेवन करे जब ऐसे क्रमवृद्धिसे उनचास दिन व्यतीत होजावें तब परम मात्रा होजाती है, जबतक सेवन करनेकी आवश्यकता होवे तबतक परममात्रासे इसका सेवन करता रहे और फिर क्रमसे घटा देवे । यह सेवनक्रम विषकल्प कहा है, कुष्ठरोगी मनुष्य ऐसे एक रत्ती

मात्राके सेवनसे रोगरहित होजाता है, ऐसे आठ मात्रा पर्यन्त परम अधिक मात्रा मानी है । पथ्य भोजन करनेवाले मनुष्य उचित मात्रासे ठीक समयमें विधिपूर्वक सेवन करे तो उन्हें नीरोगता प्राप्त होजाती है ॥ ८२-८७ ॥

अन्यच्च ।

एकाष्टकं भवेद्यावदभ्यस्तं तिलमात्रया ।
सर्वरोगहरं नृणां जायते शोधितं विषम् ॥ ८८ ॥

पहले आठ दिन पर्यन्त शुद्ध विषको तिलके समान मात्रासे सेवन करे और पीछे प्रतिदिन एक २ तिल वृद्धि करता जावे । इस प्रकार शोधन किया हुआ यह विष मनुष्योंके सर्व रोगोंको हरलेता है ॥ ८८ ॥

विषानुपानानि ।

शिखिकर्किरसोपेतं विषमज्वरजिद्विषम् ।
मधुयष्ट्याह्वयं रास्ना सेव्यमुत्पलकं दलम् ॥ ८९ ॥
तन्दुलोदकपीतातिरक्तपित्तस्य भेषजम् ।
रास्नाविडङ्गत्रिफलादेवदारुकटुत्रयम् ॥ ९० ॥
पद्मकं क्षौद्रममृता विषं च श्वासकासजित् ।
सितारसाविषक्षीरप्रवालमधुभिः कृता ॥ ९१ ॥
वान्तिं निहन्ति गुटिका मनुजानां न संशयः ।
मधुमद्यनिशारेणुसैन्धवैः कटुत्वग्युतम् ॥
च्यवनप्राशनोपेतं विषं क्षपयति क्षयम् ॥ ९२ ॥

शुद्ध विषको शुद्ध पारा और शुद्ध नीलाथोथेके साथ नित्य सेवन करनेसे ज्वर दूर होताहै, मुलहटी, रास्ना, कमलगट्टेका चूर्ण और चावलोंके पानीके साथ रक्त-पित्तको, रास्ना, वायविडङ्ग, त्रिफला, देवदारु, त्रिकटु, कमलगट्टा, सहत और गुडूची (गिलोय) के रसके साथ सेवन करे तो श्वास तथा कास रोगको दूर करता है । मिश्री, पारा, सिंगिया विष, दूध, मूँगेकी भस्म और सहतके साथ बनाईहुई गुटिका वमनका नाश करती है, सहत, मद्य, हलदी, पित्तपापडेका रस, सैन्धव नमक, कुडाकी छाल इनके संग वा च्यवनप्राश अवलेहके संग विषका सेवन करे तो क्षयी रोगको नाश करताहै ॥ ८९-९२ ॥

विजयापिप्पलीमूलापिप्पलीद्वयचित्रकैः ।
पुष्करह्वयशटीद्राक्षायवानीक्षारदीप्यकैः ॥ ९३ ॥

सितायष्टीद्विबृहतीसैन्धवैः पालकैः पचेत् ।
सविषार्द्धपलैः प्रस्थं घृताक्तं जीर्णभुक्पिबेत् ॥ ९४ ॥
दुर्नाममेहगुल्मार्शस्तिमिरक्रिमिपाण्डुकान् ।
गलग्रहग्रहोन्मादकुष्ठानि च नियच्छति ॥ ९५ ॥
मुस्तावत्सकपाठाग्निव्योषप्रतिविषाविषम् ।
धातकीमोचनिर्यासं चूतास्थिग्रहणीहरम् ॥ ९६ ॥
कृच्छ्रघ्नविषपथ्याग्निदन्तीद्राक्षानिशाविषाः ।
शिलाजतु विषं त्र्यूषमुदावर्ताश्मरीहरम् ॥ ९७ ॥

भाँग, पीपलामूल, छोटी पीपल, गजपीपल, चित्रक, पुहकरमूल, कचूर, दाख, अजवायन, जवाखार, अजमोद, मिश्री, मुलहटी, दोनों कटेरी, सेंधानमक, पालक और विष इन प्रत्येक औषधियोंको आधा २ पल लेकर चूर्ण बनावे और एक प्रस्थ (६४ तोला) घृतमें पकावे, तत्पश्चात् योग्य मात्रासे नित्य इसका सेवन करे, जब यह विष पचजावे तब ऊपरसे औरभी अपने सामर्थ्यके अनुसार उत्तम घृतका पान करे तो बवासीर, प्रमेह, गोला, तिमिर, कृमिरोग, पाण्डु; गलग्रह, ग्रहव्याधि, उन्माद और कुष्ठ रोग दूर होते हैं । नागरमोथा, कुडाकी छाल, पाढ, चित्रक, व्योष (सोंठ, मिर्च, पीपल), अतीस, सिंगिया विष, धायके फूल, मोचरस और आमकी गुठली इन सबको विषके साथ मिलाकर सेवन करनेसे संग्रहणी रोग दूर होता है । हरड, चित्रक, जमालगोटा, दाख, अतीस और अडूसके साथ विष सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र दूर होता है । शिलाजीत और त्रिकुटाके संग विषका सेवन करनेसे उदावर्त और पथरीरोग नष्ट होते हैं॥९३-९७॥

गोमूत्रक्षारसिन्धूत्थविषपाषाणभेदकम् ।
वज्रवद्दारयत्येतदेकतः पीतमश्मरीम् ॥ ९८ ॥
त्रिफलासर्जिकाक्षारैर्विषं गुल्मप्रभेदनम् ।
पिप्पलीपिप्पलीमूलं विषं शूलहरं परम् ॥ ९९ ॥
विषं द्रवन्ती मधुकं द्राक्षा रास्ना सठी.कणाः ।
विषवेल्लमिशिक्षीरं गुल्मप्लीहाविबर्हणम् ॥
प्लीहोदरघ्नं पयसा शताह्वाक्रमिजिद्विषम् ॥ १०० ॥

गोमूत्र, क्षार, सेंधानमक, पाषाणभेद इनके साथ विषका सेवन करे तो जैसे वज्र पर्वतोंको विदीर्ण करदेता है वैसेही विष पथरीको दूर करता है । त्रिफला

और सज्जीखारके साथ विष खानेसे गुल्मरोगका नाश होता है। पीपल और पीपलामूलके साथ शूल, द्रवन्ती, महुआ, दाख, रास्ना, कचूर, पीपल, वायविडंग, सौंफ और दूधके साथ सेवन करनेसे गुल्म और प्लीहा रोग नष्ट होजाते हैं। दूधके साथ विषका पान करनेसे प्लीहा (तापातिल्ली) और सौंफके साथ कृमिरोगको दूर करता है ॥ ९८--१०० ॥

वायसीमूलनिक्काथपीतं कुष्ठहरं विषम् ।
पयसाराजवृक्षत्वक्त्रायन्तिवाकुचीबला ॥ १०१ ॥
प्लीहघ्नीवाकुचायां च विषं क्काथेन कुष्ठजित् ।
अवल्गुजैलकजयाविडक्षारद्वयं विषम् ॥ १०२ ॥
लेपः ससैन्धवः पिष्टो वारिणा कुष्ठनाशनः ।
चित्रकार्कजहस्तिपिप्पलीवाकुचीविषैः ॥ १०३ ॥
सचार्द्रकैलजगजकरञ्जफलसैन्धवैः ।
सव्योषस्वर्जिकाक्षारयवक्षारनिशाद्वयैः ॥ १०४ ॥
पानाद्यैः शीलितं कुष्ठदुष्टनाडीव्रणापची ।
विषं भल्लातकीद्वीपिगुञ्जानिम्बफलैर्जयेत् ॥ १०५ ॥
लेपोम्लपित्तैश्श्वित्राणि पुण्डरीकं च दारुणम् ।
ककुन्दरारुष्कद्वीपिस्पृक्कापत्रैलवालुकम् ॥ १०६ ॥
पिष्टं खादिरतोयेन त्रिरात्रमुषितं पिबेत् ।
श्वित्रे विषेण संघृष्टं ततः स्फोटान्किलासजान् ॥ १०७ ॥
कङ्कणेन विभिन्द्याशु लेपैर्लिम्पेच्च कोष्टकैः ।
अथवा करवीरार्कमूलवाकुचिकाविषैः ॥ १०८ ॥
बस्ताम्बुपिष्टैः सद्वीपिद्वीपिपिप्पल्यरुष्करैः ।
लाक्षासुरी च मञ्जिष्ठा कुष्ठपद्मकशारिवाः ॥ १०९ ॥
गुञ्जा मही कुरबको लाङ्गली वज्रकन्दकः ।
वाराहीकन्दकास्फोतसमाह्वो गिरिकर्णिका ॥ ११० ॥
अर्कोश्वमारयोर्मूलं नागपुष्पं नतं निशे ।
दन्तीविषं हस्तिविषं पिप्पल्यो मरिचानि च ॥ १११ ॥

तत्तैलं कटुतैलं वा श्वित्रस्याभ्यञ्जनं पचेत् ।
सवर्णकरणं श्रेष्ठमास्तिक्यस्य वचो यथा ॥ ११२ ॥

मकोयकी जडके काथके संग विषका पान करनेसे कुष्ठरोगको, दूध, अमलतासकी छाल, त्रायमाणा, बावची और खैरटीके साथ सेवन करनेसे प्लीहाको नष्ट करता है और सुहागा सहित विषका पान करनेसे कुष्ठ दूर होय । एलुवा, सज्जीखार, जवाखार, सैन्धवनमक इनके साथ विष मिला कुछ जल छोडकर बाँटलेवे और कोढपर लेप करे तो वह नष्ट होजाता है, चित्रक, आक, गजपीपल, बावची, वच्छनागविष, अदरख, एलुआ, नागकेशर, कंजका, फल, सैन्धव नमक, त्रिकटु, सज्जीखार, जवाखार, हलदी और दारुहलदीके साथ विषका पानादि द्वारा सेवन करनेने कुष्ठ, नाडीव्रण और अपची रोग दूर होवे, वच्छनाग विष, भिलावा, गजपीपल, घूँघची और नीमके फल इनका लेप अम्लपित्त, चित्रकुष्ठ और दारुण पुण्डरीकको दूर करता है । कुँदरू भिलावा, गजपीपल, सफेद लज्जालु, पत्रज, एलुवा इन सबको खैरके पानीके साथ बाँटकर तीन दिन पर्यन्त रखछोडे तदनन्तर विष छोडकर पान करे तो कुष्ठरोग दूर होवे । और यदि विष मिलाकर कुष्ठजनित फोडोंपर लेप करे तो उनका नाश भी होवे । कंकण नामक शस्त्रसे कुष्ठको भेद करके बहुत शीघ्रही उक्त औषधको लेप करे अथवा कनेर, आककी जड, बावची, बच्छनाग विष, चित्रक, गजपीपल और भिलावेको बकरीके मूत्रमें बाँटकर लेप करे तो कुष्ठका नाश होवे अथवा लाख, राई, मंजीठ, कूठ, पद्माख, सारिवा, घूँघची, कुटकी, कुरवक, कलियारी, थूहर, वाराहीकन्द, कोविदार, सतवन, इन्द्रजौ, आक, कनेर इनकी जड, नागकेशर तगर हलदी, दारु हलदी, दन्ती, वच्छनाग विष, हस्तिविष, पीपल, मिरच इन सब औषधियोंके तेल अथवा इनके द्वारा सिद्ध किये हुए सरसोंके तेलका लेप कोढपर करे तो समान रंग होजावे यह सवर्ण करनेका प्रयोग बहुत उत्तम है और आस्तिक्यका कहाहुआ है ॥ १०१-११२ ॥

एरण्डतैलत्रिफलागोमूत्रं चित्रकं विषम् ।
सर्पिषा सहितं पीतं वातार्तित्वमपोहति ॥ ११३ ॥
कोरकं चीरनिष्काथैर्लाङ्गलीविषसर्षपैः ।
गन्धकं कोलमरिचैः सस्नुक्क्षीरैर्विपाचितम् ॥ ११४ ॥
जयेज्ज्योतिष्मतीतैलमनलत्वग्गदानपि ।
स्वरसं बीजपूरस्य वचाब्राह्मीरसं घृतम् ॥ ११५ ॥

वन्ध्या पिबति सविषं सत्पुत्रैः परिवार्यते ।
वीरालाङ्गलिकादन्तिविषपाषाणभेदकैः ॥ ११६ ॥
प्रयोज्य मूढगर्भाणां प्रलेपो गर्भमोचनः ।
देवदारु विषं सर्पिर्गोमूत्रं कण्टकारिका ॥
वचा वाक्स्खलनं हन्ति बुद्धेश्च परिवर्द्धनम् ॥ ११७ ॥

एरण्डका तेल, त्रिफला, गोमूत्र, चित्रक और विषको घृतके साथ पान करे तो बादीसे उत्पन्न हुई पीडाको नाश करताहै । ग्वारपाठा, सीसम, कलियारी, बच्छनाग विष, सरसों, गन्धक, कोल, मिरच, थूहरका दूध इन सबको मालकाँगनीके तेलमें पकावे और उसका मर्दन करे तो वातविकारसे उत्पन्न हुए त्वचाके रोग दूर होते हैं । बिजौरा नीम्बूका रस, वच, ब्राह्मीका रस, नवीन घृत इनमें विषको मिलाकर सेवन करनेसे वन्ध्या स्त्री भी गर्भवती होती है । सफेद कनेर, कालियारी, दन्ती, वच्छनाग विष और पाषाणभेद इनका लेप मूढगर्भको मोचन करता है । देवदारु, बच्छनाग विष, घृत, गोमूत्र कटेली और वच इनके सेवन करनेसे जिह्वाके सम्पूर्ण रोग दूर होते हैं और बुद्धिकी वृद्धि होती है॥११३--११७॥

विषं सर्पिः सिता क्षौद्रं तिमिरापहमञ्जनम् ।
विषं चैकमजाक्षीरकल्पितं घृतधूपितम् ॥ ११८ ॥
विषं धात्रीफलरस रसकृत्परिवारितम् ।
अञ्जनं शंखसहितं प्रगाढं तिमिरं जयेत् ॥ ११९ ॥
विषमिन्द्रायुधं स्तन्ये घृष्टं काचे तदञ्जनम् ।
बीजपूररसैर्घृष्टं विषं तद्वत्सितान्वितम् ॥ १२० ॥
विषं मागधिका द्वे च निशे काचघ्नमञ्जनम् ।
शुक्रार्म च विषं कृष्णायुक्तं गोमूत्रभावितम् ॥ १२१ ॥

घी, मिश्री और शहदमें विषको घिसकर लगावे तो तिमिररोग नष्ट होवे । अथवा बकरीके दूधमें विषको घिसकर नेत्रोंमें लगावे और घृतकी धूनी देवे तो तिमिर रोग दूर होवे । शंखकी नाभिसहित विषको आँवलेके रसकी अनेक भावना देकर अंजन बनावे और उसे नेत्रोंमें लगावे तो घोर तिमिर रोगकोभी नाश करे । स्त्रीके दुग्धमें विष और हीराको घिसकर नेत्रोंमें लगावे तो काच रोग नष्ट होवे । बिजौरा नीम्बूके रसमें मिश्री और विषको मिलाकर नेत्रोंमें लगावे तो विषका विकार दूर होवे । विष, पीपल, दोनों हलदी इनका अंजन

बनाकर नेत्रोंमें लगावे तो काचरोग दूर होवे। पीपल और विषको गोमूत्रमें भावना देकर नेत्रोंमें लगावे तो शुक्लार्म रोग नष्ट होजाता है ॥ ११८--१२१ ॥

समुद्रफेनस्फटिकीकुरुविन्दरसाञ्जनम् ।
कूर्मपृष्ठं च तुल्यानि तेभ्योर्द्धांशमनःशिला ॥ १२२ ॥
अर्द्धमानानि मरिचसैन्धवायोरजांसि च ॥
अथो यथोत्तरं दद्यादयसा च समं विषम् ॥ १२३ ॥
आगारधूमसहितैर्वत्समूत्रेण कल्कितैः ।
भल्लातकाग्निसम्पाकाविर्षैगामूत्रपेषितैः ॥ १२४ ॥
लेपो विचर्चिकादद्रुरसिकाकिटिभापहः ।
सम्पाकपत्रं त्वङ्मूलं विषं तक्रं चतुर्गुणम् ॥ १२५ ॥
विषतुम्बुरुबीजानि वाजिगन्धाम्लवेतसम् ।
हरिद्रा वायसी रास्ना हरितालं मनःशिला ॥ १२६ ॥
पटोलनिम्बपत्राणि कणा गन्धकसैन्धवम् ।
विषं दारु शिरीषास्थि तक्रं लेपेन कुष्ठजित् ॥ १२७ ॥
करञ्जकरवीरार्कमालतीरक्तचन्दनैः ।
आस्फोताकुष्ठमञ्जिष्ठासप्तच्छदनिशान्तैः ॥ १२८ ॥
सिन्धुवारवचाक्ष्वेलैर्गवां मूत्रे चतुर्गुणे ।
सिद्धं कुष्ठहरं तैलदुष्टव्रणविशोधनम् ॥ १२९ ॥
कुष्ठाश्वमृगभृङ्गार्कमूलस्नुक्क्षीरसैन्धवैः ।
तैलं सिद्धं विषावाप्यमभ्यङ्गात्कुष्ठजित्परम् ॥ १३० ॥

समुद्रफेन, स्फटिक, कुरुविंद, रसांजन और कूर्मपृष्ठ ये पाचों समान भाग सबसे आधा भाग, मनसिल मिरच, लोहरज ये दोनों आधा २ भाग और लोहके समान विष ले गृहधूम और वत्समूत्रके साथ कल्क करे और मिलावे और अग्निसंपाक विषसे गोमूत्रमें पीसकर लेप बनावे और देहपर लगावे तो विचर्चिका दद्रु रसीका, किठिभ ये सब दूर होते हैं। अमलतासके पत्त, छाल और जडमें विषको मिलावे और पश्चात् चौगुनी छाछ डालकर लेप बनालेवे । अथवा विष, तुम्बुरुबीज, असगंध, अम्लबेंत, हलदी, वायसी, रहसन, हरिताल, मनशिल, पटोलपत्र, नींबके

पत्ते, पीपल, गंधक, सैन्धव इन सबको छाँछमें मिलाकर लेप करे तो कुष्ठरोगका नाश होवे । करंज, कनेर, आक, मालतीके फूल, लाल चन्दन, सफेद कोयल, कूठ, मंजीठ, सतवन, हलदी, तगर, सम्हालु, वच और विषको चौगुने गोमूत्रमें पकावे और पश्चात् तेल डालकर विधिपूर्वक पकालेवे । यह तेल कुष्ठरोगनाशक और बिगडे हुए घावका शुद्ध करनेवाला है । कूठ, कनेर, कस्तूरी, भाँगरा, आककी जड, थूहरका दूध, सैन्धव नमक, कमलगट्टा और विष मिलाकर यथाविधिसे तेल सिद्ध करे । इस तेलकी मालिश करनेसे कुष्ठरोग दूर होताहै ॥ १२२-१३०॥

भद्रश्रीदारुमरिचानिशाद्वयत्रिवृद्घनैः ।
गोमूत्रपिष्टैः सहसा विषस्यार्द्धपलेन च ॥ १३१ ॥
ब्राह्मीरसार्कजक्षीरगोशकृद्रससंयुतम् ।
प्रस्थं सर्षपतैलस्य सिद्धिमाशु व्यपोहति ॥ १३२ ॥
रसक्रियेयमधुना पिल्लशुक्लार्मकाचनुत् ।
अभीक्ष्णं शीततोयेन सिञ्चेन्नेत्रे विषाञ्जिते ॥ १३३ ॥
रक्तचन्दनमञ्जिष्ठातिन्तिडीफलसूतकैः ।
अयसा लोध्रकतकनिशाशङ्खकणोषणैः ॥ १३४ ॥
मनःशिलाकरञ्जाक्षबीजोग्राफेनसैन्धवैः ।
अजाक्षीरे समविषैर्वर्तयो विहिता हिताः ॥
शुल्कार्ममांसपिल्लेषु ग्रन्थिगण्डार्बुदेषु च ॥ १३५ ॥
रसोनकन्दमरिचविषसर्षपसैन्धवैः ।
पिल्लेक्षणहितं कार्यं सुरसारसपेषितैः ॥
पूरयेत्सर्पिषा चानु सर्पिरेव च पाययेत् ॥ १३६ ॥

चन्दन, देवदारु, काली मिर्च, हलदी, दारुहलदी, नीसोथ, नागरमोथा इन प्रत्येकको एक २ पल और विषको आधा पल लेकर गोमूत्रमें पीसलेवे । ब्राह्मीका रस, आकका दूध और गोबरका रस इन सबको एक प्रस्थ (६४ तोले) सरसोंके तेलमें मिलाकर तेल सिद्ध करे । यह रसक्रिया है । इस औषधको नेत्रोंमें लगावे तो शीघ्र पिल्ल शुक्लार्म और काँचरोगको दूर करे । जब विषको नेत्रोंमें लगावे तब नेत्रोंको वारवार ठण्ढे जलसे धोता रहे । लाल चन्दन, मंजीठ, इमलीके फल, पारा, लोहचूर, लोध, कतक, हलदी, शङ्खनाभि, पीपल, काली मिर्च, मनासिल,

कंजाकी मींगी, बहेडाके बीज, वच, समुद्रफेन, सेंधा नमक, बच्छनाग विष इन सबको समान भाग लेकर बकरीके दूधमें बाँटकर बत्ती बनालेवे। यह बत्ती शुक्रार्म, मांसपिल्ल, ग्रन्थिरोग, गंडरोग और अर्बुद इत्यादि नेत्रके रोगोंको दूर करती है। लहसन, काली मिर्च, विष, सरसों और सेंधा नमकको तुलसीके स्वरसमें बारीक बाँटकर नेत्रोंमें लगावे तत्पश्चात् नेत्रोंको घृतसे पूर्ण करे और घृतका पान करे ॥ १३१-१३६ ॥

मधूकसारमधुकाविषक्षीरजलैर्घृतम् ।
पक्कं सन्तर्पणं श्रेष्ठं नक्तान्धत्वं चिरोत्थितम् ॥ १३७ ॥
अञ्जनं नरपित्तेन रोचनं मधुशृङ्गिभिः ।
स्वर्जिकाक्षारसिन्धूत्थशुक्तशुक्तं वरं विषम् ॥ १३८ ॥
कर्णयोः पूरणं तीव्रकर्णशूलनिबर्हणम् ।
प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठाविषतिन्दुससुद्भवैः ॥
निहन्ति साधितं तैलं गण्डूषेण मुखामयान् ॥ १३९ ॥

महुआ, मुलहटी, विष, दूध, जल, घृत इन सबको एकत्र पकाकर नेत्रोंको तर्पण करे तो बहुत दिनके भी नक्तान्ध्य अर्थात् रतौंध रोगको दूर करे। अथवा नरपित्तके वा काकडाशिंगीके साथ गोरोचनका नेत्रोंमें अंजन करे। सज्जी, सेंधा नमक, सिरका, कांजी इनक साथ बच्छनागविषको बारीक पीसकर कानमें छोडे तो तीव्र कर्णशूलका नाश होवे। कमलपुष्प, मंजीठ, विष और कुचला इन सबको छोडकर सिद्ध किये हुए तेलका कुल्ला करे तो मुखके समस्त रोग दूर होते हैं ॥ १३७-१३९ ॥

शालखदिरकङ्कोलजातीकर्पूरचन्दनैः ।
बोलाब्दवालैर्द्विगुणविषैः साराम्बुपेषितैः ॥ १४० ॥
समूत्रा वटिका क्लृप्ताः शुताद्घ्नंति मुखामयान् ।
कटुतैलं विषं नस्यं पलिकारुंषिकापहम् ॥ १४१ ॥

शालवृक्षकी छाल, कत्था, कंकोल, जायफल, भीमसेनी कपूर, चन्दन, बोल, नागरमोथा, सुगन्धवाला इनको समान भाग और इन सबसे दुगुना विष लेकर खैरसार और गोमूत्रमें बाँटकर गोलियाँ बनालेवे इनको धूपमें सुखाकर मुखमें रक्खे रहे तो सम्पूर्ण मुखरोगोंको नष्ट करती हैं। सरसोंके तेलमें विष मिलाकर नास लेवे तो पलिका और अरुंषिका रोग दूर होवे ॥ १४० ॥ १४१ ॥

गुञ्जाटंकण शिग्रुमूलरजनीसम्पाकभल्लातक-
स्नुह्यर्काग्निकरञ्जसैन्धववचाकुष्ठाभयालाङ्गली ।
वर्षाभूषटभूशिरीषवरणव्योषाश्वमारोविषं
गोमूत्रं शमयेद्विलुप्तमपचिग्रन्थ्यर्बुदश्लीपदाम् ॥ १४२ ॥

घूँघची, सुहागा, सहिंजनेकी जड, हलदी, अमलतास, भिलावाँ, थूहर, आक, चित्रक, कंज, सैन्धवनमक, वच, कूट, हर्र, कलियारी, केचुए, षटभू, शिरसकी छाल, व्योष, (सोंठ, मिर्च, पीपल), कनेर और बच्छनागविषको गोमूत्रमें बारीक बाँटकर इन्द्रलुप्त, अपची, ग्रन्थिरोग, अर्बुद और श्लीपद रोगमें लेप करे तो इन सबको दूर करे ॥ १४२ ॥

विषसेवनाधिकारिणः ।

अशीतिर्यस्य वर्षाणि चतुर्वर्षाणि यस्य वै ।
विषं तस्य न दातव्यं दत्तं चेद्रोगकारकम् ॥ १४३ ॥
न क्रोधिते न पित्तार्ते न क्लीबे राजयक्ष्माणि ।
क्षुत्तृष्णाश्रमकर्माध्वसेविनि क्षयरोगिणि ॥ १४४ ॥
गर्भिण्यां बालवृद्धे च न विषं राजमन्दिरे ।
न दातव्यं न भोक्तव्यं विषं व्याधा कदाचन ॥ १४५ ॥

अस्सी और चार वर्षकी अवस्थावाले मनुष्यको विषका सेवन न करावे क्योंकि यह विष उक्त अवस्थावाले मनुष्यको देनेसे रोगोंकी उत्पत्ति करता है क्रोधी, पित्तरोगी, नपुंसक, क्षयीरोगयुक्त, भूँखा, प्यासा, परिश्रमी, मार्गचला, गर्भिणी, बालक, वृद्ध, तथा राजा और राजाके आश्रित मनुष्योंको व्याधि होने पर भी विष कदापि न देना चाहियें और न इन्हें स्वयं भी सेवन करना उचित है ॥ १४३–१४५ ॥

विषसेवनपथ्यानि ।

घृतं क्षीरं सितां क्षौद्रं गोधूमांस्तण्डुलानि तद ।
मरिचं सैन्धवं द्राक्षां मधुरं पानकं हिमम् ॥ १४६ ॥
ब्रह्मचर्यं हिमं देशं हिमं कालं हिमं जलम् ।
विषस्य सेवको मर्त्यो भजेदतिविचक्षणः ॥ १४७ ॥

विषका सेवन करनेवाला चतुर मनुष्य घी, दूध, मिश्री, सहत, गेहूँ, चावल, काली मिर्च, सैन्धव नमक, दाख, मधुररस, तथा शीतल गुणयुक्त पदार्थ, ब्रह्मचर्य शीत देश, शीत ऋतु, शीत जल इन सबका सेवन करे ॥ १४६ ॥ १४७ ॥

विषमात्राधिकभक्षणोपद्रववर्णनम् ।

मात्राधिकं यदा मर्त्यः प्रमादाद्भक्षयेद्विषम् ।
अष्टौ वेगास्तदा तेन जायन्ते तस्य देहिनः ॥१४८ ॥
उद्वेगं प्रथमे वेगे द्वितीये वेपथुर्भवेत् ।
वेगे तृतीये दाहः स्याच्चतुर्थे पतनं भवेत् ॥ १४९ ॥
फेनस्तु पञ्चमे वेगे षष्ठे विकल एव च ।
जडता सप्तमे वेगे मरणं चाष्टमे भवेत् ॥ १५० ॥
विषवेगानिति ज्ञात्वा मन्त्रतन्त्रैर्विनाशयेत् ।
यामन्नाष्टमवेगं तु संप्राप्नोति हि मानवः ॥ १५१ ॥

यदि कोई मनुष्य प्रमाद आदिसे विषको मात्रासे अधिक भक्षण करलेवे तो उस विषके प्रभावसे मनुष्यके शरीरमें आठ वेग उत्पन्न होते हैं इनमें प्रथम वेगमें उद्वेग, द्वितीयमें कम्प, तृतीयमें जलन, चतुर्थमें पृथिवी आदिपर गिरना, पञ्चममें मुखसे फेन निकलना, षष्ठमें विकलता, सप्तम वेगमें जडता और अष्टममें मरण हो । वैद्यको चाहिये कि उक्त विषवेगोंको जानकर अष्टम वेगके आनेके पूर्वही मन्त्र और तन्त्रसे विषके उपद्रवोंका शीघ्रही नाश करे ॥ १४८-१५१ ॥

विषवेगनाशकयोगः ।

अतिमात्रा यदा भुक्ता वमनं तस्य कारयेत् ।
अजादुग्धं ददेत्तावद्यावद्भ्रान्तिर्न जायते ॥ १५२ ॥
अजादुग्धं यदा कोष्ठे स्थिरीभवति देहिनः ।
विषवेगं ततो जीर्णं जानीयात्कुशलो भिषक् ॥ १५३॥

विषसेवनकी जितनी मात्रा है उससे अधिक यदि किसीने भक्षण करलिया हो तो उस मनुष्यको आकण्ठ बकरीका दूध पिलावे और जब तक अच्छे प्रकार वमन होकर कोष्ठ शुद्ध न होजावे तब तक उसे दुग्ध पीनेके लिये देता रहे । इस प्रकार जब कोष्ठके शुद्ध होनेसे दूध स्थिर होजाताहै अर्थात् वमन नहीं होता तब चतुर वैद्यको जानना चाहिये कि, अब विषका वेग पचगया ॥१५२ ॥ १५३ ॥

द्वितीययोगः ।

विषं हन्याद्रसः पीतो रजनीमेघनादयोः ।
सर्पाक्षिटंकणं वापि घृतेन विषहृत्परम् ॥ १५४ ॥

हल्दी और चौलाई इन दोनोंके रसका पान करे तो विषके उपद्रवोंको नष्ट करे । सर्पाक्षी (गन्धनाकुली या भुजङ्गघातिनी) और सुहागा इन दोनोंको मिलाकर घृतके साथ पान करे तो विषके समस्त उपद्रवोंका नाश हो ॥ १५४ ॥

तृतीययोगः ।

पुत्रजीवकमज्जा वा पीता निम्बुकवारिणा ।
विषवेगं निहन्त्येव वृष्टिर्दावानलं यथा ॥ १५५ ॥

नींबूके रसमें पुत्रजीवक (जीयापोता) की मज्जाको मिलाकर पान करे तो विषके वेगको इस प्रकार नष्ट करताहै जैसे जलवृष्टि दावानलको ॥ १५५ ॥

चतुर्थयोगः ।

गोघृतपानाद्धरते विषं च गरलं च कर्कोटी ।
शमनी सकलविषानां त्रिमूली सुरभिजिह्वा च ॥ १५६ ॥

बाँझककोडाको गौके घृतके साथ पीवे तो स्थावर विष तथा सर्पविषको दूर करताहै । त्रिमूली और सुरभिजिह्वा सम्पूर्ण विषके वेगको दूर करती है ॥१५६॥

पञ्चमयोगः ।

अतिमात्रं यदा भुक्तं तदाज्यं टंकणं पिबेत् ।
विषं सवेगतो नाशमाशु चाप्नोति निश्चितम् ॥ १५७ ॥

जिस समय मात्रासे अधिक विषका भक्षण करलिया हो तो उस समय घृतमें सुहागा मिलाकर पान करे तो वेगयुक्त विषका निस्सन्देह नाश होताहै ॥ १५७॥

विषसेवनापथ्यानि ।

कट्वम्लवणं तैलं दिवास्वप्नानलातपान् ।
अभ्यस्तेऽपि विषे यत्नाद्वर्जनीयान्विवर्जयेत् ॥ १५८ ॥

विषके भक्षणका अभ्यास होनेपर भी प्रयत्नसे कडवे और खट्टे पदार्थ, नमक, तेल, दिनका सोना, अग्निका तापना, (धूपमें भ्रमण करना) आदि त्याग करनेयोग्य कार्योंका त्याग करे ॥ १५८ ॥

रूक्षाशिनः विषसेवनोपद्रवाणि ।

दृग्विभ्रमं कर्णरुजमन्यांश्चानिलजान्गदान् ।
विषं रूक्षाशिनः कुर्यान्मृत्युमेव त्वजीर्णतः ॥ १५९ ॥

जो विषसेवी मनुष्य रूखे पदार्थोंका भोजन करताहै उसके वह विष दृग्विभ्रम, कर्णरोग तथा अन्य वातज रोगोंको उत्पन्न करताहै । विषका अजीर्ण निश्चय मृत्यु करताहै ॥ १५९ ॥

उपविषवर्णनम् ।

स्नुह्यर्कलाङ्गलीगुञ्जाहयारिर्विषमुष्टिकाः ।
जैपालोन्मत्तआफूके नवोपविषजातयः ॥ १६० ॥

थूहर, आक, कलिहारी, घूँघची, कनेर, कुचला, जमालगोटा, धतूरा, अफीम ये नव उपविष कहाते हैं ॥ १६० ॥

अन्यमतम् ।

भल्लातकं चातिविषं चतुर्भागं च खाखसम् ।
करवीरं द्विधा प्रोक्तमहिफेनं द्विधा मतम् ॥ १६१ ॥
धत्तरश्च चतुर्धा स्याद्द्विधा गुञ्जा च निर्विषी ।
विषमुष्टिर्लांगली च गणश्चोपविषाह्वयः ॥ १६२ ॥

भिलावाँ, अतीस, चार प्रकारके खाखस, दो प्रकारका कनेर, दो प्रकारकी अफीम, चार प्रकारका धतूरा, दो प्रकारकी घूँघची, निर्विषी, कुचिला, कलिहारी यह उपविषाख्य गण है ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

उपविषशोधनविधिः ।

पञ्चगव्येषु शुद्धानि देयान्युपविषाणि च ।
विषाभावप्रयोगेषु गुणास्तु विषसम्भवाः ॥ १६३ ॥

पूर्वोक्त सब उपविष पञ्चगव्य (दूध, दही, घृत, मूत्र, गोबर) में शुद्ध करके देना चाहिये । इन उपविषोंके गुण भी प्रायः मुख्य विषोंके समान हैं अतः विषके न मिलनेपर उपविष ही ग्रहण करना चाहिये ॥ १६३ ॥

अर्कगुणाः ।

अर्कद्वयं सरं वातकुष्ठकण्डूविषापहम् ।
निहन्ति प्लीहगुल्मार्शोयकृच्छ्लेष्मोदरकृमीन् ॥ १६४ ॥

सफेद और लाल दोनों प्रकारके आक सर अर्थात् विरेचनकारक हैं, वातरोग, कुष्ठरोग, खुजली, विषविकार, प्लीहा, गुल्मरोग, बवासीर, यकृत्, कफोदर, कृमिरोग इन सबको नष्ट करते हैं ॥ १६४ ॥

लाङ्गलीशोधनविधिस्तद्गुणाश्च ।

लाङ्गलीशुद्धिमायातिदिनं गोमूत्रसंस्थिता ॥ १६५ ॥
लाङ्गली च सरा कुष्ठशोफार्शोव्रणशूलनुत् ॥
तीक्ष्णोष्णकृमिनुल्लघ्वी पित्तला गर्भपातनी ॥ १६६ ॥

कलिहारीके छोटे २ टुकडे करके एक दिवस गौके मूत्रमें भिगोवे तो शुद्ध होजाती है । यह विरेचन करनेवाली है, कुष्ठ, शोफ, अर्श, व्रणशूल, कृमिरोग इन सबको नाश करती है । यह तीक्ष्ण,गरम, हलकी, पित्तको उत्पन्न करनेवाली और गर्भको पतन करनेवाली है ॥ १६५ ॥ १६६ ॥

गुञ्जाशोधनविधिस्तद्गुणाश्च ।

गुञ्जाकाञ्जिकसंस्विन्ना प्रहराच्छुद्ध्यति ध्रुवम् ॥ १६७ ॥
गुञ्जालघुर्हिमा रूक्षा भेदनी श्वासकासजित् ॥
कृष्णाकृमिकुष्ठकण्डूश्लेष्मपित्तव्रणापहा ॥ १६८ ॥

कांजीमें घूँघचीको एक प्रहर पर्यन्त दोलायन्त्रके द्वारा पकावे तो वह शुद्ध होजाती है । यह हलकी, शीतल, रूखी, भेदक और श्वासकासनाशक है । काले रंगकी घूँघची कृमिरोग, कुष्ठरोग, कण्डू, कफ पित्तके विकार और व्रणदोषोंको नाश करनेवाली है ॥ १६७ ॥ १६८ ॥

करवीरशोधनविधिस्तद्गुणाश्च ।

हयारी विषवच्छोध्यौ गोदुग्धे गोलकेन तु ।
करवीरद्वयं नेत्ररोकुष्ठव्रणापहम् ॥
लघूष्णं कृमिकण्डूघ्नं भक्षितं विषवन्मतम् ॥ १६९ ॥

दोनों प्रकारके कनेरोंके छोटे २ टुकडे करके गौके दूधमें दोलायन्त्र द्वारा शुद्ध करे वा विषके समान शुद्ध करे । ये दोनों कनेर नेत्ररोग, कुष्ठरोग, व्रणरोग, कृमिरोग और खुजलीको दूर करते हैं । हलके तथा गरम हैं । भक्षण करनेसे विषके तुल्य गुणकारी हैं ॥ १६९ ॥

विषमुष्टिशोधनविधिः ।

दोलायन्त्रेण संस्वेद्यः काञ्जिके प्रहरद्वयम् ।
किञ्चिदाज्येन संभृष्टो विषमुष्टिर्विशुद्ध्यति ॥ १७० ॥

कुचिलाको कांजीमें दोलायन्त्र द्वारा दो प्रहर पर्यन्त पकावे और पश्चात् घृतमें कुछ भूनलेवे तो शुद्ध होजाताहै ॥ १७० ॥

विषमुष्टिगुणाः ।

विषमुष्टिः कटुस्तिक्तस्तीक्ष्णोष्णः श्लेष्मवातहा ।
सारमेयविषोन्मादहरो मदकरः सरः ॥ १७१ ॥

विषमुष्टि (कुचिला) कडवा, तीखा, चरपरा, गरम, कफ और वातका नाशक कुत्तेके विषसे उत्पन्न उन्मादरोगको दूर करनेवाला और मदकारी तथा विरेचनकारक है ॥ १७१ ॥

जयपालशोधनाविधिः ।

पञ्चगव्येषु संशोध्य दूरे कार्यास्तु जिह्वकाः ।
ततोऽम्लवर्गे दशधा क्षारवर्गे त्रिधाः पुनः ॥ १७२ ॥
कुमारीकोद्रवभस्मजले चैवं विशोधयेत् ।
एवं शुद्धस्तु जैपालो वान्तिदाहाविवर्जितः ॥ १७३ ॥

जमालगोटेको पञ्चगव्यमें शुद्ध करके जीभोंको निकालकर अलग फेंकदेवे तत्पश्चात् अम्लवर्गोक्त औषधियोंमें दशवां क्षारवर्गमें तीन वार शुद्ध करके घीकुवारके रसमें और कोदोंकी राखके जलमें शुद्ध करे । इस प्रकार शोधित जमालगोटा वमन और दाहसे रहित होता है ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

जैपालं रहितं त्वगंकुररसैश्चाह्निर्मले माहिषे ।
निक्षिप्तं त्र्यहमुष्णतोयविमलं खल्वे सवासोर्दितम् ।
लिप्तं नूतनखर्परेषु विगतस्नेहं रजःसन्निभं ।
नीम्बूकाम्बुविभावितं च बहुशः शुद्धं गुणाच्छं भवेत्॥ १७४॥

जमालगोटोंको भैंसाके गोबरमें तीन दिन पर्यन्त गाड रक्खे और चौथे दिन उसके वक्कल तथा जीभको निकालकर फेंकदेवे तत्पश्चात् गरम पानीसे धो अडूसा सहित खरलमें छोड मर्दन करके मिट्टीके नवीन खपडेमें लेप करदेवे, जब तेल सूखकर धूलिके समान होजावे तब नीम्बूके रसमें बहुत समय तक मर्दन करेतो शुद्ध तथा गुणोंमें स्वच्छ हो ॥ १७४ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

वस्त्रे बद्ध्वा तु जैपालं गोमयस्योदके न्यसेत् ।
पाचयेद्याममात्रं तु जैपालः शुद्धतां व्रजेत् ॥ १७५ ॥

जमालगोटेका वस्त्रमें बाँध गोबरके रसमें दोलायन्त्र द्वारा एक प्रहर पकावे तो शुद्ध होजाता है ॥ १७५ ॥

पञ्चमः प्रकारः ।

जैपालं निस्तुषं कृत्वा दुग्धे दोलायुते पचेत् ।
अन्तर्जिह्वां परित्यज्य युंज्याच्च रसकर्मणि ॥ १७६ ॥

जमालगोटेका वल्कल दूर करके वस्त्रमें बाँध दूधमें दोलायन्त्रद्वारा पकावे पश्चात् अन्तार्जिह्वाको निकालकर फेंकदेवे तो शुद्ध होजाता है । इस शुद्ध जमालगोटाको रसकर्ममें युक्त करे ॥ १७६ ॥

जयपालगुणाः ।

जैपालोतिगुरुस्तिक्तो वान्तिकृज्ज्वरकुष्ठनुत् ।
उष्णो गुरुर्व्रणश्लेष्मकण्डूकृमिविषापहः ॥ १७७ ॥
न विषं विषमित्याहुर्जैपालो विषमुच्यते ।
शोधितश्च विरेकेषु चमत्कृतिकरः परः ॥ १७८ ॥

जमालगोटा अतिगुरु, तीखा, वमनकारी, ज्वर, कुष्ठ, व्रणरोग, कफविकार, खुजली, कृमिरोग, विषोपद्रव इन सबका नाशक और गरम है । चतुर वैद्य विषको विष नहीं कहते किन्तु जमालगोटेको विष कहते हैं । शुद्ध किया हुआ जमालगोटा विरेचनमें अत्यन्त चमत्कार करनेवाला है ॥ १७७ ॥ १७८ ॥

धत्तूरशोधनविधिः ।

धत्तूरबीजं गोमूत्रे चतुर्यामोषितं पुनः ।
कण्डितं निस्तुषं कृत्वा योगेषु विनियोजयेत् ॥ १७९ ॥

धतूरेके बीजोंको गौके मूत्रमें चार प्रहर तक भिगोवे तत्पश्चात् हलकी चोट देकर छिलका निकाल योगोंमें युक्त करे ॥ १७९ ॥

धत्तूरगुणाः ।

धत्तूरो मदवर्णाग्निवातकृज्ज्वरकुष्ठनुत् ।
उष्णो गुरुर्व्रणश्लेष्मकण्डूकृमिविषापहः ॥ १८० ॥

धत्तूरा उन्माद, कान्ति, दाह, वातविकार, ज्वर, कुष्ठ इनको दूर करता है। गरम और भारी है । कफविकार, खुजली, कृमिरोग और विषोपद्रवोंको नष्ट करता है ॥ १८० ॥

अहिफेनशोधनविधिः ।

अहिफेनं शृङ्गवेररसैर्भाव्यं त्रिसप्तधा ।
शुद्धन्तु सर्वयोगेषु योजयेत्तद्विधानतः ॥ १८१ ॥

अफीमको अदरकके रसकी इक्कीस भावना देवे तो शुद्ध हो। इस शोधित अफीमको सब योगोंमें विधिपूर्वक युक्त करे ॥ १८१ ॥

आहिफेनगुणाः ।

आफुकं शोषणं ग्राहि श्लेष्मघ्नं वातपित्तलम् ।
मदकृद्दाहकृच्छुक्रस्तम्भनायासमेहकृत् ॥ १८२ ॥
अतिसारे ग्रहण्यां च हितं दीपनपाचनम् ।
सेवितं दिवसैः कैश्चिद्भ्रमयत्यन्यथार्तिकृत् ॥ १८३ ॥

अफीम शोषक, ग्राही और कफनाशक है। वात, पित्त मद, दाह, वीर्यस्तभ परिश्रम और प्रमेहको उत्पन्न करती है। अतिसार और ग्रहणी रोगमें हीतकारक है, दीपन तथा पाचन है। कुछ दिन तक सेवन की हुई यह चित्तको भ्रमाती है अन्यथा पीडाको उत्पन्न करती है ॥ १८२ ॥ १८३ ॥

विजयाशोधनविधिः ।

बब्बुलत्वक्कषायेण भङ्गां संस्वेद्य शोषयेत् ।
गोदुग्धभावनां दत्वा शुष्कां सर्वत्र योजयेत् ॥ १८४ ॥

बबूलकी छालके क्वाथमें भाँगको स्वेदनकर गौके दूधकी भावना देकर सुखालेवे। इस प्रकार शुद्ध की हुई भाँगका सर्वत्र उपयोग करे ॥ १८४ ॥

विजयागुणाः ।

विजयाकटुकषायोष्णा तिक्ता वातकफापहा ।
संग्राही वाक्प्रदा बल्या मेधाकृद्दीपनी परा ॥ १८५ ॥

भाँग,- कडवी, कँषली, गरम, तीखी, वातकफनाशक, संग्राही, वाक्शक्तिवर्द्धक बलप्रद, मेधाकर और अग्निको प्रदीप्त करनेवाली है ॥ १८५ ॥

सेहुण्डगुणाः ।

सेहुण्डो रोचनस्तीक्ष्णो दीपनः कटुको गुरुः ।
शूलमष्ठीलिकाध्मानगुल्यशोफोदरानिलान् ॥
हन्ति दोषान्यकृत्प्लीहकुष्ठोन्मादाश्मपाण्डुताः ॥ १८६ ॥

थूहर रोचन, तीक्ष्ण, दीपन, कटु और भारी है। शूल, अष्ठीलिका, अफरा, गुल्मरोग, वातरोग, यकृत्, प्लीहा, कुष्ठ, उन्माद, पथरी, और पाण्डुरोगको दूर करता है ॥ १८६ ॥

गौरीपाषाणकगुणाः ।

गौरीपाषणकः प्रोक्तो द्विविधः श्वेतपीतकः ।
श्वेतः शंखस्य सदृशो पीतो दाडिमकप्रभः ॥ १८७ ॥
श्वेतः कृत्रिमकः प्रोक्तो पीतः पर्वतसम्भवः ॥
कृष्णरक्तविभेदेन चतुर्धा कथ्यते क्वचित् ॥ १८८ ॥

संखिया दो प्रकारकी होती है, सफेद और पीली, सफेद संखिया शंखके समान रंगवाली और पीली अनारके समान कान्तियुक्त होतीहै । इनमेंसे श्वेत संखिया कृत्रिम अर्थात् बनावटी है और पीली संखिया पर्वतसे उत्पन्न होती है कहीं २ श्वेत और पतिके अतिरिक्त कृष्ण तथा रक्तके भेदसे यह संखिया, चार प्रकारकी कही गई है ॥ १८७ ॥ १८८ ॥

विषविकारशान्त्युपायाः ।

तत्रादावहिफेनविषनिवृत्तियोगाः ।

बृहत्क्षुद्राम्बुनो दुग्धैः पलमानस्य सेवनात् ॥
नागफेनविषं याति स जीवति चिरं पुमान् ॥ १८९ ॥
उग्रासिन्धुस्तथा कृष्णा मज्जमादनकं फलम् ॥
तप्तनीरेण तद्देयमहिफेनाविषं जयेत् ॥ १९० ॥
टकणं नीलतुत्थं च घृतयुक्तं च दापयेत् ।
तेन वान्तिर्भवेत्सद्यो नागफेनविषं जयेत् ॥ १९१ ॥

बडी कटेरीका चार तोला रस दूधके साथ सेवन करे तो अफीमका विष नष्ट होता है और वह मनुष्य चिरकाल तक जीवित रहता है अथवा वच, सेंधानमक, पीपल, मैनफलकी मज्जा इन सबको गरम जलके साथ सेवन करावे तो अफीमका विष दूर होवे अथवा सुहागा, नील, नीलाथोथा इन सबको बारीक पीस घृतमें मिलाकर सेवन करावे तो शीघ्रही वमन होकर अफीमका विष नष्ट होवे१८९–१९१॥

धत्तूरविषशान्त्युपायाः ।

वृन्ताकफलबीजस्य रसो हि पलमात्रकः ।
भक्षणाद्भुक्तधत्तूरविषं नश्यति निश्चितम् ॥ १९२ ॥
कार्पासास्थि तथा पुष्पं जलेनोत्काथ्य पानतः ।
धत्तूरस्य विषं हन्ति तथा लवणसेवनात् ॥ १९३ ॥

गोदुग्धप्रस्थमेकं तु शर्करायाः पलद्वयम् ।
तत्पानतो विषं याति धत्तूरस्य तु निश्चितम् ॥ १९४ ॥

बैंगनके बीजोंका चार तोला रस भक्षण करनेसे खायेहुए धतूरेका विष निश्चयसे दूर होता है । बिनौले और कपासके फूलोंका काढा बनाकर पीनेसे भी धतूरविष शान्त होजाता है, अथवा नमकके सेवनसे भी यह विष नष्ट होता है अथवा गौके एक प्रस्थ (६४ तोले) दूधमें दो पल मिश्री मिलाकर सुखोष्ण पान करे तो धत्तूरविष निश्चयसे शान्त हो ॥ १९२–१९४ ॥

वत्सनागविषशान्त्युपायः ।

पटवणस्य वृक्षस्य रसं पलप्रमाणकम् ।
शर्करायुक्तपानेन वत्सनागविषं हरेत् ॥ १९५ ॥

हीरवण वृक्षके चार तोले रसमें मिश्री डालकर पीवे तो वच्छनागविषको नष्ट करे ॥ १९५ ॥

भल्लातकविषशान्त्युपायः ।

स्वरसो मेघनादस्य नवनीतेन संयुतः ।
भल्लातकभवं शोफं हन्ति लेपेन तत्क्षणात् ॥ १९६ ॥
दारुसर्षपमुस्तानि नवनीतेन लेपयेत् ।
भल्लातकविकारोऽयं सद्यो गच्छति निश्चितम् ॥ १९७ ॥
नवनीतं तिलं दुग्धं पुनः खण्डयुतेन च ।
लेपनाच्छमनं याति भल्लातकव्यथा त्वरम् ॥ १९८ ॥

मक्खन सहित चौलाईके रसका भिलावाँकी सूजन पर लेप करे तो तत्कालही उस शोफको नाश करता है । अथवा देवदारु, सरसों, नागरमोथा इन सबको बारीक पीसकर मक्खनयुक्त लेप करे तो शीघ्र ही भल्लातकजनित विकार शान्त होताहै । अथवा मक्खन, तिल, दूध इन सबका लेप करनेसे भिलावाँसे उत्पन्न व्यथा शीघ्र ही नष्ट होती है ॥ १९६–१९८ ॥

विजयाविकारशान्त्युपायः ।

शुण्ठी गोदधियुक्ता च पीता भङ्गाविकारनुत् ॥ १९९ ॥

सोंठको बारीक पीसकर गौके दहीके साथ पान करे तो भाँगके विकारको शान्त करता है ॥ १९९ ॥

गुञ्जाविकारशान्त्युपायः ।

मेघनादरसो ग्राह्यः शर्करायुक्तपानतः ।
उच्चटायाः विकारस्य शान्तिः स्याद्दुग्धसेवनात् ॥ २०० ॥
मधुखर्जूरिमृद्वीका तिन्तिडीकाम्लदाडिमौ ।
परूषैरामलश्चैव युक्तः सद्यो विकारनुत् ॥ २०१ ॥

चौलाईके रसमें मिश्री मिलाकर पान करे और इसके ऊपर दूधका सेवन करे तो घूँघचीके विकारकी शान्ति हो, अथवा शहद, छुहारा, दाख, खट्टा अनार, फालसा, आँवला इन सबको एकमें मिलाकर सेवन करे तो शीघ्रही घूंघचीका विकार शान्त हो ॥ २०० ॥ २०१ ॥

करवीरविषशान्त्युपायः ।

सितायुक्तं सदा देयं दधि वा माहिषं पयः ।
तथा चार्कत्वचा पीता करवीरविषापहा ॥ २०२ ॥

भैंसीके दूध वा दहीमें मिश्री मिलाकर पान करे तो कनेरका विष दूर होजाताहै । अथवा आककी छालका पान करे तो भी कनेरका विष दूर होताहै २०२॥

वज्रीविषशान्त्युपायः ।

शीतवारियुता पीता सिता वज्री विषापहा ।
वस्त्रवायुस्तथा कार्यः शीतच्छायां च संभजेत् ॥ २०३ ॥
चिञ्चापत्रं जले पिष्ट्वा मर्दयेच्छान्तिकृत्सदा ।
हेमगैरिकयुग्वारिस्नुह्यर्कजविकारनुत् ॥ २०४ ॥

ठंढे जलमें मिश्री मिलाकर पान करे और कपडेके व्यजनका वायु तथा शीतल-छायाका सेवन करे तो थूहरका विष शान्त हो । अथवा इमलीके पत्तोंको पानीमें पीसकर देहमें मर्दन करे तो थूहरका विष शान्त हो । अथवा सोनागेरूको जलमें पीसकर पान करे तो थूहर और आकका विष शान्त हो॥२०३॥२०४॥

जयपालविषशान्त्युपायः ।

धान्यकं सितया युक्तं दध्ना सह च यः पिबेत् ।
देहे जैपालजो व्याधिर्नाशमाप्नोति निश्चितम् ॥ २०५ ॥

धनियाँ और मिश्रीको बारीक पीसकर दहीके साथ पान करे तो शरीरमें जमालगोटेके विषसे उत्पन्न जो व्याधि है वह निश्चयसे नाशको प्राप्त होती है२०५

त्रिंशत्तमेऽस्मिन्नध्याये विषोपविषवर्णनम् ।
सम्यक्कृतं मया वत्स तत्त्वतस्तान्निबोध हि ॥ २०६ ॥

हे वत्स ! मैंने इस तीसवें अध्यायमें अच्छे प्रकारसे विष और उपविषोंका वर्णन किया, तुम उसको यथायोग्य जानो ॥ २०६ ॥

अथ प्रथमखण्डस्योपसंहारः ।

रसोत्पत्तिश्च यन्त्राणां वर्णना रससंस्कृतिः ।
रसस्य मारणं तद्वद्धिङ्गुलस्य च वर्णनम् ॥
अभ्रकस्य ततस्तालस्याञ्जनादेस्तथैव च ।
रसानामुपपूर्वाणां वर्णनं स्वर्णरौप्ययोः ॥
जसदस्य च ताम्रस्य वङ्गस्याथो हि वणनम् ।
लोहसीसकयोश्चैव मण्डूरस्य तथैव च ॥
माक्षिकद्वयकस्याथ मिश्रकाध्याय एव च ।
विमलातुत्थचपलारसकानां शिलाजतोः ॥
साधारणरसाध्यायो ह्यध्यायौ रत्नयोस्तथा ।
विषोपविषकाध्यायः पूर्वखण्ड इतीरिताः ॥
अध्यायास्त्रिंशदिह हि फल्गु हित्वा मनीषिभिः ।
सारं ग्राह्यं पौरुषेये क्व नु निर्दोषता भवेत् ॥

इस पूर्वखण्डमें क्रमसे–रसोत्पत्ति १, यन्त्रवर्णन २, रससंस्कार ३, रसमारण ४, हिङ्गुलवर्णन ५, गन्धकवर्णन ६, अभ्रकवर्णन ७, हरितालवर्णन ८, अञ्जनादिवर्णन ९, उपरसवर्णन १०, सुवर्णवर्णन ११, रौप्यवर्णन १२, ताम्रवर्णन १३, वङ्गवर्णन १४, जसद्वर्णन ३५, सीसकवर्णन १६, लोहवर्णन १७, मण्डूरवर्णन १८, मिश्रकधातुवर्णन १९, स्वर्णमाक्षिक २०, रौप्यमाक्षिकवर्णन २१, विमलावर्णन २२, तुत्थवर्णन २३, चपलकंकुष्ठवर्णन २४, रसकवर्णन २५, शिलाजतुवर्णन २६, साधारणरस-शंखिया अम्बर आदि वर्णन२७, रत्नवर्णन२८, उपरत्नवर्णन २९, विषोपविषवर्णन ३० ये तीस अध्याय हैं इनमें जो कुछ सार पदार्थ हो उसका स्वीकार करना दोषोंको न देखना यह विद्वानोंका काय ह । क्योंकि मनुष्योंके कर्मोंमें सदा ही कुछ न कुछ दोष रह ही जाते हैं ॥

दोहा–त्रिंशत् अध्यायनविषे, गुरुशिष्यसंवाद ।
प्रथम खण्ड पूरण कियो, लिखकर रामप्रसाद ॥ १ ॥
उभयलोक कल्याणप्रद, रसग्रन्थनको सार ।
कुशल होहिं रसकर्ममें, पढहिं जे भले प्रकार ॥ २ ॥
रसविषयक पौराणको, समुझि लिख्यो अनुकूल ।
निरखि छमहिं बुधजन मोहिं, यदि कहुं हो प्रतिकूल ॥ ३ ॥
सोरठा–निज बालकसम जानि, गुरुजन मोहिं प्रशंसहीं ।
नहिं ताते कछु हानि, जगनिंदक यदि निन्दहीं ॥ ४ ॥

इति श्रीपटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासी पं०द्वारिका-
दासोपाध्यायात्मजरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते
रसेन्द्रपुराणे प्रथमखण्डः समाप्तः ॥ १ ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास.
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
कल्याण–मुंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
खेतवाडी–मुंबई.

जाहिरात।

	किं, रु. आ.
अष्टांगहृदय-(वाग्भट) मूल मोटा अक्षर वाग्भटविरचित.	.... ५-०
अमृतसार हिन्दी भाषामें ग्लेज	.... ३-८
अनुपानदर्पण भाषाटीका सहित	.... १-०
अंजननिदान भाषाटीका अन्वयसहित	.... ०-१०
आयुर्वेद भा० टी०	.... १-४
उपदंशतिमिर (गर्मी) नाशक भाषामें	.... ०-३
कूटमुद्गराख्यसटीक	.... ०-३
चर्याचंद्रोदय भाषाटीका व्यंजन बनानेका ग्रंथ	.... २-८
चिकित्साधातुसार भाषा	.... ०-६
डाक्टरी चिकित्सासार भाषा	.... ०-१०
नपुंसकसंजीविनी प्रथम भाग	.... ०-६
नपुंसकचिकित्सा भाषाटीका (नूतन)	.... ०-६
नाडीदर्पण नाडी देखनेमें अत्यन्त उत्कृष्ट	.... ०-८
नाडीपरीक्षा भाषाटीका अतिसुलभ....	.... ०-४॥
निदानदीपिका संस्कृत	.... २-०
पथ्यापथ्य भाषाटीका	.... १-०
पशुचिकित्सा अर्थात्-वृषकल्पद्रुम	.... १-१२
पाकप्रदीप वाजीकरण भा० टी०	.... ०-१०
पाकमाला बालबोधोदय भा० टी०	.... ०-३
बालतंत्र भा० टी०	.... १-४
बालसंजीवन(वार्तिकमें)....	.... ०-८
बालबोधपाकावली	.... ०-२
बृहन्निघण्टु रत्नाकर प्रथम भाग	.... ४-८
बृहन्निघण्टु रत्नाकर द्वितीय भाग	.... ५-०
बृहन्निघण्टुरत्नाकर तृतीय भाग	.... ६-०
बृहन्निघण्टुरत्नाकर चतुर्थ भाग	.... ४-०
बृहन्निघण्टुरत्नाकर पंचम भाग	.... ८-०
बृहन्निघण्टुरत्नाकर छठा भाग	.... ६-०
बोपदेवशतकवैद्यक भाषाटीकासमेत	.... ०-८
माधवनिदान-मधुकोष और आतंकदर्पण संस्कृतटीकासमेत	.... ५-०

	की. रु. आ.
मदनपालनिघण्टु भाषाटीका ग्लेज	३–०
हिकमतप्रकाश....	१–१२
माधवनिदान भाषाटीका उत्तम ग्लेज	३–०
मिजान तिब्ब सर्वांग चिकित्सा	२–०
योगतरंगिणी बहुतही उत्तम भा० टी०	३–०
योगचिन्तामणि भाषाटीका रफ	२–०
रसराजमहोदधि संपूर्ण चारों भाग सोनेरी सुंदर एकही जिल्दमें	३–०
रसराजसुंदर भाषाटीकासह	३–४
रसमंजरी भाषाटीका	१–४
रसायनतन्त्र भाषाटीका	०–२
रसरत्नाकर भाषाटीकासमेत	८–०
राजवल्लभ निघंटु भाषाटीका	१–१२
लोलिम्बराज वैद्यजीवन संस्कृतटीका और भाषाटीका रफ....	१–८
विषचिकित्सादर्पण	०–४
वैद्यकल्पद्रुम भा० टी०	५–०
वैद्यकपरिभाषाप्रदीप भा० टी०	१–४
वैद्यावतंस भा० टी०	०–३
वैद्यवल्लभ पद्योंमें	०–८
वैद्यरहस्य भाषाटीकासह	३–०
शरीरपुष्टिविधान भाषा	०–६
संतानमंजरी भाषाटीका	०–३
स्त्रीपुरुषसंजीवन भाषाटीका	०–८

पुस्तकें मिलनेका ठिकाना–

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " छापाखाना,

कल्याण–मुंबई.

श्रीगणेशाय नमः ।

"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" स्टीम्–यंत्रालयकी परमोपयोगी स्वच्छ शुद्ध और सस्ती पुस्तकें ।

यह विषय आज ४० । ५० वर्षसे अधिक हुआ भारतवर्षमें प्रसिद्ध है कि, इस यन्त्रालयकी छपी हुई पुस्तकें सर्वोत्तम और सुन्दर प्रतीत तथा प्रमाणित हुई हैं सो इस यन्त्रालयमें प्रत्येक विषयकी पुस्तकें जैसे–वैदिक, वेदान्त, पुराण, धर्मशास्त्र, न्याय, मीमांसा, छन्द, ज्योतिष, काव्य, अलंकार, चम्पू, नाटक, कोष, वैद्यक, साम्प्रदायिक तथा स्तोत्रादि संस्कृत और हिन्दी भाषाके ग्रंथ प्रत्येक अवसरपर विक्रीके अर्थ तैयार रहते हैं. शुद्धता स्वच्छता तथा कागजकी उत्तमता और जिल्दकी बंधाई देशभरमें विख्यात है. इतनी उत्तमता होनेपरभी दाम बहुतही सस्ते रक्खे गये हैं और कमीशनभी पृथक् काट दिया जाता है. ऐसी सरलता पाठकोंको मिलना असंभव है। संस्कृत तथा हिन्दीके रसिकोंको अवश्य अपनी २ आवश्यकतानुसार पुस्तकोंके मंगानेमें त्रुटि न करना चाहिये. ऐसा उत्तम, सस्ता और शुद्ध माल दूसरी जगह मिलना असम्भव है. 'सूचीपत्र' मँगा देखो ।

पुस्तकें मिलनेका ठिकाना–
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना,
कल्याण–मुंबई.